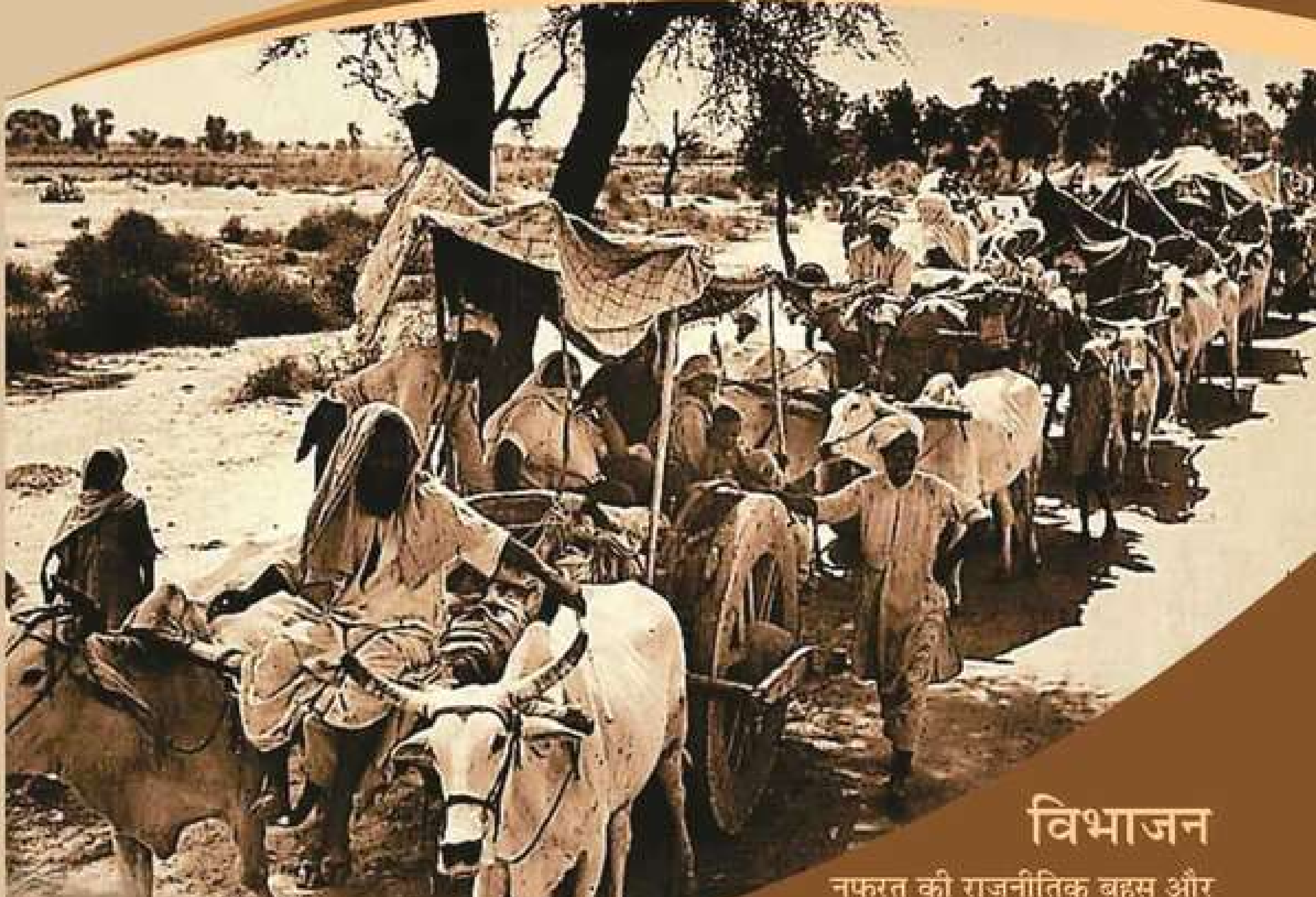
देस हरियाणा

ISSN 2454-6879

साहित्यिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का मंच

वर्ष-2, अंक : 10
मूल्य : 35 रुपये



विभाजन

नफरत की राजनीतिक बहस और
साम्प्रदायिक सदभाव व दोस्ती की दास्तान

ISSN 2454-6879

देसहरियाणा

साहित्यिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्ति का मंच

अंक-10, मार्च-अप्रैल 2017

सहयोग राशि

व्यक्तिगत : एक वर्ष 200 रुपए तीन वर्ष 500 रुपए

संस्था : एक वर्ष 400 रुपए, तीन वर्ष 1 हजार रुपए

आजीवन : पांच हजार रुपए संरक्षक : दस हजार रुपए

ऑनलाईन भुगतान के लिए

बैंक खाता : देस हरियाणा, इलाहाबाद बैंक कुरुक्षेत्र

खाता संख्या : 50297128780, IFS Code: ALLA0211940

ई-मेल : haryanades@gmail.com, desharyana@gmail.com

WEB : desharyana.in

ISSN 2454-6879

देस हरियाणा

912, सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र, (हरियाणा)-136118

मो. : 94164-82156

स्वामी-प्रकाशक-सम्पादक-मुद्रक सुभाष चंद्र द्वारा 912, सैक्टर-13, कुरुक्षेत्र हरियाणा से प्रकाशित

इस बार

–अपील–

देस हरियाणा सामाजिक–सांस्कृतिक पत्रिका है। पूर्णत: अव्यवसायिक, अवैतनिक पत्रिका है, जिसे किसी तरह का अनुदान प्राप्त नहीं होता है। यह पूर्णत: पाठकों तथा पत्रिका सहयोगियों के संसाधनों से प्रकाशित होती है।

रचनाकारों, सामाजिक कार्यकर्त्ताओं से विशेष अनुरोध है कि पाठकों को पत्रिका से जोड़ें। पत्रिका के लिए अपने शहर में बिक्री का स्थान चिन्हित करके सूचित करें, ताकि पत्रिका पहुंचाई जा सके।

रचनाकारों से निवेदन है कि अपनी रचनाएं भेजें। यूनिकोड, चाणक्य, कृतिदेव फोंट में ईमेल द्वारा सामग्री भेजें तो सुविधा होगी

नफरत की राजनीतिक बहस और सांप्रदायिक सद्भाव व दोस्ती की दास्तान

ये दाग़ दाग़ उजाला, ये शबगज़ीदा सहर
वो इन्तज़ार था जिस का, ये वो सहर तो नहीं
फ़ैज अहमद फ़ैज

लंबे संघर्ष के बाद भारत को औपनिवेशिक शासन से मुक्ति मिली, लेकिन औपनिवेशक शासक देश को दो टुकड़ों में विभाजित करके एक स्थायी घाव दे गए। विभाजन की स्क्रिप्ट बेशक औपनिवेशिक शासन ने लिखी थी, लेकिन इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि मुस्लिम लीग और हिंदू महासभा की साम्प्रदायिक राजनीति के साथ-साथ कांग्रेस की रणनीतिक गलतियों का भी इसमें योगदान रहा है।

मुस्लिम लीग और हिंदू महासभा दोनों ही धर्म के आधार पर राष्ट्र का निर्माण करना चाहते थे। दोनों 'द्वि-राष्ट्र' सिद्धांत के समर्थक थे। दरअसल सत्तापिपासु साम्प्रदायिक शक्तियां धार्मिकता की चादर से अपने बर्बर व अमानवीय चरित्र को छुपाने का काम लेती हैं। बड़ी चालाकी से लोगों की धार्मिक आस्था व विश्वास को साम्प्रदायिक रंग देने में कामयाब हो जाती हैं। साम्प्रदायिकता दो धर्मों की लड़ाई नहीं है बल्कि कुछ वर्गों के राजनीतिक-आर्थिक हितों की टकराहट है। मसलन मुस्लिम लीग के 14 सूत्री मांग-पत्र में एक भी मांग धार्मिक नहीं थी। सारी मांगें राजनीतिक थी। समुदायों के धार्मिक हित कभी नहीं टकराते, कुछ लोगों के सत्ता-व्यापारिक हित टकराते हैं तो वे अपने स्वार्थों को पूरा करने के लिए इस बात का धुंआधार प्रचार करते हैं कि एक धर्म के मानने वालों के हित समान हैं और भिन्न-भिन्न धर्मों को मानने वालों के हित परस्पर विपरीत एवं विरोधी हैं। घृणा की इसी राजनीति ने देश को विभाजन की ओर धकेला।

देश-विभाजन को साम्प्रदायिक समस्या के हल के तौर पर स्वीकार किया गया था, लेकिन यह समस्या का समाधान नहीं बल्कि एक नई समस्या की शुरुआत थी। भारत-पाकिस्तान के बीच संबंध हमेशा तनावपूर्ण ही रहे। दोनों देशों में कट्टरपंथी साम्प्रदायिक ताकतें इससे खुराक लेकर फलती-फूलती हैं। देश-भक्ति व राष्ट्रवाद को धार्मिक-सांस्कृतिक प्रतीकों से जोड़कर साम्प्रदायिक व युद्धोन्माद पैदा करती हैं फिर भारत-पाक के बीच चाहे क्रिकेट मैच हो या कोई अन्य मसला। बेशक इसमें औपनिवेशिक शक्तियों के व्यावसायिक हित निहित हैं, लेकिन नुक्सान तो दोनों देशों के आवाम का होता है।

यद्यपि आबादियों के स्थानान्तरण विभाजन की अनिवार्य शर्त नहीं थी, लेकिन तत्कालीन नफरत भरे साम्प्रदायिक माहौल में करोड़ों की आबादी को अपने वतन से जुदा होना पड़ा। विभाजन का सबसे ज्यादा असर पंजाब और बंगाल पर हुआ। पंजाब से बहुत बड़ी आबादी पाकिस्तान की ओर चली और पाकिस्तान क्षेत्र से हिंदोस्तान की ओर। नफरत का ऐसा माहौल बना कि धर्म के आधार पर लोग एक दूसरे के खून के प्यासे हो गए। लाखों की संख्या में लोग मारे गए। लूट-पाट व मार-धाड़ ने बसे बसाए लोगों को रातों-रात सड़कों पर ला पटका। खाते-पीते लोग दाने-दाने को मुहताज हो गए। लेकिन सब कुछ समाप्त नहीं हुआ था, लोगों में इंसानियत जिंदा थी और कितने ही लोगों ने अपनी जान जोखिम में डालकर दूसरे धर्म के लोगों की जान बचाई।

जिस तरह दूसरे विश्व युद्ध की त्रासदी ने यूरोप के साहित्य को प्रभावित किया था उसी तरह विभाजन की त्रासदी ने भारतीय साहित्यकारों को प्रभावित किया। हिंदी, उर्दू, पंजाबी, बंगला भाषा के अनेक साहित्यकारों ने इस दर्द को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त किया। यशपाल, भीष्म साहनी, सआदत हसन मंटो, राही मासूम रजा, अबुदस्समद, मोहन राकेश, कृष्णा सोबती, अज्ञेय, असगर वजाहत, सुजान सिंह, खुशवंत सिंह, अमृता प्रीतम, रजिया सज्जाद जहीर, जोश मलीहाबादी जैसे समर्थ रचनाकारों ने अपनी साहित्यिक रचनाओं में इसकी मार्मिक अभिव्यक्ति की है। सैंकड़ों कहानियां व उपन्यास इस विषय पर लिखे गए, फिर भी यह त्रासदी शब्दों में सिमट नहीं पाई। 'तमस' जैसे टी वी धारावाहिक तथा 'गर्म हवा' जैसी कई फिल्में बनीं। कितनी ही फिल्मों में इसका संदर्भ स्वाभाविक तौर पर आ जाता है मसलन 'भाग मिल्खा भाग' फिल्म में।

विभाजन के बाद से अब तक इस विषय पर विभिन्न विधाओं में निरंतर लेखन हो रहा है। इसका एक ही कारण है कि यह दर्द निरंतर रिसता रहा है। किसी बुजुर्ग के पास बैठकर उस समय की बात छेड़ दो तो उसकी आंखे नम हो जाती हैं। पाकिस्तानी लेखिका अनम ज़कारिया ने पाकिस्तान के पंजाब प्रांत के कुछ हिस्सों में विभाजन के बाद से रह रहे पहली और दूसरी पीढ़ी के 600 पाकिस्तानियों से बातचीत की। इनका दस्तावेजीकरण अपनी किताब 'द फुटप्रिंट्स ऑफ पार्टीशन' में किया है। उनका अनुभव भारत और पाकिस्तान के बीच में नफरत की वर्तमान राजनीतिक बहस से इतर प्रेम, भाईचारे, सांप्रदायिक सद्भाव और दोस्ती की दास्तां है।

भारत-पाकिस्तान की सरहद पर सेनाओं की झड़पों तथा दोनों देशों के शासकों के तल्ख बयानों और कट्टरपंथी-साम्प्रदायिक शक्तियों की भड़काने वाली टिप्पणियों के विपरीत लोग मिलजुल कर रहना चाहते हैं। दोनों देशों की शासन सत्ताएं चाहे परस्पर शत्रु समझती रहें पर दोनों देशों के आवाम अभी भी सरहद को कृत्रिम मानते हैं और अपने वतन से जुड़ना चाहते हैं।

दरअसल यह विभाजन बेहद कृत्रिम व अस्वाभाविक था। राजनीतिक तौर पर भारत और पाकिस्तान बेशक दो देश बन गए हैं, लेकिन दोनों का इतिहास व संस्कृति एक है। विभाजन के समय राजनीतिक विवशता के कारण बेशक लोगों को अपनी जगह छोड़नी पड़ी, लेकिन दिलों में अभी भी उस मिट्टी से प्यार है। पाकिस्तान से आए यात्री भारत के किसी गांव में अपने पुरखों की धरती को चूमते हैं या अपनी बोली सुनने के लिए फोन करते हैं अथवा भारत से पाकिस्तान में अपने गांव जाने की चाह उमड़ती है तो वह मात्र एक सैलानी की चाह नहीं होती। उसमें एक विशेष भावना होती है नम आंखें उन भावनाओं को व्यक्त करती हैं।

हरियाणा क्षेत्र में गांव-गांव, कस्बे-कस्बे में मुस्लिम आबादी थी विभाजन के दंगों से जो असुरक्षा का वातावरण बना उसमें लोगों को अपने घर छोड़कर जाना पड़ा। पाकिस्तान के विभिन्न भागों से लोग यहां आए, बहुत से कैंप बने। लेकिन इनका यहां स्वागत नहीं हुआ था। जहां उन्हें जगह मिली वहां स्थानीय लोगों ने आसानी से स्वीकार नहीं किया, बल्कि वक्त के मारों के प्रति हिकारत का भाव था। इनके सामने अपने को पुन:स्थापित होने का सवाल था। बेशक लंबे संघर्ष व मेहनत से व्यापार व अन्य धंधों में अपनी जगह बना ली, लेकिन शरणार्थी होने का दंश निरंतर झेलना पड़ा है।

विभाजन पर इतना कुछ लिखा गया है, फिर भी हमें विशेष अंक की आवश्यकता इसलिए महसूस हो रही थी कि हरियाणा क्षेत्र के संदर्भ में विभाजन की त्रासदी के विभिन्न पहलुओं पर कम लिखा गया है और जो लिखा गया है उस पर उतनी चर्चा नहीं हुई, जो होनी चाहिए। हरियाणा क्षेत्र की घटनाओं पर आधारित सामग्री को रखा है जो विभाजन की त्रासदी की भयावहता के साथ यह भी दर्शाती है कि बर्बरता के घुप्प अंधेरे में भी इंसानियत का दीवा टिमटिमाता रहा है और इस दीवे की रोशनी ने ही मानवता का रास्ता प्रशस्त किया है।

इस अंक में

ख्वाजा अहमद अब्बास की कहानी 'सरदार जी', बलबीर सिंह मलिक की कहानी 'भगवाना चौधरी', नरेश शर्मा की 'वो रात को लाहौर चले गए', सुरेश बरनवाल की 'रेलगाड़ी' तथा ज्ञानप्रकाश विवेक व रामकिशन राठी के संस्मरण हैं।

विभाजन की पृष्ठभूमि पर प्रख्यात विचारक असगर अली इंजीनियर का आलेख प्रकाशित कर रहे हैं जो विभाजन पर विभिन्न राजनीतिक शक्तियों के रुख को स्पष्ट कर देता है। राजेन्द्र सिंह सोमेश का 'देश विभाजन में हरियाणा' आलेख हरियाणा में विभाजन के प्रभाव को उजागर करता है। दलित चिंतन में डा. सुभाष चंद्र का 'डा. आम्बेडकर और विभाजन' आलेख है।

रेडक्लिफ ने जिस तरह से आनन-फानन में भारत-विभाजन किया उसकी सबसे विश्वसनीय अभिव्यक्ति की अंग्रेजी के प्रख्यात कवि डब्ल्यू एच आडन ने अपनी कविता 'पार्टीशन' में जिसका अनुवाद यहां दिया है। हरभगवान चावला की कविताएं त्रासदी को अभिव्यक्त करती हैं।

विभाजन के दौरान पानीपत की घटनाओं के चश्मदीद मौलाना लिकाउल्लाह द्वारा 1963 में उर्दू में लिखे गए बयान का अनुवाद प्रकाशित कर रहे हैं जो तत्कालीन घटनाक्रम में कथित धर्मनिरपेक्ष नेताओं के ढुलमुल चरित्र को भी उजागर करती है।

महेंद्र प्रताप चांद तथा अमृतलाल मदान के यात्रा-वृतांतों से स्थापित होता है कि दोनों मुल्कों के लोगों में एक दूसरे के प्रति बेहद प्रेम व आदर भाव है।

चंद्र त्रिखा की नानक चंद, हरभगवान चावला की जट्टूराम तथा अरुण कैहरबा की हरिचंद गणगोत्रा से की गई बातचीत में विभाजन के भयावह अनुभवों की झलक है और उनसे यह भी प्रकट होता है कि बरसों बीत जाने पर अपनी जन्म भूमि के प्रति लगाव है। उदयभानु हंस का 'मानवीय मूल्यों के रक्षक भी थे कुछ लोग' विभाजन के दौरान की इंसानियत को स्पष्ट करता है।

धर्मेंद्र कंवारी का अनुभव आधारित आलेख 'हम सब शरणार्थी...' विभाजन के बाद हरियाणा में आए 'शरणार्थियों' के प्रति स्थानीय लोगों का रवैया स्पष्ट करता है तो विपिन सुनेजा का आलेख 'कुछ सुनी हुई, कुछ देखी हुई' उनके संघर्ष की ओर संकेत करता है।

पाकिस्तान के प्रख्यात शायर उस्ताद दामन के जीवन और साहित्यिक सरोकारों से परिचित कराता एस.के.सेठी का आलेख है।

हरियाणा के लोक कवियों विशेषकर मुंशीराम जांडली, हरिकेश पटवारी, तथा रामकिशन ब्यास के 'कम्मो कैलाश' सांग से रागनियां हैं। लोक कवियों की रचनाओं में इस त्रासदी की भयावहता का जिक्र है और तत्कालीन राजनीतिक शक्तियों व व्यक्तियों की भूमिका की ओर संकेत भी किया है।

टेक चंद का आलेख 'बदलती देह भाषा और पितृसत्तात्मकता' पॉप कल्चर के उभार तथा सपना विवाद पर प्रकाश डालता है।

उम्मीद है कि यह अंक विभाजन से उपजे दर्द के बहाने से धार्मिक-साम्प्रदायिक विद्वेष के भयावह परिणामों को समझने में मदद करेगा।

सुभाष चंद्र

कहानी

सरदार जी

ख्वाजा अहमद अब्बास, अनु. शम्भु यादव

लोग समझते हैं सरदार जी मर गये। नहीं यह मेरी मौत थी। पुराने मैं की मौत। मेरे तअस्सुब (धर्मान्धता) की मौत। घृणा की मौत जो मेरे दिल में थी।

मेरी यह मौत कैसे हुई, यह बताने के लिए मुझे अपने पुराने मुर्दा मैं को जिन्दा करना पड़ेगा।

मेरा नाम शेख बुराहानुद्दीन है।

जब दिल्ली और नई दिल्ली में साम्प्रदायिक हत्याओं और लूट-मार का बाजार गर्म था और मुसलमानों का खून सस्ता हो गया था, तो मैंने सोचा

...वाह री किस्मत! पड़ोसी भी मिला तो सिख।...जो पड़ोसी का फर्ज निभाना या जान बचाना तो क्या, न जाने कब कृपाण झोंक दे !

बात यह है कि उस वक्त तक मैं सिखों पर हंसता भी था। उनसे डरता भी था और काफी नफरत भी करता था। आज से नहीं, बचपन से ही। मैं शायद छह साल का था, जब मैंने पहली बार किसी सिख को देखा था। जो धूप में बैठा अपने बालों को कंघी कर रहा था। मैं चिल्ला पड़ा, 'अरे वह देखो, औरत के मुंह पर कितनी लम्बी दाढ़ी!'

जैसे-जैसे उम्र गुजरती गयी, मेरी यह हैरानी एक नस्ली नफरत में बदलती गयी।

घर की बड़ी बूढ़ियां जब किसी बच्चे के बारे में अशुभ बात का जिक्र करतीं जैसे यह कि उसे नमूनिया हो गया था उसकी टांग टूट गयी थी तो कहतीं, अब से दूर किसी सिख फिरंगी को नमूनिया हो गया था या अब से दूर किसी सिख फिरंगी की टांग टूट गयी थी। बाद में मालूम हुआ कि यह कोसना सन् 1857 की यादगार था जब हिन्दू-मुसलमानों के स्वतंत्रता युद्ध को दबाने में पंजाब के सिख राजाओं और उनकी फौजों ने फिरंगियों का साथ दिया था। मगर उस वक्त ऐतिहासिक सच्चाइयों पर नजर नहीं थी, सिर्फ एक अस्पष्ट सा खौफ, एक अजीब सी नफरत और एक गहरी धर्मान्धता। डर तो अंग्रेज से भी लगता था और सिख से भी। मगर अंग्रेज से ज्यादा। उदाहरणत: जब मैं कोई दस वर्ष का था एक रोज दिल्ली से अलीगढ़ जा रहा था। हमेशा थर्ड या इंटर में सफर करता था। सोचा कि अबकी बार सैकेंड में सफर करके देखा जाए। टिकट खरीद लिया और एक खाली डिब्बे में बैठकर गद्दों पर खूब कूदा। बाथरूम के आईने में उचक-उचक कर अपना प्रतिबिम्ब देखा। सब पंखों को एक साथ चला दिया। रोशनियों को भी जलाया कभी बुझाया। मगर अभी गाड़ी चलने में दो-तीन मिनट बाकी थे कि लाल-लाल मुंह वाले चार फौजी गोरे आपस में डेम ब्लडी किस्म की बातचीत करते हुए दूसरे दर्जे में घुस आये। उनको देखना था कि सैकेंड क्लास में सफर करने का मेरा शौक रफू-चक्कर हो गया और अपना सूटकेस घसीटता हुआ मैं भागा और एक अत्यन्त खचाखच भरे हुए थर्ड क्लास के डिब्बे में आकर दम लिया। यहां देखा तो कई सिख, दाढ़ियां खोले, कच्छे पहने बैठे थे मगर मैं उनसे डर कर दर्जा छोड़ कर नहीं भागा सिर्फ उनसे जरा फासले पर बैठ गया।

हां, डर सिखों से भी लगता था मगर अंग्रेजों से उनसे ज्यादा। मगर अंग्रेज़ अंग्रेंज थे। वे कोट-पतलून पहनते थे, तो मैं भी पहनना चाहता था। वे 'डैम...ब्लडी फूल' वाली जबान बोलते थे, जो मैं भी सीखना चाहता था। इसके अलावा वे हाकिम थे और मैं भी कोई छोटा-मोटा हाकिम बनना चाहता था। वे छुरे-कांटे से खाते थे, मैं भी छुरी-कांटे से भोजन करना चाहता था ताकि दुनिया मुझे सुसंस्कृत समझे।

उन दिनों मुझे काल और ऐतिहासिक सच्चाइयों की समझ नहीं थी। मन में मात्र एक अस्पष्ट-सा भय था। एक विचित्र-सी घृणा और धर्मान्धता थी। डर सिखों से भी लगता था मगर अंग्रेजों से उनसे ज्यादा।

मगर सिखों से जो डर लगता था, उसमें नफरत घुल-मिल गयी थी। कितने अजीब अजीब थे ये सिख, जो मर्द होकर भी सिर के बाल औरतों की तरह लम्बे-लम्बे रखते थे! यह और बात है कि अंग्रेज फैशन की नकल के सिर के बाल मुंड़ाना मुझे भी पन्सद नहीं था। अब्बा के इस हुक्म के बावजूद कि हर जुम्मा को सिर के बाल खशखशी कराए जाएं, मैंने बाल खूब बढ़ा रखे थे ताकि हॉकी और फुटबाल खेलते वक्त बाल हवा में उडें जैसे अंग्रेज खिलाड़ियों के। अब्बा कहते यह क्या औरतों की तरह पट्टे बढ़ा रखे हैं। मगर अब्बा तो थे ही पुराने विचारों के। उनकी बात कौन सुनता था। उनका बस चलता तो सिर पर उस्तरा चलवाकर बचपन में ही हमारे चेहरों पर दाढ़ियां बंधवा देते। हां, इस पर याद आया कि सिखों के अजीब होने की दूसरी निशानी उनकी दाढ़ियां थीं और फिर दाढ़ी-दाढ़ी में भी फर्क होता है। मसलन अब्बा की दाढ़ी जिसे बड़े ढंग से नाई फ्रेंच-कट बनाया करता था। या ताऊजी की दाढ़ी, जो नुकीली और चोंचदार थी मगर वह भी क्या दाढ़ी हुई जिसे कभी कैंची ही न लगे और झाड़-झंखाड़ की तरह बढ़ती रहे...उल्टा तेल, दही और जाने क्या-क्या मलकर बढ़ाई जाए, और जब खूब लम्बी हो जाए तो उसमें कंघी की जाए, जैसे औरतें सिर के बालों में करती हैं, औरतों या फिर मेरे जैसे स्कूल के फैशनपरस्त लड़के। इसके अलावा मेरे दादा हजूर की दाढ़ी भी लम्बी थी और वह भी उसमें कंघी करते थे, लेकिन उनकी तो बात ही कुछ और थी, आखिर वे मेरे दादा जान ठहरे, और सिख तो फिर सिख थे।

मैट्रिक पास करने के बाद मुझे पढ़ने-लिखने के लिए मुस्लिम विश्वविद्यालय भेजा गया। कॉलेज में जो पंजाबी लड़के पढ़ते थे, उन्हें हम दिल्ली और उत्तर प्रदेश वाले...मूर्ख, गंवार तथा उजड्ड समझते थे। न बात करने का सलीका, न खान-पीने की तमीज। तहजीब तो छू तक नहीं गयी थी उन्हें। ये बड़े-बड़े लस्सी के गिलास छकने वाले भला क्या जानें केवडेदार फालूदे और लिपटन की चाय का आनन्द! जबान बड़ी बेहूदा। बात करें तो लगे लट्ठ मार रहे हैं...असी, तुसी, साडे, तुहाडे...लाहौल विलाकूवत ! मैं तो

उन पंजाबियों से सदा कतराता रहता था। मगर, खुदा भला करे हमारे वार्डन का कि उन्होंने एक पंजाबी को मेरे कमरे में जगह दे दी। मैंने सोचा चलो, जब साथ रहना ही है तो थोड़ी-बहुत दोस्ती ही कर ली जाऐ।

कुछ ही दिनों में हमारी गाढ़ी छनने लगी। उसका नाम गुलाम रसूल था। रावलपिंडी का रहने वाला था। काफी मजेदार आदमी था। लतीफे खूब सुनाता था।

आप कहेंगे, बात चल रही थी सरदार जी की...यह गुलाम रसूल कहां से टपक पड़ा! मगर दरअसल, उसका इस किस्से से गहरा नाता है। बात यह है कि वह जो लतीफे सुनाता था, वे प्राय: सिखों के बारे में ही होते थे। जिनको सुन-सुनकर मुझे पूरी सिख कौम की आदतें, उनके नस्ली गुणों और सामूहिक चरित्र का पूरी तरह ज्ञान हो गया था। गुलाम रसूल का कहना था कि तमाम सिख बेवकूफ और बुद्धू होते हैं। बारह बजे तो उनकी अक्ल बिलकुल खब्त हो जाती है। इसके सबूत में कितनी ही घटनाएं पेश की जा सकती हैं। मिसाल के तौर पर एक सरदार जी दिन के बारह बजे साईकिल पर सवार अमृतसर के हाल बाजार से गुजर रहे थे। चौराहे पर एक सिख सिपाही ने रोका और पूछा, ''तुम्हारी साइकिल की लाईट कहां है?'' साइकिल सवार सरदार जी गिड़गिडा कर बोले, ''जमादार साहब अभी-अभी बुझ गयी है, घर से जला कर चला था।'' इस पर सिपाही ने चालान काटने की धमकी दी। एक राह चलते सफेद दाढ़ी वाले सरदार जी ने बीच-बचाव कराया ''चलो भाई कोई बात नहीं। लाईट बुझ गयी है तो अब जला लो।'' और इसी तरह के सैकड़ों लतीफे उसे याद थे, जिन्हें वह पंजाबी संवादों के साथ सुनाता था तो सुनने वालों के पेट में बल पड़ जाते थे। वास्तव में उन्हें सुनने का मजा पंजाबी में ही आता था। क्योंकि उजड्ड सिखों की अजीब-ओ-गरीब हरकतों के बयान करने का हक कुछ पंजाबी जैसी उजड्ड जबान में ही हो सकता था।

सिख न केवल बेवकूफ और बुद्धू थे बल्कि गन्दे थे जैसा कि एक सबूत गुलाम रसूल यह देता था कि वे बाल नहीं मुंडवाते थे। इसके विपरीत हम साफ-सुथरे गाजी मुसलमान हैं जो हर आठवारे जुमे के जुमे गुसल करते हैं। सिख लोग तो कच्छा पहने सबके सामने, नल के नीचे बैठकर नहाते तो रोज हैं लेकिन बालों और दाढ़ी में न जाने कैसे गन्दी ओर गिलीज चीजें मलते रहते हैं। वैसे मैं भी सिर पर एक हद तक गाढ़े दूध जैसी 'लैमन-जूस ग्लैसरीन' लगाता हूं लेकिन वह विलायत के मशहूर सुगन्धी कारखाने से आती है, मगर दही किसी गन्दे-सादे हलवाई की दुकान से।

खैर जी, हमें दूसरों के रहन-सहन वगैरह से क्या लेना-देना। पर सिखों का एक सबसे बड़ा दोष यह था कि उनमें अक्खड़ता, बदतमीजी और मारधाड़ में मुसलमानों का मुकाबला करने का हौंसला था। अब देखो न, दुनिया चाहती है कि एक अकेला मुसलमान दस हिन्दुओं या सिखों पर भारी पड़ता है। फिर ये सिख क्यों मुसलमानों का रौब नहीं मानते? कृपाण लटकाये अकड़-अकड़कर मूंछों बल्कि दाढ़ी पर भी ताव देते हुए चलते थे। गुलाम रसूल कहता, ''इनकी हेकड़ी एक दिन हम ऐसी निकालेंगे कि खालसा जी याद ही करेंगे!''

कॉलेज छोड़े कई साल गुजर गये। विद्यार्थी से मैं पहले क्लर्क बन गया और फिर हैडक्लर्क। अलीगढ़ का छात्रावास छोड़कर नई दिल्ली के एक सरकारी मकान में रहने लगा। शादी हो गयी, बच्चे हो गये। उन दिनों एक सरदार जी मेरे पड़ोस में आबाद हुए तो मुद्दतों के बाद सहसा मुझे गुलाम रसूल का कथन याद आ गया।

यह सरदार जी रावलपिंडी से तबादला करवाकर आये थे, क्योंकि रावलपिंडी जिला में गुलाम रसूल की भविष्यवाणी के मुताबिक सरदारों की हेकड़ी अच्छी तरह निकाली गयी थी। गाजियों ने उनका सफाया कर दिया था। बड़े सूरमा बनते थे। कृपाणें लिये फिरते थे। बहादुर मुसलमानों के आगे उनकी एक न चली। उनकी दाढ़ियां मूंडक़र उन्हें मुसलमान बनाया गया था। जबरदस्ती उनका खतना किया गया था। हिन्दू अखबार हमेशा की तरह मुसलमानों को बदनाम करने के लिए लिख रहे थे कि मुसलमानों ने सिख औरतों, बच्चों का कत्ल किया है। हालांकि यह कार्य इस्लामी परंपरा के खिलाफ है। कोई मुसलमान मुजाहद कभी औरत या बच्चे पर हाथ नहीं उठाया। हो न हो, अखबारों में औरतों और बच्चों की लाशों के चित्र जो छापे जा रहे थे, वे या तो जाली थे, या सिखों ने मुसलमानों को बदनाम करने के वास्ते खुद अपनी औरतों और बच्चों का कत्ल किया होगा। रावलपिंडी और पश्चिमी पंजाब के मुसलमानों असलियत सिर्फ इतनी है कि मुसलमानों की बहादुरी की धाक बैठी है और अगर नौजवान मुसलमानों पर हिन्दू और सिख लड़कियां खुद लट्टू हो जाएं तो उनका क्या कसूर है यदि वे इस्लाम के प्रचार के सिलसिले में इन लड़कियों को शरण में ले लें।

हां, तो सिखों की कोरी बहादुरी का भांडा फूट गया था। भला अब तो मास्टर तारा सिंह लाहौर में कृपाण निकालकर मुसलमानों को धमकी दे।

रावलपिंडी से भागे हुए उस सरदार और उसकी कंगाली देखकर मेरा सीना इस्लाम की महानता की रूह (आत्मा) से भर गया।

हमारे पड़ोसी सरदार जी की उम्र कोई साठ साल की होगी। दाढ़ी बिलकुल सफेद हो चुकी थी। हालांकि मौत के मुंह से बच कर आये थे, लेकिन हजरत चौबीस घंटे दांत निकाले हंसते रहते। इसी से प्रकट होता था कि वे दरअसल, कितने मूर्ख और भावहीन हैं।

शुरू-शुरू में उन्होंने मुझे अपनी दोस्ती के जाल में फंसाना चाहा। आते-जाते जबरदस्ती बातें करने लगते। उस दिन न जाने उनका कौन-सा त्यौहार था। उन्होंने हमारे यहां कड़ा प्रसाद की मिठाई भेजी (जो मेरी बेगम ने तुरन्त भंगन को दे दी) पर मैंने ज्यादा मुंह नहीं लगाया। कोई बात हुई, सूखा-सा जवाब दे दिया बस। मैं जानता था कि सीधे मुंह दो-चार बातें कर ली तो यह पीछे ही पड़ जाएगा। आज बातें तो कल गाली-गलौज। गालियां तो आप जानते ही हैं सिखों की दाल-रोटी होती हैं, कौन अपनी जबान गन्दी करे, ऐसे लोगों से संबंध बढ़ाकर।

एक इतवार की दोपहर को मैं बैठा बेगम को सिखों की मूर्खताओं के लतीफ़े सुना रहा था। उनकी आंखों देखी तसदीक करने के लिए ठीक बारह बजे मैंने अपने नौकर को सरदार जी के घर भेजा कि उनसे पूछ कर आये कि क्या बजा है? उन्होंने कहला भेजा कि बारह बजकर दो मिनट हुए हैं। मैंने कहा, ''बारह बजे का नाम लेते हुए घबराते है!''और हम खूब हंसे।

इसके बाद भी मैंने कई बार मूर्ख बनाने के लिए सरदार जी से पूछा, ''क्यों सरदार जी, बारह बज गये?''
और वे बेशर्मी से दांत फाड़ कर जवाब देते ''जी असां तो चौबीस घंटे बारह बजे रहते

हैं!'' और यह कहकर वे खूब हंसे, मानो यह बढ़िया मज़ाक हुआ।

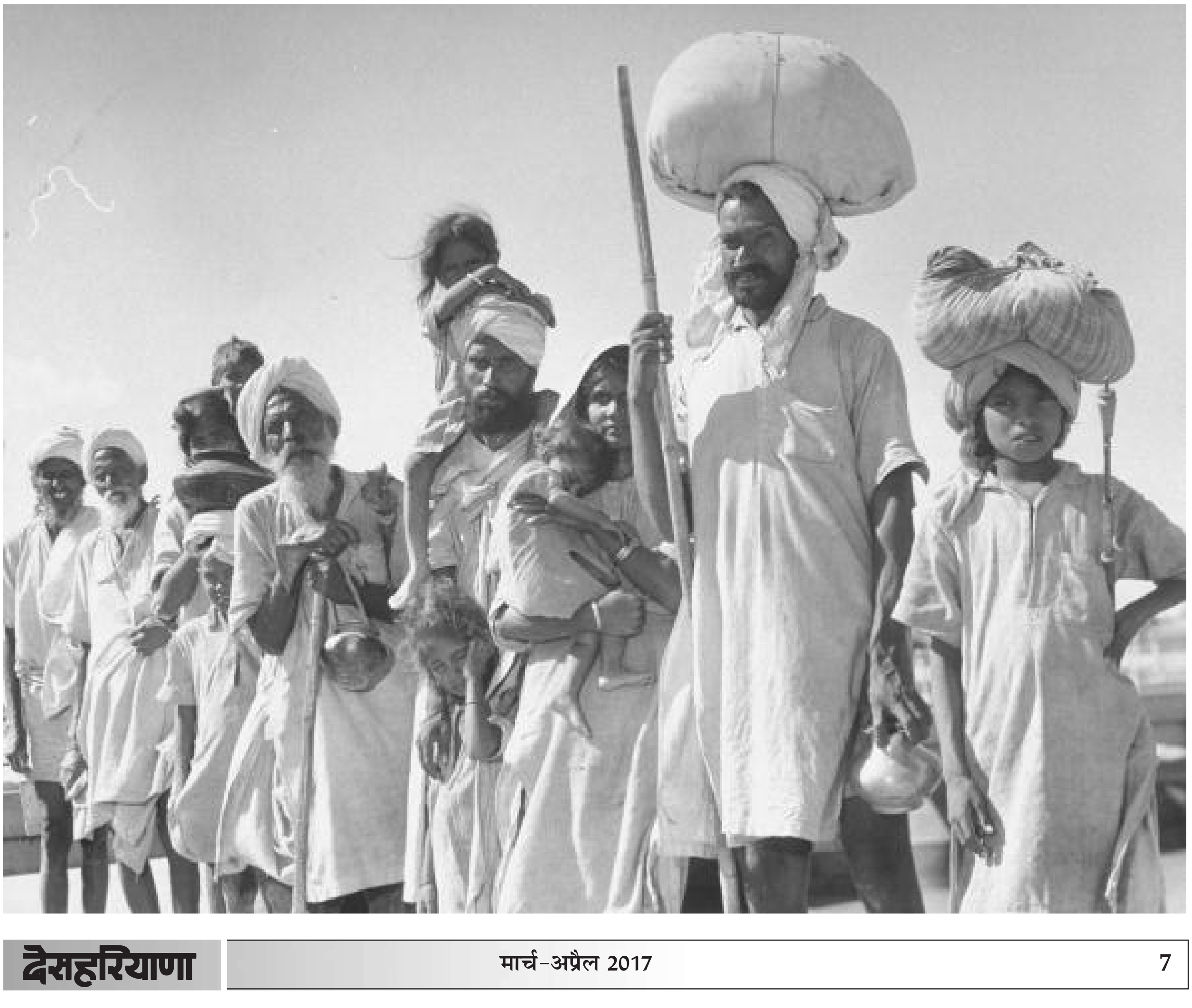
मुझे सबसे ज़्यादा डर बच्चों की तरफ से था। अव्वल तो किसी सिख का विश्वास नहीं कि कब किसी बच्चे के गले पर कृपाण चला दे, फिर ये लोग रावलपिंडी से आये थे जरूर दिल में मुसलमानों से बैर रखते होंगे और बदला लेने की ताक में होंगे। मैंने बेगम को ताकीद कर दी बच्चे हरगिज सरदार जी के मकान की तरफ न जाने दिये जाएं।

मगर बच्चे तो बच्चे ही होते हैं। कुछ दिन बाद मैंने देखा कि वे सरदार जी की छोटी बेटी मोहनी और उनके पोतों के संग खेल-कूद रहे हैं। वह बच्ची, जिसकी उम्र मुश्किल से दस साल की होगी, सचमुच मोहिनी ही थी। गोरी-चिट्टी, तीखे नैन-नक्श...बेहद सुन्दर।

इन कम्बख्तों की औरतें काफी सुन्दर होती हैं। मुझे याद आया...गुलाम रसूल कहा करता था कि अगर पंजाब से सिख मर्द चले जाएं और औरतों को छोड़ जाएं तो फिर हूरों की तलाश में भटकने की जरूरत नहीं !...हां, तो जब मैंने अपने बच्चों को उनके साथ खेलते देखा, तो मैं उनको घसीटता हुआ घर के अन्दर ले आया और खूब पिटाई की। फिर मेरे सामने कम-से-कम उनकी हिम्मत नहीं हुई कि वे कभी उधर का रुख करें।

बहुत जल्द सिखों की असलियत पूरी तरह जाहिर हो गयी। रावलपिंडी से तो वह कायरों की तरह पिटकर आये थे, लेकिन पूर्वी पंजाब में मुसलमानों को अल्पसंख्या में पाकर उन पर अत्याचार ढाना शुरू कर दिया। हजारों बल्कि लाखों मुसलमानों को शहीद होना पड़ा। इस्लामी खून की नदियां बह गयी। हजारों औरतों को नंगा करके जुलूस निकाला गया। जब से पश्चिमी पाकिस्तान से भागे हुए सिख इतनी बड़ी तादाद में दिल्ली आने शुरू हुए थे इस महामारी का यहां तक पहुंचना यकीनी हो गया था। मेरे पाकिस्तान जाने में अभी कुछ हफ्तों की देर थी इसलिए मैंने अपने बीवी-बच्चों को तो बड़े भाई के साथ हवाई जहाज से कराची भेज दिया और खुद, खुदा का भरोसा करके यहीं ठहरा रहा। हवाई जहाज में सामान चूंकि ज्यादा नहीं जा सकता था, इसलिए मैंने पूरी एक वैगन बुक करवा ली। मगर जिस दिन मैं सामान भेजने वाला था, उस दिन सुना कि पाकिस्तान जाने वाली गाड़ियों पर हमले किए जा रहे हैं, इसलिए सामान घर में ही पड़ा रहा।

पन्द्रह अगस्त को आजादी का जश्न मनाया गया, पर मुझे इस आजादी से भला क्या दिलचस्पी थी ! मैंने छुट्टी मनायी और दिनभर लेटा-लेटा 'डॉन' तथा 'पाकिस्तान टाइम्स' पढ़ता रहा। दोनों अखबारों में इस घोषित आज़ादी के परखचे उड़ाये गये थे...और सिद्ध किया गया था कि किस प्रकार हिन्दुओं और अंग्रेजों ने मुसलमानों का बीज नाश करने की साजिश की थी। यह तो हमारे कायदेआजम का ही चमत्कार था, कि पाकिस्तान लेकर ही रहे। फिर भी अंग्रेजों ने सिखों के दबाव में आकर अमृतसर जो है, हिन्दुस्तान को दे दिया। वरना सारी दुनिया जानती है कि अमृतसर



शुद्ध इस्लामी शहर है...और यहां की सुनहरी मस्जिद संसार में 'गोल्डन मॉस्क' के नाम से मशहूर है...नहीं-नहीं, वह तो गुरुद्वारा है और 'गोल्डन टेंपल' कहलाता है। सुनहरी मस्जिद तो दिल्ली में है। सुनहरी मस्जिद ही नहीं जामा मस्जिद, लाल-किला भी। निजामुद्दीन औलिया का मजार, हुमायूं का मकबरा, सफदरजंग का मदरसा...यानी चप्पे-चप्पे पर इस्लामी हुकूमत के निशान पाते हैं। फिर भी आज इसी दिल्ली बल्कि कहना चाहिए कि शाहजहांनाबाद पर हिन्दू साम्राज्य का झंडा फहराया जा रहा था! सोचकर मेरा दिल भर आया कि दिल्ली जो कभी मुसलमानों की राजधानी थी, सभ्यता और संस्कृति का प्रमुख केन्द्र थी, हमसे छीन ली गयी और हमें पश्चिमी पंजाब और सिन्ध, बलोचिस्तान वगैरह जैसे उजड्ड और गंवारू इलाकों में जबरदस्ती भेजा जा रहा था, जहां किसी को साफ-सुथरी उर्दू बोलनी भी नहीं आती। जहां सलवारों जैसा जोकराना लिबास पहना जाता है। जहां हल्की-फुल्की पाव भर में बीस चपातियों की बजाय दो-दो सेर की नानें खायी जाती हैं।

फिर मैंने दिल को मजबूत करके कि कायदेआजम और पाकिस्तान की खातिर यह कुर्बानी तो हमें देनी होगी मगर फिर भी दिल्ली छोड़ने के खयाल से दिल मुरझाया ही रहा...शाम को जब मैं बाहर निकला और सरदार जी ने दांत निकालकर कहा ''क्यों बाबू जी! तुमने खुशी नहीं मनायी?'' तो मेरे जी में आयी कि उसकी दाढ़ी को आग लगा दूं। हिन्दुस्तान की आजादी और दिल्ली में सिख शाही आखिर रंग लाकर ही रही। अब पश्चिमी पंजाब से आये हुए रिफ्यूजियों की संख्या हज़ारों से लाखों तक पहुंच गयी। ये लोग असल में पाकिस्तान बदनाम करने के लिए अपने घर-बार छोड़ वहां से भागे थे। यहां आकर गली-कूचे में अपना रोना रोते फिरते हैं। कांग्रेसी प्रोपेगंडा मुसलमानों के विरुद्ध जोरों से चल रहा है और इस बार कांग्रेसियों ने चाल यह चली कि बजाए कांग्रेस का नाम लेने के राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और शहीदी दल के नाम से काम कर रहे थे हालांकि दुनिया जानती है कि ये हिन्दू चाहे कांग्रेसी हों या महासभाई सब एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। चाहे दुनिया को दिखाने की खातिर वे बाह्य रूप से गांधी और जवाहरलाल नेहरू को गालियां ही क्यों न देते हों।

एक दिन सुबह खबर मिली कि दिल्ली में कत्लेआम शुरू हो गया है। करोलबाग में मुसलमानों के सैंकड़ों घर जला दिए गये...चांदनी चौक के मुसलमानों की दूकानें लूट ली गयीं और हजारों का सफाया हो गया!

खैर, मैंने सोचा नई दिल्ली तो एक अरसे से अंग्रेजों का शहर रहा है। लार्ड माउंटबेटन यहां रहते हैं। कम-से-कम यहां तो वे मुसलमानों पर ऐसा अत्याचार नहीं होने देंगे।

यह सोच कर मैं दफ्तर की तरफ चल पड़ा, क्योंकि उस दिन मुझे अपने प्रॉवीडेंट फंड का हिसाब करना था। असल में इसलिए ही मैंने पाकिस्तान जाने में देर कर दी थी। अभी मैं गोल मार्केट तक ही पहुंचा था कि दफ्तर का एक हिन्दू बाबू मिला। उसने कहा, ''कहां चले जा रहे हो? जाओ वापस जाओ, बाहर न निकलना। कनॉट प्लेस में बलवाई मुसलमानों को मार रहे हैं।''

मैं वापस भाग आया। अपने सक्वेयर में पहुंचा ही था कि सरदार जी से मुठभेड़ हो गयी। कहने लगे, ''शेख जी, फ़िक्र न करना। जब तक हम सलामत हैं, तुम्हें कोई हाथ नहीं लगा सकता।''

मैंने सोचा कि इसकी दाढ़ी के पीछे कितना कपट छुपा हुआ है। दिल में तो...खुश है कि चलो अच्छा हुआ मुसलमानों का सफाया हो रहा है मगर जबानी हमदर्दी जताकर मुझ पर एहसान कर रहा है क्योंकि सारे सक्वेयर में बल्कि तमाम सड़क पर मैं अकेला मुसलमान था। मुझे इन काफिरों की सहानुभूति या दया नहीं चाहिए! मैं अपने क्वार्टर में आ गया कि मैं मारा भी जाऊं तो दस-बीस को मार कर। सीधा अपने कमरे में गया, जहां पलंग के नीचे मेरी शिकारी दोनाली बन्दूक रखी थी। जब से दंगे शुरू हुए थे मैंने कारतूस और गोलियों का जखीरा जमा कर रखा था। पर वहां बन्दूक न मिली। सारा घर छान मारा। उसका कहीं पता न चला।

''क्यों हुजूर, क्या ढूंढ रहे हैं आप?'' यह मेरा वफादार नौकर मम्दू था।

''मेरी बन्दूक कहां गयी?'' मैंने पूछा, उसने कोई जवाब न दिया मगर उसके चेहरे से साफ जाहिर था कि उसे मालूम है। शायद उसने छुपायी है या चुरायी है।

''बोलता क्यों नहीं?'' मैंने डपट कर कहा तब असलियत मालूम हुई कि मम्दू ने मेरी बन्दूक चुराकर अपने दोस्तों को दे दी है, जो दरियागंज में मुसलमानों की हिफाजत के लिए हथियार जमा कर रहे थे। वह भी बड़े जोश में था, ''सरकार, सैकड़ों बन्दूकें हैं हमारे पास। सात मशीनगनें, दस पिस्तौल और एक तोप। हम काफिरों को भूनकर रख देंगे, भूनकर !''

मैंने कहा

''मेरी बन्दूक से दरियागंज से काफिरों को भून दिया गया तो इससे मेरी हिफाजत कैसे होगी? मैं तो यहां निहत्था काफिरों के चंगुल में फंसा हुआ हूं। यहां मुझे भून दिया गया तो कौन जिम्मेदार होगा?'' मैंने मम्दू से कहा कि जैसे भी हो, वह छुपता-छुपाता दरियागंज जाए और मेरी बन्दूक तथा सौ-दो सौ कारतूस भी ले आये। वह चला तो गया, लेकिन मुझे विश्वास था कि अब वह लौटकर नहीं आयेगा।

अब मैं घर में बिलकुल अकेला रह गया था। सामने कारनिस पर मेरे बीवी-बच्चों की तस्वीरें चुपचाप मुझे घूर रही थीं। यह सोचकर मेरी आंखों में आंसू आ गये कि अब उनसे मुलाकत होगी भी या नहीं, मेरी आंखें भर आयीं। मगर फिर इस खयाल से कुछ सन्तुष्टि भी हुई कि कम-से-कम वे तो सकुशल पाकिस्तान पहुंच गये हैं। काश, मैंने प्रॉवीडेंट फंड का लालच न किया होता!

''सतसिरी अकाल?'' हरहर महादेव !'' दूर से आवांजें करीब आ रही थीं। ये दंगाई थे। ये मेरी मौत के दूत थे। मैंने जख्मी हिरन की तरह इधर-उधर देखा जो गोली खा चुका हो और जिसके पीछे शिकारी कुत्ते लगे हों...बचाव की कोई सूरत न थी। क्वार्टर के किवाड़ पतली लकड़ी के थे और उनमें शीशे लगे हुए थे। मैं अन्दर बन्द होकर बैठा भी रहा, तो भी बलवाई दो मिनट में किवाड़ तोड़कर अन्दर आ सकते थे।

''सतसिरी अकाल!''

''हरहर महादेव!''

आवाज़ें और निकट आ रही थीं, मेरी मौत निकट आ रही थी।

इतने में दरवाजे पर दस्तक हुई। सरदार जी दाखिल हुए।

''शेख जी, तुम हमारे क्वाटर में आ जाओ...जल्दी करो''...बिना सोचे-समझे अगले क्षण मैं सरदार जी के बरामदे की चिकों के पीछे था। मौत की गोली सन से मेरे सिर पर से गुजर गयी, क्योंकि मैं

वहां दाखि़ल हुआ ही था कि एक लारी आकर रुकी और उसमें दस-पन्द्रह युवक उतरे। उनके अगुआ के हाथ में एक सूची थी।

''मकान नं 8 शेख बुरहानुद्दीन?'' उसने कागज पर नज़र डालते हुए हुक्म दिया और पूरा दल टूट पड़ा। मेरी गृहस्थी की दुनिया मेरी आंखों के सामने उजड़ गयी। कुर्सियां, मेजें, सन्दूक, तस्वीरें, किताबें, दरियाँ, कालीन यहाँ तक कि मैले कपड़े हर चीज़ लारी में पहुंचा दी गयी।

डाकू!

लुटेरे!!

कज्जाक!!!

और यह सरदार जी, जो मुँह की हमदर्दी जताकर मुझे यहां ले आये, यह कौन-सा कम लुटेरे हैं! वे बाहर जाकर बलवाइयों से बोले, ''ठहरिए साहब, इस घर पर हमारा हक है। हमें भी लूट का हिस्सा मिलना चाहिए।'' यह कहकर उन्होंने अपने बेटे और बेटी को इशारा किया, और वे भी लूट में शामिल हो गये। कोई मेरी पतलून उठाये चला आ रहा था, कोई सूटकेस और कोई मेरे बीवी-बच्चों की तस्वीरें ला रहा था। लूट का यह सारा माल सीधा अन्दर वाले कमरे में पहुंचाया जा रहा था।

अच्छा रे सरदार! जिन्दा रहा तो तुझसे भी निपट लूंगा।...मगर उस वक्त तो मैं चूँ भी नहीं कर सकता था। क्योंकि दंगाई जो सब के सब हथियारबन्द थे मुझसे कुछ ही गज के फासले पर जमा थे। उन्हें मालूम हो गया कि मैं यहाँ हूं तो...

''अरे अन्दर जाओ तुसी...'' सहसा मैंने देखा कि सरदार जी हाथ में नंगी कृपाण लिये मुझे भीतर बुला रहे हैं। मैंने एक बारगी उस दढ़ियल चेहरे को देखा, जो लूटमार की भाग-दौड़ से और भी डरावना हो गया था...और फिर कृपाण को, जिसकी चमकीली धार मुझे मौत की दावत दे रही थी। बहस करने का मौका नहीं था। अगर मैं जरा भी बोला और बलवाइयों ने सुन लिया, तो अगले ही पल गोली मेरे सीने से पार होगी। कृपाण और बन्दूक वाले कई बलवाइयों से कृपाण वाला बुड्ढा बेहतर है। मैं कमरे में चला गया, झिझकता हुआ चुपचाप।

''यहाँ नहीं जी, अन्दर आओ।''

मैं और अन्दर कमरे में चला गया, जैसे बकरा कसाई के साथ बलि की वेदी में दाखिल होता है। मेरी आँखें कृपाण की धार से चौंधियायी जा रही थीं।

''यह लो जी, अपनी चीजें सम्भाल लो।'' कहकर सरदार जी ने वह सारा सामान मेरे सामने रख दिया, जो उन्होंने और उनके बच्चों ने झूठमूठ की लूट में हासिल किया था।

सरदारनी बोली, ''बेटा अफ़सोस है कि हम तेरा कुछ भी सामान नहीं बचा सके।''

मैं कोई जवाब न दे सका।

इतने में बाहर से कुछ शोर-शराबा सुनाई दिया। बलवाई मेरी लोहे की अलमारी निकालकर उसे तोड़ने की कोशिश कर रहे थे।''इसकी चाबियाँ मिल जातीं तो मामला आसान हो जाता।''

''चाबियां तो इसकी अब पाकिस्तान में मिलेंगी। भाग गया न डरपोक ! मुसलमान का बच्चा था तो मुकाबला करता।''

नन्हीं मोहनी मेरी बीवी की कुछ रेशमी कमीजें और गरारे न जाने किससे छीन कर ला रही थी। उसने बलवाइयों की बात सुनी तो बोली, ''तुम बड़े बहादुर हो, शेखजी डरपोक क्यों होने लगे...वह तो कोई भी पाकिस्तान नहीं गये।''

''नहीं गया तो यहाँ से कहाँ मुंह काला कर गया?''

''मुंह काला क्यों करते! वह तो हमारे घर... मेरे दिल की धड़कन पल भर के लिए बन्द हो गयी। बच्ची अपनी गलती महसूस करते ही खामोश हो गयी। मगर बलवाइयों के लिए यही काफी था।

सरदार जी के सिर पर जैसे खून सवार हो गया। उन्होंने मुझे अन्दर बन्द करके दरवाजे को कुंडी लगा दी। अपने बेटे के हाथ कृपाण थमायी और खुद बाहर निकल आये।

बाहर क्या हुआ मुझे ठीक से पता नहीं चला।

थप्पड़ों की आवाज...फिर मोहनी के रोने की आवाज और उसके बाद सरदार जी की आवाज, पंजाबी गालियाँ! कुछ पल्ले नहीं पड़ा कि किसे गालियाँ दे रहे हैं और क्यों दे रहे हैं। मैं चारों तरफ से बन्द था। इसलिए ठीक सुनाई न दिया।

और फिर गोली की आवाज... सरदार जी की चीख... लारी चालू होने की गड़गड़ाहट...और फिर सारी सक्वेयर पर सन्नाटा छा गया। जब मुझे कमरे की कैद से निकाला गया तो सरदार जी पलंग पर पड़े थे, और उनके सीने के निकट सफेद कमीज छाती पर खून से लाल हो रही थी। उसका बेटा पड़ोसी के घर से डॉक्टर को फोन कर रहा था।

''सरदार जी ! यह तुमने क्या किया?'' मेरी जबान से न जाने ये शब्द कैसे निकले। हैरान था। मेरी बरसों की दुनिया, विचारों, मान्यताओं, संस्कारों और धार्मिक भावनाओं का संसार ध्वस्त हो गया था।''सरदार जी, यह तुमने क्या किया?''

''मुझे कर्जा उतारना था, बेटा।''

''कर्जा?''

''हाँ, रावलपिंडी में तुम्हारे जैसे ही एक मुसलमान ने अपनी जान देकर मेरी और मेरे परिवार की इज्जत बचायी थी।''

''उसका नाम क्या था सरदार जी?''

''गुलाम रसूल।''

''गुलाम रसूल!'' ...और मुझे ऐसा लगा मानो किस्मत ने मेरे साथ धोखा किया है। दीवार पर लटके घंटे ने बाहर बजाने शुरू कर दिये... एक... दो... तीन... चार... पाँच...

सरदार जी की निगाहें घंटे की तरफ घूम गयीं...जैसे मुस्करा रहे हों और मुझे अपने दादा हुजूर याद आ गये, जिनकी कई फुट लम्बी दाढ़ी थी...सरदार जी की शक्ल उनसे कितनी मिलती-जुलती थी!...छह...सात...आठ...नौ...

मानो वे हँस रहे हों...उनकी सफेद दाढ़ी और सिर के खुले बालों ने उनके चेहरे के गिर्द एक प्रभामंडल-सा बनाया हुआ था।

...दस... ग्यारह... बारह...जैसे वे कह रहे हो, ''जी, असाँ दे तो चौबीस घंटे बारह बजे रहते हैं।''

फिर वे निगाहें हमेशा के लिए बन्द हो गयी!...और मेरे कानों में गुलाम रसूल की आवाज़ दूर...बहुत दूर से आयी...''मैं कहता था न कि बारह बजे इन सिखों की अक्ल मारी जाती है...और ये कोई न कोई बेवकूफी कर बैठते है।...अब इन सरदार जी को ही देखो...एक मुसलमान की खातिर अपनी जान दे दी!''

पर ये सरदार जी नहीं मरे थे। मैं मरा था।

•

कहानी

भगवाना चौधरी

कुलबीर सिंह मलिक

नवम्बर का महीना। दोपहर का वक्त। सन् सैंतालीस का मुल्क के बंटवारे का दौर। जींद शहर से पांच सात किलोमीटर पर जींद-हांसी रोड पर एक गांव है। जिसका नाम है ईक्कस। बताते हैं कि महाभारत काल में महान योद्धा दुर्योधन महाबली भीम से छुपते-छुपाते यहां के तालाब में आ छुपा था। खैर, मेरी कहानी का महाभारत की उस कहानी से कोई सरोकार नहीं है। मेरी कहानी का सरोकार तो मुल्क के बंटवारे की उस महाभारत से है, जिसने एक बार तो दुनिया के इस भाग की मानवता को चिथड़े-चिथड़े और लहुलुहान कर दिया था।

गांव के अड्डे पर प्रशासन की देखरेख में दो-तीन बोनट वाली बसें खड़ी हैं, जिनमें लादकर आसपास के गांवों की मुस्लिम आबादी को सुरक्षित स्थान पर ले जाया जा रहा था। बड़े शोरगुल व बदहवासी का नजारा था। सीमा के दोनों ओर से हिन्दू-मुस्लिम आबादी का पलायन हो रहा था। जींद के आसपास के गांवों में वैसे भी मुस्लिम आबादी बहुत कम थी। रोज-रोज के खून-खराबे व मारकाट के माहौल ने इन लोगों को मुल्क छोड़ने पर मजबूर कर दिया था। पर इस वहशियाना दौर में भी कुछ लोग थे जो मानवता पर कायम थे। आसपास के गांवों के मौजिज लोग मुस्लिम आबादी को सुरक्षित ठिकानों पर पहुंचाने में जी-जान से लगे थे। ईक्कस गांव का चौधरी भगवान सिंह भी प्रशासन की मदद के लिए इस काम में जुटा था। इनकी कोशिश थी कि फसादी व दंगाई लोग निर्दोष औरतों व बच्चों पर न टूट पड़ें। अपने इस मकसद के लिए ये लोग अपनी जान पर खेलने को भी उतारू थे।

चौधरी भगवान सिंह गांव व इलाके का मौजिज आदमी था। बड़ा प्रभावशाली व्यक्तित्व था। ऊंचा कद, गौर वर्ण, चौड़ा वक्ष, लंबी रोबदार मूंछें, जिनमें थोड़ी-थोड़ी सफेदी आने लगी थी। उम्र होगी कोई 45-50 साल की। खानदानी चौधरी था। सफेद धोती-कुर्ता पहन साफा बांध हाथ में जब डोगा संभाल कर निकलता था तो ऐसा लगता था जैसे कोई शोभायात्रा निकल रही हो। इलाके में इनका रसूख था। सामाजिक कार्यक्रमों में बढ़चढ़ कर हिस्सा लेते थे, पर किसी प्रकार के सियासी मनसूबे नहीं थे। आसपास के गांवों के औरत व बच्चे भी उन्हें पहचानते थे। इलाके की किसी भी पंचायत में लोग उनकी बात को नहीं मोड़ पाते थे। हर मुद्दे पर वो सही पक्ष का समर्थन करते थे। सच्चाई का पक्ष लेते थे। मजहबी व कौमी दलदल से ऊपर थे। ग्रामीण समाज में, विशेषत: जाट समुदाय में, बड़े नाम को सरल व छोटा कर बुलाने की प्रवृति है सो लोग उन्हें भगवाना चौधरी के नाम से बुलाते थे।

भगवाना चौधरी एक चबूतरे पर खड़े आसपास के लोगों को दिशा-निर्देश दे रहे थे। औरत व बच्चे, बदहवास से, ढोर-डंगरों की तरह बसों में लादे जा रहे थे। सबको जान की पड़ी थी। अंदर बसों में भी पैर रखने को स्थान न था। किसी को भी इस बात का सब्र न था कि अब नहीं तो अगले चक्कर में चले जाएंगे। मुस्लिम औरतें कभी खुद को संभालती, कभी बच्चों को या फिर बगल या सिर पर रखी गठड़ी को संभालती बसों के दरवाजों में टक्कर मार रही थी।

इसी बीच एक मुस्लिम औरत भगवाना चौधरी के सामने आन खड़ी हुई। वह एक बच्चा कंधे पर बैठाए थी, एक बच्ची गोदी में थी व एक बच्ची उसके पल्लू से सटी थी। हफड़ा-दफड़ी व शोरगुल में उसने गोदी व कंधों के छोटे बच्चों को एक तरफ बिठा पल्लू से सटी बच्ची भगवाना चौधरी की झोली में डाल दी। हांफती, रोती, चीखती व भर्राई आवाज में इतना जरूर कह पाई, 'चौधरी! मैं ईगरा गांव की मास्टर बरकत शेख की औरत हूं। अपना लहू! अपना ईमान! तेरी झोली में डाल रही हूं। अब तू जाणै तेरा ईमान जाणै।'

इतना कह वो औरत बाकी दोनों बच्चों को समेट चलती बस में सवार हो गई। चौधरी को तो मानो करंट-सा लग गया। कुछ पल के लिए तो उसका सिर चकरा-सा गया। वो वहीं चबूतरे पर उकड़ू बैठ गया। उसकी गोद में चार-पांच साल की फूल-सी बच्ची पड़ी थी। उसने चैकदार कुर्ता व सुथना पहना था। हालात से सहमी प्यारी-सी ये बच्ची उस भगवाना चौधरी की ओर ही देखे जा रही थी। मानो उसे उसकी मां की समझ पर पूरा भरोसा था और बदहवासी व पागलपन की उस धक्कमपेल में उसकी मां ने उसे सही ठिकाने पर पहुंचा दिया था। बच्ची को गोद से उतार कुछ देर के लिए भगवाना चौधरी असमंजस में पड़ गया। समझ में नहीं आया क्या करे। इससे पहले कि वो कुछ कह पाता या हालात को समझ पाता बरकत शेख की बीवी तो निकल चुकी थी। ये काफिले शहर में जाकर जींद रेलवे स्टेशन से फौरी सरहद के उस पार रवाना होने थे। आसपास के लोग भी ये नजारा देख रहे थे।

फिर वहां स्टेशन पर तो जनसैलाब था। पीछा करने का कोई फायदा न था। बच्ची की मां मंशा तो भगवाना चौधरी ने देख ही ली थी, उसे नियत पर भी पूरा भरोसा था। सो कुछ देर में बच्ची की उंगली थाम भारी व थके कदमों से हवेली की ओर चल दिया। इस थकान में भी कुछ शांति व सुकून का अहसास हो रहा था। उसे सफर का अहसास तक न था और गहरी सोच में पड़ा था।

इसी सोच-विचार में जाने कब हवेली के दरवाजे पर पहुंच गया और उसकी तंद्रा तब टूटी जब उसकी बीवी सत्यवती ने संबोधन किया।

'आ गए! ये बच्ची किसकी है?'

भगवाना ने बीवी के सवाल का कोई जवाब न दिया और सामने पड़े पलंग पर बैठ अपनी बायीं और बच्ची को बैठा लिया। बच्ची के लिए एक गिलास दूध लाने को कहा।

इस बीच बीवी ने फिर से प्रश्न किया-

'ये बच्ची किसकी है?'

भगवाना ने कुछ सोच-समझकर बड़े संयत भाव से-'अब तो अपनी ही

समझो।'

बीवी ने फिर प्रश्न किया-'मैं समझी नहीं।'

'तकदीर की मारी एक मुसलमान औरत इसे मेरी झोली में डाल गई।' भगवाना ने जवाब दिया।

'और आप ले आए?' बीवी ने सवाल किया।

इस बीच में घर के और सदस्य भी इकट्ठे हो गए और भगवाना चौधरी ने तफसील में सारी घटना का ब्यौरा दिया।

'फिर भी ये कोई गाय, भैंस या बिल्ली का बच्चा तो है नहीं कि कोई औरत इसे आपकी झोली में डाल गई और आप इसे ले आए?' सत्यवती का कहना था।

'मजबूर था। और क्या करता? उस औरत ने ये बच्ची मेरी झोली में डाली ही इस आस्था और विश्वास से कि मेरे पास और कोई रास्ता ही नहीं बचा है। बच्ची को मेरी झोली में डालते वक्त बोल गई थी -अपने लहू, अपने ईमान को तेरी झोली में डाल रही हूं। अब तू जाने तेरा ईमान जाने। ऐसे में बता मैं क्या करता?' भगवाना का कथन था।

'वैसे तो आप जो ठीक समझें, करें। पर कन्या का मामला है। वो भी एक मुसलमान कन्या का। चारों ओर कौमी दंगे और फसाद आप से छुपे नहीं हैं। कहीं घर बैठे कोई आफत न मोल ले लें। फिर आपकी नीयत तो नेक और सच्ची है, पर दुनिया वालों का क्या भरोसा? सब आपकी नजर से थोड़ा सोचते हैं।' सत्यवती का तर्क था।

'दुनिया की मुझे कोई परवाह नहीं। बस तू इस बच्ची पर अपना मां वाला हाथ रख दे। शायद इस बेसहारा बच्ची की परवरिश का नेक काम ईश्वर हमारे से ही कराना चाहता हो।' भगवाना का कहना था।

भगवाना की पत्नी सिर्फ नाम के लिए ही सत्यवती नहीं थी। वह एक नेक औरत थी और अपने पति के भावों की कद्र करती थी। वह पति की बात मान गई और बच्ची को छाती से लगा लिया। इस कथन के साथ कि आज से मेरी एक नहीं, दो बेटियां हैं। एक पेट से व एक ईमान से। इसके बाद कुछ दिन तक गांव में इस बात की सरसराहट रही कि भगवाना चौधरी अपने घर में मुस्लिम बच्ची रखे है। पर हकीकत सबको मालूम थी और न तो भगवाना की नेकनीयती पर किसी को शक था और न किसी की हिम्मत थी कि भगवाना चौधरी के इस मामले में दखल दे।

एक बार जरूर धार्मिक उन्माद लोगों में घर कर गया था, पर इस क्षेत्र में बसे प्रमुख व प्रबल वर्ग में धार्मिक कट्टरता नहीं थी।

भगवाना अपने लक्ष्य पर कायम रहा। उसने अपनी इस बेटी को भी ऊंची से ऊंची शिक्षा दी। भगवाना ने जिस प्यार और सत्यनिष्ठा से इस बच्ची का पालन-पोषण किया वो इलाके में एक मिसाल बन गई।

इस बीच भगवाना चौधरी ने इगरा गांव में पूछताछ की। पता लगा कि बरकत शेख शिक्षा विभाग में अध्यापक था और इन दिनों में उसकी बदली सीमा के उस पार पश्चिमी पंजाब में थी। बरकत शेख का बड़ा बेटा उसके साथ था और उसकी बीवी व बच्चों का पाकिस्तान जाना तय था। उससे ज्यादा बरकत शेख के परिवार के बारे में कोई जानकारी न मिली।

युग बीतता गया। आठवें दशक के पूर्वार्द्ध का दौर! हरियाणा अलग से प्रदेश बन गया। जींद शहर को जिले का दर्जा दे दिया गया था। पाकिस्तान से प्रशासनिक अधिकारियों का एक शिष्टमंडल प्रदेश की राजधानी चंडीगढ़ में आया। उनका लक्ष्य प्रदेश में हुई चहुंमुखी प्रगति का अध्ययन करना था। इस उद्देश्य से शिष्टमंडल के सदस्य प्रदेश के जिला मुख्यालयों में आए। तीन सदस्यों का एक शिष्टमंडल जींद शहर पहुंचा। इनका टीम लीडर था मोहम्मद इस्माईल। इस्माईल पाकिस्तानी सिविल सेवा का वरिष्ठ अधिकारी था। उसने इस क्षेत्र एवं यहां बसे लोगों में विशेष रूचि दिखाई।

जिले के उपायुक्त भारतीय प्रशासनिक सेवा के एक मिस्टर राव थे। काफी काबिल और सुलझे हुए अधिकारी। उपायुक्त महोदय ने जिले के अन्य अधिकारियों से शिष्टमंडल के सदस्यों का परिचय कराया। एक शाम उनके स्वागत में सहभोज व सांस्कृतिक कार्यक्रम भी रखा। जिले में तैनात अधिकारियों में एचसीएस काडर से एक युवा मुस्लिम युवती सकीना भी थी। उसे शुगर मिल का चार्ज दे रखा था। मोहम्मद इस्माईल का जिले के उपायुक्त एवं अन्य अधिकारियों के साथ बहुत ही खुला एवं स्पष्ट विचार-विमर्श हुआ। इनको इस क्षेत्र के बारे में जानकारी भी बहुत थी। इलाके के कुछ गांव तो इनकी उंगलियों पर थे।



उन्होंने उपायुक्त से सवाल किया-'आप तो अहीरवाल क्षेत्र से हैं। यह तो जाट बाहुल्य क्षेत्र है। जाटों का गढ़ कहिए। आप ठहरे

अहीरवाल क्षेत्र से।'

राव साहब को इस्माईल साहब की टिप्पणी में सियासी बू आई। राव साहब ने चुटकी ली–'यहां सारे ही जाट हैं।'

'मैं समझा नहीं।' मोहम्मद इस्माईल ने सवाल किया।

राव साहब ने खुलासा किया–आप जानते हैं, पंजाबी कोई कौम नहीं। ये एक तहजीब है। जीने का एक ढंग कहिए। उसमें फिर चाहे किसी जाति के लोग हों या किसी मजहब के। आप ही बताएं! पंजाब में बसे मुसलमान क्या पंजाबी नहीं हैं? या फिर इस ओर बसे हिन्दू पंजाबी नहीं हैं?'

इस्माईल साहब निरुतर थे। राव साहब जारी रहे–'मैं तो कहता हूं जाट भी एक तहजीब ही है। जीने का, सोचने का एक ढंग। इसे आप पंजाबियत की तर्ज पर हरियाणवी तहजीब भी कह सकते हैं। प्रदेश के हर क्षेत्र में बसी पीजेन्टरी क्लास के लोगों की वही समस्याएं हैं, वही आवश्यकताएं हैं। आप जानते हैं इस प्रदेश की प्रगति का राज। यहां के लोगों की सोच बहुत ही 'प्रोग्रेसिव' है। लोग पोंगा पंडित या कट्टर पंथी नहीं हैं। मेरा मतलब है लोगों में कठमुल्लापन नहीं है। जिन सामाजिक बुराइयों के निवारण के लिए स्वामी दयानंद, राजाराम मोहनराय व सर सैयद अहमद खान जैसे समाज सुधारक संघर्ष करते रहे, वो बुराइयां यहां के समाज में जड़ ही नहीं पकड़ पाई। जैसे कि छूआछूत, विधवा विवाह पर रोक। तंत्र व बलि जैसी धार्मिक कुरीतियां, नारी उत्थान व उनकी शिक्षा के बारे में भी लोगों के विचार बहुत उन्मुक्त हैं। प्रशासन में भी महिलाओं की पूरी भागीदारी है।

शुगर मिल के दौरे के दौरान इस्माईल साहब की मुलाकात शुगर मिल की एमडी मुस्लिम युवती सकीना से हुई। इस्माईल साहब ने सकीना से सवाल किया–'आप एक औरत हैं और वह भी एक मुस्लिम औरत। आपका औरत होना, एक मुस्लिम औरत होना क्या आपके आड़े नहीं आया?'

सकीना एक रौशन–दिमाग युवती थी और इस प्रकार के सवाल के लिए पूरी तरह से तैयार थी। सकीना के जवाब में सच्चाई के साथ–साथ भावुकता का पुट भी था। बड़े सधे हुए शब्दों में जवाब दिया–'हमारे यहां क्रांतिकारी बदलाव आए हैं। मेरा औरत होना, मुस्लिम औरत होना, अगर आप ऐसा सोचते हैं, फायदेमंद ही रहा है। यत्र पूजयते नारी, तत्र रमते देवा-यहां के समाज की सोच है। यहां की औरत घर की चारदीवारी से बाहर आ चुकी है। यहां की नारी की सीमा अब नीला आसमान है। आप यहां की नारी की तुलना पाकिस्तानी नारी से न करें। पाकिस्तानी नारी की व्यथा, वहां के समाज व हालात का जायजा, वहां की तहमीनाओं और नसरीनाओं के माध्यम से मुझे बाखूबी मिलता रहा है। आप तो यहां के प्रबुद्ध वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं – कुछ कीजिए उन बेचारियों के लिए।'

इस्माईल ठगा–सा रह गया। इस बीच उनकी बातों में अन–औपचारिकता आ गई थी।

बातों–बातों में इस्माईल ने सकीना से सवाल किया–'आपके शौहर क्या करते हैं?'

'अभी शादी नहीं की।' सकीना का जवाब था।

'मतलब?' इस्माईल ने सवाल किया।

'अब्बा जिद्द किए हैं कि किसी मुस्लिम लड़के से ही शादी करो।'

'ठीक तो कहते हैं! कोई इश्क का माजरा है क्या?'

'हां! इश्क का ही मामला है। इश्क हकीकी। पर आप नहीं समझेंगे।'

अगले दिन मोहम्मद इस्माईल ने आसपास के कुछ गांवों में जाने की इच्छा जाहिर की। उपायुक्त महोदय ने एसडीएम महोदय की उनके साथ इस काम के लिए ड्यूटी लगा दी। अगले दिन सुबह–सुबह मोहम्मद इस्माईल जींद–भिवानी रोड पर ईगरा गांव पहुंचे। रास्ते में मोहम्मद इस्माईल ने रहस्योद्घाटन किया कि ईगरा मेरा पुश्तैनी गांव है। एसडीएम महोदय के बदन में एक सिहरन–सी दौड़ गई। उन्होंने गांव के मौजिज लोगों को इकट्ठा किया, विशेषकर बुजुर्ग औरतों और मर्दों को और बताया कि इस्माईल साहब इसी गांव से हैं। मोहम्मद इस्माईल एक साथ ही रोमांच एवं कौतुहल से विह्वल से हो गए थे। उन्होंने गांव के कुछ बुजुर्गों का नाम लिया। साथ में बताया कि हमारा घर नाइयों वाली कुई के पास दरिया जाट के घर के साथ था। गांव के लोगों में खुसर–पुसर हुई। तभी भीड़ से सत्तर साल का एक बुजुर्ग उठ कर आया और इस्माईल से पूछा–'तुम मास्टर बरकत शेख के बेटे हो क्या? मैं ही हूं तुम्हारा पड़ोसी दरिया जाट।' दरिया जाट का इतना कहना था कि मोहम्मद इस्माईल मारे भावुकता के बिफर पड़ा। उसकी आंखों से अश्रुधारा बह निकली। चाचा कह वह दरिया के गले से लिपट गया। बहुत ही मर्मस्पर्शी नजारा था। फिर तो गांव की बुजुर्ग औरतों और मर्दों का तांता लग गया। पुरानी यादों का एक सिलसिला–सा चल पड़ा। लोग इस्माईल को उसके पुश्तैनी घर में ले गए। अब भी घर में कोई खास बदलाव न आया था। इस्माईल के मानस पटल पर इस घर से जुड़ी धुंधली–धुंधली यादें उभरने लगी। पर इस सारे मेल–मिलाप के बीच इस्माईल की अपनी बहन के बारे में पूछने की हिम्मत न हुई। दरिया क्योंकि उनका पड़ौसी था और दोनों परिवारों में सौहार्द व दोस्ती के ताल्लुकात रहे थे, उसी ने बात शुरू की–

'इस्माईल बेटे, हमारे पास बरकत शेख के परिवार की एक अमानत है। तुम्हारी मां ने जब और सारी बातें बताई हैं, तो यह भी बताया होगा कि वो अपनी बड़ी बेटी हम लोगों की झोली में डाल गई थी। अब वो हमारे इलाके की बेटी है।'

भीड़ में फिर से खुसर–पुसर हुई। दरिया ने इस्माईल व एसडीएम महोदय से सारी बात का खुलासा किया। इस्माईल की खुशी का ठिकाना न रहा। मारे खुशी व अचरज के एक बार फिर आंसुओं की सरिता बह निकली। इस बीच एसडीएम महोदय ने भगवाना चौधरी को संदेश भिजवाया और सारा का सारा काफिला इक्कस गांव की ओर भगवाना चौधरी की हवेली की ओर रवाना हो गया। भगवाना चौधरी के घर एक मेला–सा लग गया। भगवाना चौधरी पचहत्तर की उमर पार कर चुका था। सफेद दाढ़ी व मूंछ, सफेद धोती व कुर्ता, सौम्य चेहरा। उनका व्यक्तित्व किसी संत, किसी दरवेश का–सा था। डीसी महोदय के साथ प्रशासन के और लोग भी वहां पहुंच गए थे। भगवाना चौधरी ने इस्माईल को गले से लगाया और बिफर पड़ा–'भाई! आपकी मां जिस बच्ची को मेरी झोली में डाल गई थी, मेरे दीन–ईमान की दुहाई देकर, मैंने और मेरे परिवार ने उसे बहुत नाज–नखरों व प्यार से पाला है। उस दिन तुम्हारी मां एक हीरा हमारी गोद में डाल गई थी।'

वह ज्यादा नहीं बोल पाया और भावातिरेक हो भगवाना चौधरी और उसकी पत्नी सत्यवती ने एक सुंदर, सुशिक्षित व स्वाबलंबी युवती इस्माईल के आगे कर दी। भावविह्वल हो भगवाना बस इतना ही कह पाया–

'इस बच्ची को डाल कर गई थी तुम्हारी मां मेरी झोली में।'

इस्माईल के सामने खड़ी वह युवती सकीना थी – सकीना शेख।

•

वो रात को लाहौर चले गए

नरेश कुमार

भरतो इस साल चौरासी पार कर जाएगी। 15 वर्ष की उम्र में शादी हो गई थी। साढ़े सोलह की उम्र में पहली बेटी को जन्म दिया। अपने हल्के-फुल्के शरीर को लिए भरतो आस-पड़ोस की हमउम्र साथिनों का हाल-चाल पूछती रहती। अपनी चार साथिनों से भरतो उम्र में सबसे बड़ी दिखती है। उसकी याददाश्त पर उम्र की जरा भी आंच दिखाई नहीं पड़ती। भरतो के साथ उसकी उम्रदराज तीन साथिनें प्रतिदिन एकांत में बैठकर अपने जीवन के तजुर्बों को बांटती हुई दिखाई पड़ती। कार्तिक वाली बीमारी से हुई मौतों व पुराने वक्तों में पड़े अकालों के पीड़ादायक अनुभवों पर भरतो व उसकी साथिनें घंटों बातचीत करती रहती। घर परिवारों में बुजुर्गों की उपेक्षा पर भी उनके बीच अक्सर चर्चा होती।

'हाय रे मेरा बेटा ! हाय रे ये प्यार ! भगवान तेरी कमाई सफल बनाए। तेरी तपस्या पूरी करे।' जब भी मैं उन चारों को नमस्ते करते हुए गुजरता तो इसी आशीर्वाद के साथ सब एक ही स्वर में बोलती। 'तेरी बेटी कैसी है ? कई दिन हो गए उसे देखे हुए बेटा।' भरतो ने आत्मीयता से पूछा।

'क्या इसके पास बेटा नहीं है?' भरतो की ओर देखते हुए साथ बैठी दूसरी महिला ने पूछा। 'इसके पास एक ही बेटी है।' भरतो ने कहा। 'हो जायेगा, कोई बात नहीं बेटा। यह तो भगवान की माया है। जरूर होगा। जो दूसरों के काम आता है उसका जीवन जरूर सफल होता है। कण-कण में वह बसा हुआ है। वह सब कुछ देखता है।' चारों ने एक आवाज में मुझे जल्दी पुत्र पैदा होने की तसल्ली दिलाते हुए कहा। 'बेटी भी बेटे जैसी होती है ताई।' नहीं बेटा, तुम्हारे विचार तो अच्छे हैं पर यह समाज कहां मानता है। धीरे-धीरे मान जाएगा ताई जी।

'आजादी के समय तो आप कई साल की रही होंगी, ताई भरतो।' मैंने उनकी बात काटते हुए कहा। हां बेटा। हिन्दू मुसलमान की मारकाट की साल मेरी बड़ी बेटी 7 साल की थी। उन वक्तों में शादी व बच्चे जल्दी हो जाते थे। मारकाट में बड़ा जुल्म हुआ था, बेटा। पूरे गांव में मुनादी करवा दी जाती थी कि मुसलमान चढ़ाई करने वाले हैं। पूरा गांव 'आंख की फौर' (तुरन्त) में एक जगह इकट्ठा हो जाता था। मैं भी अपनी दो साल की रोशनी को छाती से लगाकर बच्चों के साथ तेरे ताऊ के पीछे चल पड़ती। अपनी टूमों (जेवरात) की पोटली उठाकर घर में पड़े तूड़े में दबा देती और तेरे ताऊ को कहती कि देख, मुझे कुछ हो जाए, तो यह पोटली यहां दबाई हुई है, निकाल लेना। 'जल्दी-जल्दी निकलो, पहले अपनी जान बचाओ, टूम जाए भाड़ में।' तेरे ताऊ गुस्से में कहते। एक दिन तो बेटा हद हो गई, जब गांव के बाहर मिट्टी बर्तन पकाने के पंजावे से तेज हवा के कारण आग की लपटें उठ रही थीं और किसी ने अफवाह फैला दी कि मुसलमानों ने गांव को आग लगा दी है। एकदम पूरा गांव खाली हो गया। बाद में पता चला कि यह शरारती तत्वों द्वारा फैलाई गई अफवाह थी।

बेटा, हमने बहुत ही दिल दहला देने वाली मारकाट की लड़ाई देखी है। मुझे पूरा याद है कि मारकाट (साम्प्रदायिक दंगों) की साल (1947-48) में हिंदू-मुसलिम के कत्लेआम में अफवाहों ने बहुत काम किया था। ये अफवाहें पीढ़ियों से साथ रहे मुसलिम परिवारों के प्रति नफरत के बीज पैदा कर रही थी।

हमारे गांव में भी लगभग 40 मुसलिम तेली व लुहारों के घर थे। उनमें कई तो ऊंचे दर्जे के कारीगर थे। उनकी मकान बनाने की शैली और चित्रकारी पूरे इलाके में मशहूर थी। लुहार का काम करने वाले परिवारों को खेती के औजार बनाने, उनको पैना करने में महारत हासिल थी। असरफ के दो भाई अफजल और जमीर तो पत्थर पर बेजोड़ चित्रकारी उकेरते थे। हमारे घर के बाहर के पक्के हिस्से में असरफ के इन दोनों भाइयों ने ही चूने की लिपाई पर 'कबीर' और 'मीरा' की मुंह बोलती तस्वीरें बनाई थी। हमारे पड़ोस में अशरफ का घर था। बहुत ही अच्छा स्वभाव था उसका, हमारा खुशी-गमी में एक-दूसरे के घर खूब आना-जाना था। भरतो उन दिनों की यादों में खोकर बोलती जा रही थी।

मैं पढ़ी-लिखी न होने के कारण तेरे ताऊ से सुनती थी कि 'देश का बंटवारा होने का फैसला हुआ है, रेडियो पर आकाशवाणी हुई है।' तो क्या अब असरफ और उसका परिवार अपना घर बार छोड़कर चले जाएंगे। भाड़ में जाए रेडियो ! पीढ़ियों से चला आ रहा हमारा साथ क्या रेडियो के कहने से ही टूट जाएगा? शायरा की बेटी रूखसाना का तो अभी कुछ दिन पहले पास के ही गांव में निकाह हुआ है। असरफ के बेटे असफाक और रजिया का स्कूल भी तो गांव में ही है। पिछले महीने ही असरफ और उसके परिवार ने जी-तोड़ मेहनत करके नया घर बनाया है। यह नामुमकिन है। कासिम लुहार के बिना जमींदारों की कुश कौन सुधारेगा। शायरा की बहन भी तो यहां से चार मील दूर के गांव में रहती है और उनके सभी रिश्तेदार भी तो आसपास ही हैं। मैं नहीं मान सकती। भरतो ने बंटवारे की खबर का पुरजोर खंडन करते हुए कहा।

'तुम भले ही मत मानो, मीना की मां अभी-अभी असरफ ने मुझे एक ओर बुलाकर धीरे से कहा है कि आज रात को वे सब परिवार के साथ गांव छोड़कर रोहतक पहुंच जाएंगे जहां पर अदला-बदली होने वाले परिवारों के लिए पुलिस ने टैंट लगा रखे हैं। इन टैंटों से ही आस-पास के इलाके के परिवार इकट्ठे होकर रेलगाड़ी से लाहौर जाएंगे। सरजू ने दुखी होते हुए कहा।

यहां से भी रांगडों (मुस्लिम परिवारों) का सफाया करना होगा, ये सब मिले हुए हैं, ये पक्के कट्टर हैं। धीरे-धीरे इस प्रकार की चर्चाएं अब गांव में जोर पकड़ने लगी। इस मुहिम की गांव के कुछ चोर उचक्के किस्म के व्यक्ति अगुवाई कर रहे थे। बेटा, हमारे घर के बगल में रहने वाले जिले सिंह व प्यारा डकैती के अपराध में कुछ दिन पहले ही अंग्रेजों की जेल से छूट कर आये थे। ये दोनों रात के 10 बजे हमारे घर के साथ लगती दीवार के पास बैठकर अशरफ के परिवार पर हमला कर उसकी बेगम के गहने लूटने की योजना बना रहे थे।

बेटा, जिले सिंह व प्यारा की अशरफ का घर लूटने की योजना ने मेरी बेचैनी बढ़ा दी। मुझसे रहा नहीं गया और

तेरे ताऊ को यह पूरी बात सुनाई। यह सुनते ही तेरा ताऊ असरफ के घर की ओर चल पड़ा। रात के 11 बजने वाले थे। मैं भी तेरे ताऊ के पीछे-पीछे असरफ के घर की तरफ चल दी। हम दोनों असरफ के घर पहुंचे तो देखा कि दरवाजा अन्दर से बंद था। मैंने धीरे से दरवाजा खटखटाया लेकिन अंदर से कोई जवाब नहीं मिला। घर के भीतर से आ रही धीमी-धीमी आवाज भी एकदम बंद हो गई। असरफ भाई, हम हैं, मीना की मां और तेरा भाई। दरवाजा खोलो जरूरी काम आए हैं। असरफ ने दोनों की आवाज पहचानते हुए धीरे से दरवाजे का एक पल्ला खोलकर हम दोनों को अंदर करके तुरन्त दरवाजा बंद कर लिया। 'खुदा की खैर है सरजू भाई तुम थे, हमारी तो सांसें बंद हो गई थी। ऐसे में अपने भी दंगाई लगने लग जाते हैं।' अशरफ ने डरे-सहमे भावों से कहा।

'आओ भरतो बहन' हर रोज की तरह आत्मीयता से आने वाली शायरा की आवाज न सुनकर मुझे अटपटा लग रहा था। शायरा, रूखसाना, रजिया, असफाक कहां हैं? असरफभाई। यह पूछते हुए मैं अंदर के कमरे की तरफबढ़ी। जो कुछ अंदर चल रहा था, उसे देखकर मैं अवाक रह गई।

शायरा अपनी बेटियों के साथ घर का जरूरी सामान गठरियों में बांधने लगी थी। शायरा की छोटी बेटी रजिया समझ नहीं पा रही थी कि आखिर हम यह सामान क्यों बांध रहे हैं। वह बार-बार पूछ रही थी कि अम्मा हम अपना घर छोड़कर कहां जा रहे हैं।' शायरा उसे कोई जवाब नहीं देकर मुंह पर अंगुली रख कर चुप रहने का इशारा कर रही थी। अपने स्कूल बैग की ओर देखते हुए रजिया ने फिर से दुखी होकर पूछा, 'अम्मा हम कितने दिन के लिए जा रहे हैं। क्या हम फिर कभी अपने घर वापिस नहीं आयेंगे।' कुछ पता नहीं बेटी। शायरा ने भारी मन से कहा।

अम्मा मेरी कविताओं वाली किताब जरूर बांध लो। रजिया को कविताओं वाली किताब सबसे ज्यादा पसंद थी। अपनी इस किताब को रजिया अपनी मां के टूमों वाले डिब्बे में रखने की जिद्द कर रही थी। 'जिद्द मत करो रजिया, बहुत जरूरी सामान ही ले जा पायेंगे।' आंसू टपकाते हुए शायरा मुश्किल से बोल पा रही थी।

असरफ के घर का पूरा दृश्य देखकर मुझे तेरे ताऊ की 'रेडियो वाली बात सच लगने लगी', बेटा। जैसे ही शायरा की मुझ पर नजर पड़ी वह मेरे गले से लिपट कर फफक पड़ी। अपने को कुछ देर में संभालते हुए बोली, 'भरतो बहन ! हम तो आज रात को चले जाएंगे। पता नहीं, फिर कभी मिलना हो न हो। मेरे लोहे वाले भारी संदूक को हमारे जाते ही अपने घर उठा ले जाना। बहुत मजबूत है, मुझे निकाह में मिला था। अच्छा सुन इस संदूक में कुछ



कपड़े हैं इनमें आपकी बेटी मीना के लिए बनाई गई चूड़ीदार पायजामी और सितारों वाला कुर्ता भी है। मीना के जन्मदिन के लिए बनाया था। अपने असफाक और मीना का साथ-साथ खेलना, झगड़ना और शरारतें करना कैसे भूल पाऊंगी, भरतो बहन।

आंगन में रखी फूलों वाली चारों चारपाईयां रात को ही उठा ले जाना भरतो, पता नहीं सुबह किसके हाथ लगे। ये पच्चीस रुपये लो भरतो, देबी दुकानदार का उधार चुका देना। वह आड़े वक्त में हमारे बहुत काम आता था। मेरे सुख-दुख में काम आने वाली रामरती को कहना कि वह मुझे माफ कर दे, मैं लाख चाहने के बाद भी गांव छोड़ने से पहले उससे नहीं मिल पाई। भरतो! मेरा एक काम और कर देना, ये एक जोड़ी पाजेब रामरती की बेटी को दे देना। दस दिन बाद उसकी शादी है। हमारे घर का ध्यान रखना भरतो बहन, चाबी अपने पास रख लेना। इसमें 'हमारी पीढ़ियों की यादें बसी हैं।' हो सकता है कि सरकार मान जाए कि कोई कहीं नहीं जाएगा और हम वापिस अपने घर आ जाएं।

'सरजू भाई, अब हमारा यहां रहना खतरे से खाली नहीं है। कत्ले आम और बलात्कार की घटनाएं बढ़ती जा रही हैं। जल्दी-जल्दी अपना जरूरी सामान बांधो। खुदा करे, हमारी आज की रात खैरियत से निकल जाए।' अशरफ ने अपने परिवार की जान बचाने के हर संभव विकल्पों पर गौर करते हुए डरे-सहमे भावों से कहा।

'रात के दो बजते ही असरफ ने बैलगाड़ी अपने घर के सामने खड़ी कर दी। 'जल्दी से जरूरी सामान बैलगाड़ी में रखो।' असरफ, उसकी पत्नी शायरा, बेटी रुखसाना ने जल्दी-जल्दी दबे पांव घर के बहुत जरूरी सामान की गठरियों को बैलगाड़ी में रखा।'जल्दी से रजिया और असफाक को भी गाड़ी में बैठा दो। बाकी परिवारों की भी बैलगाड़ियां चल पड़ी हैं।' असरफ ने हड़बड़ाहट में कहा।

असरफ का पूरा परिवार दबे पांव सहमा हुआ बैलगाड़ी में बैठ गया। रजिया ने एक बार फिर अपने स्कूल बैग से अपनी कविताओं वाली किताब लेकर आने की जिद्द की। असरफ ने रजिया की बात को अनसुना करते हुए बैलगाड़ी हांक दी। असरफ का परिवार आंखों में आंसू लिए दूर तक सरजू, भरतो और मीना की तरफ टकटकी लगाकर देखता रहा और बैलगाड़ी धीरे-धीरे नजरों से ओझल हो गई।

मैं और तेरा ताऊ बाकी बची हुई रात सो नहीं पाए। हमें रह-रह कर असरफ के परिवार के साथ किसी अनहोनी की चिंता सताए जा रही थी। दिन निकलने तक वे असरफ के परिवार की सही सलामत

टैंट तक पहुंचने की दुआ करते रहे। मेरी बेटी मीना भी रात भर जागती रही। मीना के दिमाग में अपनी सबसे नजदीकी सहेली रजिया के साथ छुपम-छुपाई खेलना, पाठशाला जाना और इसी साल पीर बाबा के मेले में दोनों के बिछुड़ जाने की यादें बार-बार घूम रही थी।

'मीना की मां दिन निकल आया है। गांव छोड़ने से पहले असरफ कह रहा था कि हम रोहतक पहुंचकर, फौज के पहरे में बने टैंटों में दो-तीन दिन तक रहेंगे और वहां से कई परिवार इकट्ठे होकर रेलगाड़ी से लाहौर जाएंगे।' तेरे ताऊ ने बेचैन होते हुए कहा। मैं रोहतक जाकर ब्यौरा लेकर आता हूं कि असरफका परिवार सही सलामत पहुंचा या नहीं। वे जाते समय अपने साथ थोड़ा सा आटा ही ले गये हैं। असफाक (छोटू) को सुबह पिलाने के लिए दूध भी छींके में ही लटक रहा है। सरजू बिना देर किए रोहतक की तरफ चल पड़ा। आठ कोस का पैदल फासला तय करने में लगे दो घंटे का सरजू को पता नहीं चला। उसके पैरों की गति में असरफ के परिवार के साथ पीढ़ियों के भाईचारे की गहराई देखी जा सकती थी। सरजू रोहतक में पहुंच कर पूछताछ करते-करते लाहौर जाने वाले परिवारों के टैंट के सामने पहुंच गया।

जैसे ही सरजू ने टैंट में घुसने की कोशिश की, बाहर ड्यूटी पर खड़े पुलिस वाले ने उसे रोक लिया। कहां जा रहे हो? कौन हो? क्या काम है? 'अन्दर नहीं जा सकते' जैसे सवालों की बौछार कर दी। सहमते हुए सरजू वहीं रुक गया। साहब ! हमारे जानकार असरफ के परिवार की सलामती का पता करने आया हूं। वे रात को ही अपना गांव छोड़कर आए हैं।

आया दोस्ती निभाने वाला ! फूट जा यहां से, चल। सरजू हवलदार के सामने गिड़गिड़ा ही रहा था कि असरफकी बड़ी बेटी रूखसाना पानी लाने का डिब्बा हाथ में लिए टैंट से बाहर निकली। उसकी नजर सरजू चाचा पर पड़ी। पानी का डिब्बा एक ओर फैंकते हुए हवलदार से बेपरवाह रुखसाना भाग कर सरजू चाचा से लिपट गई। रूखसाना के आंसू थम नहीं रहे थे। चाचा रात को हम यहां पर बहुत परेशान हुए हैं। मैं और रजिया तो सुबह से ही अपने गांव जाने के लिए रो रहे हैं। अब्बा, हमें कोई जवाब नहीं दे रहे हैं। अम्मा भी हमारे साथ रोने लग जाती है। रूखसाना को आवाज देते हुए असरफ टैंट से निकला तो सरजू को देखकर अपने आप को रोक नहीं पाया। सरजू को देखकर असरफ फफक पड़ा। रजिया भी सरजू चाचा को देखकर खुशी से उछल पड़ी। 'चाचा आ गए मैं घर जाऊंगी। आज मैं पाठशाला भी नहीं जा पाई, चाचा। मीना के साथ खेलूंगी। सरजू चाचा मेरा यहाँ बिल्कुल रहने को मन नहीं करता। रजिया बोलती जा रही थी। टैंट से बाहर निकलने पर शायरा की भी नजर सरजू भाई पर पड़ी। असफाक को गोदी में उठाकर सरजू की ओर दौड़ पड़ी। असरफ की पत्नी शायरा के मुंह से शब्द भी नहीं निकल पा रहे थे। अपने आंसू पोछते हुए बोली। सरजू भाई। 'ये कैसी सियासत है? हंसते-खेलते परिवारों को उजाड़कर कौन सा धर्म बड़ा बन जाएगा।'

'जल्दी-जल्दी टैंट में चलो', हवलदार ने असरफ व उसके परिवार को डांटते हुए कहा। रूखसाना और रजिया वापिस टैंट में न जाकर सरजू चाचा के साथ गांव जाने की जिद्द कर रहे थे। रजिया तो मीना के साथ खेलने के लिए सरजू का कुर्ता कस कर पकड़े हुई थी, 'चाचा! घर ले चलो। घर जाऊंगी।' हवलदार के दोबारा डांटने पर असरफ ने रुखसाना को टैंट की ओर धकेलने लगा। शायरा अपनी दूसरी गोद में रजिया को उठा कर रुके कदमों से टैंट की ओर बढ़ने लगी। रजिया सरजू चाचा के साथ घर जाने के लिए शायरा की गोद से उतरने के लिए तेजी से हाथ-पांव चलाते हुए छटपटा रही थी।

'सुनो असरफ भाई, मीना की मां ने ये थोड़ा सा आटा और असफाक के लिए दूध भेजा है। तुम यहां कितने दिन और रूकोगे। तुम्हें किसी चीज की जरूरत हो तो बताओ, मैं गांव से ले आऊंगा।' सरजू ने रूंधे गले से कहा। हो सके तो रोटी बनाने के लिए कुछ लकड़ी पहुंचा देना सरजू भाई। पता नहीं दो-तीन दिन यहां रूकना पड़े। ऊपर से हुक्म आने पर ही हम यहां से लाहौर के लिए चलेंगे। सरजू उल्टे पांव यह कह कर गांव की ओर चल पड़ा कि कल सुबह लकड़ी लेकर आऊंगा। पूरे रास्ते सरजू असरफ के परिवार के लिए लकड़ी काटकर सुबह पहुंचाने की उधेड़बुन में लगा रहा और शाम ढले गांव पहुंच गया। घर पहुंचते ही सरजू को पूरे परिवार ने घेर लिया। शायरा ने क्या कहा ? रुखसाना क्या कर रही थी? रजिया घर आने के लिए जरूर रोई होगी ! सब अपने-अपने सवालों का जवाब पाने के लिए सरजू की ओर बेताबी से देख रहे थे।

'रजिया तो घर आने के लिए बहुत चीख पुकार कर रही थी। उसका टैंट में बिल्कुल मन नहीं लगा हुआ। हो सकता है असरफ का परिवार दो-तीन दिन तक रोहतक में ही रहे। मुझे कुल्हाड़ा दो सुबह उठते ही असरफ के परिवार के लिए लकड़ी ले जानी हैं। मीना की मां तुम असरफ के घर जाओ। शायरा कह रही थी कि लकड़ी की अलमारी के नीचे वाले खाने में उसका कंगन छूट गया और मीना बेटी तुम रजिया की कविताओं वाली किताब ढूंढ कर लाओ। सुबह लकड़ियों के साथ लेता जाऊंगा'। सरजू जल्दी जल्दी बोलता जा रहा था।

मैं अपनी बेटी मीना के साथ असरफ के घर पहुंची तो देखकर हैरान रह गई कि जिले सिंह और प्यारा असरफ के घर का सामान चोरी करके दीवार फांद रहे थे। शायरा का कंगन गायब था। मीना ने रजिया की कविताओं वाली किताब ढूंढने में कोई देर नहीं लगाई।

इस बीच सरजू ने लकड़ी काटकर गट्ठा तैयार कर लिया और यह कहते हुए चारपाई पर लेट गया, 'मीना की मां सुबह जल्दी उठा देना। सुबह खाना बनाने के समय तक असरफ के परिवार के लिए लकड़ी पहुंचानी होगी।' आज की रात भी सरजू और भरतो की आंखें बार-बार खुलती रही। 'असरफ भाई ये लो लकड़ी और रजिया की कविताओं वाली किताब और बोतल में असफाक के लिए मीना की मां ने दूध भेजा है।' यह सब सरजू के दिमाग में चल ही रहा था कि अचानक सरजू की आंखे खुल गई।

सूरज की लालिमा उभर आई थी। सरजू जल्दी से उठा और रोहतक के लिए तैयार हो गया। 'रजिया की किताब लकड़ी के गट्ठे में बांध देती हूं और सुनो, कुर्ते की जेब में असफाक की दूध की बोतल डाल दी है।' भरतो ने कहा। ठीक है जल्दी करो। सरजू पूरे चाव से असरफ तक जल्दी पहुंचने के लिए लकड़ी का गट्ठा उठाकर रोहतक के लिए चल पड़ा। उसे पूरे रास्ते असरफ के परिवार तक पहुंचने के अलावा कुछ नहीं सूझ रहा था। सरजू रोहतक में असरफ के परिवार के टैंट पर पहुंचा। टैंट सुनसान देखकर सरजू ने पूछा, 'हवलदार साहब, असरफ का परिवार कहां है ?' 'वो रात को लाहौर चले गए'', हवलदार ने कहा। लकड़ी के गट्ठे को जमीन पर पटक कर सरजू सिर पर हाथ रखकर बैठ गया। रजिया की कविताओं वाली किताब लकड़ियों के बीच हवा से फड़फड़ा रही थी।

सम्पर्क- 94162-67986

कहानी

रेलगाड़ी

सुरेश बरनवाल

ज्यों ही रेलगाड़ी की सीटी की आवाज सुनाई दी, बूढ़ा जसवन्त मंजी से तेजी से उठा और लंगड़ाता सा घर के भीतर चला गया। भीतर जाते समय उसने एक बार कातर निगाहों से अपने पोते सुलतान की तरफ देखा। सुलतान ने अपनी नजर नीची कर ली और सामने खड़े ग्राहक को सामान देने का बहाना करने लगा। जसवन्त घर के दरवाजे को खोलता अपने कमरे में चला गया। तभी रेलगाड़ी ने दूसरी सीटी दी। जसवन्त का चेहरा पसीने से नहा गया। उसके मुंह से या रब...निकला और वह बिस्तर के पास रखी लोहे की जंग लगी कुर्सी पर बैठ गया। उसकी बहू ने देखा तो तुरन्त पानी का गिलास ले आई। जसवन्त ने गिलास को मुंह से लगाकर एक बार में ही खाली कर दिया। उसके दिल की धड़कनें हमेशा की तरह तेज हो आई थीं। एक मिनट बाद गाड़ी की छुक-छुक की आवाज उभरी और फिर एक सीटी बजी। जसवन्त को लगा कि रेलगाड़ी अभी आएगी और उसके घर का दरवाजा तोड़ती भीतर आ रूकेगी। फिर उसमें से लहू आलूदा ढेर सारी लाशें अनाज की बोरियों की तरह गिरने लगेंगी। उनमें से दो लाश उसके...। उसने कसकर आंखें बन्द कर लीं। एक दृश्य आंखों के आगे उभरा...फिर विलुप्त हो गया। यह रोज होता है। उसका यह डर उसे रोज मारता है। उसकी बहू को हैरानी है कि इतने वर्षों से उसका बूढ़ा ससुर रेलगाड़ी की आवाज से डर रहा है और उसके डर की मात्रा तनिक भी कम नहीं हुई। अपनी शादी के बाद जब उसने पहली बार अपने ससुर को यूं डरते देखा था तो उसे बहुत हंसी आई थी, जिसे वह अपने घूंघट में छिपा गई थी। उसने अपने पति से इस बात की चर्चा की तो सुलतान गंभीर हो गया था। उसने अपनी नई नवेली दुल्हन को सिर्फ यही बताया था कि दादा के साथ एक बड़ा हादसा हुआ है। विभाजन के समय उसने रेलगाड़ी में लाशें ही लाशें देखी हैं, इसलिए वह रेलगाड़ी से डरता है। ज्यादा कुरेद कर पूछने पर तिक्त स्वर में सुलतान ने उसे कहा था कि इससे अधिक उसे भी पता नहीं है। अब उसे अपने ससुर से सहानुभूति होने लगी है। उसने आज भी भय से जर्द हो चुके उसके चेहरे की तरफ देखा तो हमेशा की तरह दया का भाव उसके मन में भर आया।

रेलगाड़ी की आवाज धीमे होने लग गई थी। उसी के साथ जसवन्त का चेहरा भी सामान्य होता चला गया। एक पल कुर्सी पर ही बैठकर उसने अपने सिर पर रखे साफे को ठीक किया, अपने झुर्रीदार चेहरे पर हाथ फिराया और घर से बाहर आ गया।

दुकान पर रणजीत बैठा हुआ था और सुलतान से बातें कर रहा था। उसे देख रणजीत बोल उठा-'क्या दादा, फिर दौरा पड़ा क्या?'

आमतौर पर शान्त रहने वाला जसवन्त मंजी पर बैठता भड़क उठा-'रणजीते, यह दौरा नईं ऐ। यह जख्म है मेरा। दौरा और जख्म में बहुत फर्क होता है रणजीते।'

रणजीत उसके पास आ गया और मंजी के पैताने बैठ गया-'दादा, यह जख्म अब खतम कर ले। बहुत दिन बीत लिए विभाजन को अब। अब सब शान्त है दादा। हिन्दू-मुसलमान सभी सुरक्षित हैं अपने देश में। अब वो दिन खतम हो लिए।'

जसवन्त मंजी पर बैठ गया। कुछ बोला नहीं। वह भी जानता था कि बहुत दिन बीत गए हैं भारत-पाकिस्तान के विभाजन को। अब सब कुछ शान्त है। पर वह क्या करे। जो कुछ उसने देखा है वह भूलाए नहीं भूलता। वह आगजनी, वह अमानवीयता। उसकी यादों की दीवारों पर वह तस्वीर कुछ इस कदर चस्पां है कि दीवार भले गिर जाए, वह तस्वीर नहीं हटती।

उसने मंजी के पास रखे हुक्के को मुंह से लगाया और अपने मन के भीतर उठते गुबार को बाहर के धुंए में मिलाने लगा। वह कुछ और भी कहना चाहता था परन्तु चुप रह गया। धुंए के साथ ही उसके भीतर से खांसी उभरी और खौं...खौं करता वह पानी का लोटा मंजी के नीचे तलाश करने लगा। सुलतान ने यह देखा तो दुकान से पानी का लोटा लेकर उसके पास आकर उसे थमा दिया। जसवन्त ने लोटे में से एक घूंट पीकर सुलतान की तरफ देखा और बोला-'सुलतान, ले चल बेटा। दिखणादे मोहल्ले में ले ले मकान। यहां से चला चल। बेच दे सब कुछ। यह रेलगाड़ी खा जाएगी मुझे।'

सुलतान अपने पजामे को घुटनों तक मोड़ता मंजी केपास उकड़ूं बैठ गया-'दादा, कुछ नहीं रखा वहां। वहां मकान लेने के लिए बहुत रूपैये खर्च करने होंगे। ये दुकान मकान बेचकर भी इतने ना बनेंगे कि वहां कुछ बना सकें।'

'तुझे उसने...क्या नाम है उसका....गुलजारे ने बताया तो था कि डेढ़ मरले का मकान बिकाऊ है। इतने में ही मिल जाएगा, जितने इसके बंटेंगे।' जसवन्त बोला।

'दादा...फिर वही बात। मकान तो मिल जाएगा, पर दुकान का क्या होगा? वहां दुकान तो नहीं बननी।'-सुलतान बोला।

'अरे दुकान भी धीरे-धीरे बन जाएगी...।'-जसवन्त बोला।

इस पर सुलतान भड़क उठा-'दुकान धीरे-धीरे बन जाएगी। तब तक मैं क्या करूंगा?'

'पहले क्या करता था?'

'दादा...अब वो न होगा। बहुत धक्के खाए। बहुत बोझा उठाया। अब वो उमर नहीं है। बड़ी मुश्किल से दुकान बनी है इधर। इसे ना छोड़ता मैं यूं ही।'

'तू दुकान नहीं छोड़ता, रेलगाड़ी मुझे ना छोड़ती। यूं तो सुलताना मैंने मर ही जाना है।'-जसवन्त लाचारी से सिर हिलाता बोला।

'देख दादा, तुझे कितनी बार कहा है कि शहर में चल। ईलाज करवा दूंगा। बड़े नए-नए नुस्खे आ रहे हैं आजकल।'-सुलतान समझाने वाले अन्दाज में बोला।

जसवन्त सिर हिलाता बोला-'ये नुस्खे काम ना आने सुलताना। तुझे पता है, मेरा ईलाज मेरी मौत है। या मेरे कान में जहर डाल दे।'

सुलतान उठता हुआ व्यंग्य से बोला-'तो यूं बोल ना दादा कि तैंने सलीम के घर के पास जाना है ताकि तू वहां जा सके बार-बार।'

जसवन्त का मन दुखी हो गया। 'सलीम' उसके मुंह से आह सी निकली। यह नाम कितना सुकून देता है उसे। वह कुछ कहना चाहता था पर चुप रह गया। जानता था कि अगर सलीम की और भी बातें निकली तो सुलतान बहुत गंदा बकने लगेगा।

इस समय धूप निकली हुई थी और दुकान पर ग्राहक भी थे। सुलतान चला गया और जसवन्त लेट गया।

'सलीम'। कितने दिन हो गए उससे मिले। अब और भी बूढ़ा लगने लगा होगा वह। चार महीने से अधिक हो गए उसे देखे

हुए। उसे देखा भी तो तब जब कि वह डाक्टर के पास अपने घुटने के लिए दवा लेने गया था। वहीं अप्रत्याशित रूप से उसे सलीम बैठा हुआ दिखा। सलीम भी खुद को दिखाने के लिए आया हुआ था। काश कि बहू साथ ना होती'-जसवन्त ने सोचा। कितने आराम से वह सलीम से मिलता। उसे गले से लगाता। कुछ अपनी कहता, कुछ उसकी सुनता। वह उसे टटोलकर देखता कि उसका सलीम कहां से और बिखर गया, कहां से जुड़ गया।

सलीम उसकी जिन्दगी के इतिहास का जिन्दा अध्याय था। सियालकोट से दोनों साथ ही आए थे। एक-दूसरे का सहारा बने। एक-दूजे का हाथ यूं पकड़े कि एक क्षण भी दोनों अलग न होंगे। छोटे से सुलतान को साथ लिए। परन्तु अब वही सुलतान दोनों के बीच का रोड़ा है। जब तक सुलतान नहीं चाहेगा, वह नहीं मिल सकेंगे। सुलतान क्रोध को देखकर सलीम भी उससे कन्नी काटने लगा था।अफ़सोस तो यह भी था कि उसके साथ ही सलीम के भी घुटनों में दर्द रहता था। न तो सलीम से उतना चला जाता था और न उससे। इसलिए भी आपस में वह मिल भी नहीं पाते थे। दोनों दोस्त एक ही दर्द के मारे थे। एक ही दुख से पीड़ित थे।

जसवन्त सारे दिन मंजी पर ही रहता था। बहुत हल्की सर्दी में भी उसे धूप की आवश्यकता सारे दिन बनी रहती थी। उसकी बहू दिन में दो बार कड़वा तेल गरम करके कटोरी में रख जाया करती थी और वह कभी तेल घुटनों के मलता तो कभी मंजी पर चादर ओढ़कर लेट जाता। आने-जाने वालों से उसकी बात होती रहती या फिर वह ख्यालों में खोया रहता था। ख्याल...वही... सियालकोट...वहां की गलियां...वहां की सडकें...इक्के...खेत। फिर अचानक ही उसके ख्यालों में शोर उठने लगता। बन्द आंखों के आग लपलपाती...खून...हत्याएं...बलात्कार। वह घबराकर जाग जाता।

आज भी सुलतान ने उसकी दुखती रग को छेड़ दिया था। वह सलीम से मिलना चाहता था। कैसे मिले? वह उन दिनों को कोस रहा था जब सुलतान के मन में सलीम के प्रति नफ़रत का लावा फैलता जा रहा था। उसे वह दिन याद आ गए जब सियालकोट से वह तीनों आए थे।

''यह हिन्दू मुसलमानों के बीच नफ़रत का दौर था। हर आंख में शंका थी, गुस्सा था, अफ़सोस था। जसवन्त को एक सेठ ने उसकी कहानी सुनकर और एक छोटे से बच्चे को गोद में देखकर उसे अपने खेत में रख लिया था। जसवन्त मेहनती था, जल्दी ही काम सीख गया और सेठ का विश्वासपात्र बन गया। सलीम को एक मुसलमान दुकानदार के यहां नौकरी मिल गई। सुलतान को पढ़ाने की जसवन्त ने कोशिश की थी परन्तु वह पांच जमात से आगे जा ही नहीं सका। वह भी मजूरी करता कभी खेतों में तो कभी गोदामों में। सुलतान अपने काम से कभी खुश नहीं रहा। उसके कंधे शाम के समय दर्द करने लगते थे। जसवन्त उसे कहता था कि इतनी मेहनत मत कर, गुजारा तो चल ही रहा है। सलीम भी अपने काम से फारिग होकर कभी-कभी रात को उनके पास चुपके से आ जाता था और सुलतान को कहता था कि इतनी मेहनत न करे कि शरीर खराब हो जाए। परन्तु सुलतान पर तो बचपन से भूत सवार था पैसों का। वह एक बार किसी काम से जसवन्त के साथ शहर क्या चला गया था, वहां की रौनक देख हतप्रभ रह गया था। उसे सपने में पैसे दिखते, शहर दिखता। इस साधारण से कस्बे में उनका गुजारे लायक काम तो चलता था, परन्तु ऐसी उम्मीद नहीं थी कि यहां अमीर आदमी बना जा सकेगा।

एक दिन उसने जसवन्त को कहा कि वह शहर जाना चाहता है। जसवन्त घबरा गया। पन्द्रह साल का लड़का शहर कैसे जाएगा? फिर उसे छोड़कर! समय की मार से उसके कंधे समय से पहले झुक गए थे। ऐसे में उसका यह भी सहारा जाता रहता। उसने उस रात सलीम को बुला भेजा। सलीम आया, सुनकर उसके भी चेहरे पर चिन्ता की लकीरें आ गईं। उसने भी दुनिया की ऊंच-नीच को समझाया और सुलतान को मनाने की कोशिश की कि वह शहर न जाए। जब सलीम सुलतान को समझा रहा था, उस समय जसवन्त एक कोने में बैठकर चुपचाप उन दोनों को देखता रहा था। इसके बाद जब भी वह जिद्द करता, जसवन्त सलीम को बुला भेजता और दोनों के वाद-विवाद के बीच एक कोने में बैठा दोनों की तरफ देखता रहता। इससे सुलतान बहुत चिढ़ गया था। उसे यह लगने लगा था कि उसका दादा उसके शहर जाने के इतना खिलाफ नहीं है, जितना सलीम है। एक बार उसने चिढ़कर सलीम को कह दिया-'दादा, यह हमारे घर का मामला है, आप इसमें दखल न दें तो ही बेहतर होगा।' ऐसा सुनते ही सलीम का चेहरा उतर गया। वह हैरानी से आंखें मिचमिचाता सुलतान को देखता रह गया, परन्तु जसवन्त पर मानो भूत सवार हो गया था। उसने पहली बार सुलतान पर हाथ उठाया-'तेरी हिम्मत कैसे हो गई सलीम मियां से ऐसे बोलने की? तू इतना बड़ा हो गया कि अपना-पराया करने लगे?' सुलतान थप्पड़ खाकर कुछ नहीं बोला पर अगले ही दिन जब जसवन्त सो कर उठा था तो सुलतान घर में नहीं था। वह भाग गया था। एक दिन-दो दिन, जसवन्त ने उसे ढूंढा। सलीम ने भी तलाश किया परन्तु वह नहीं मिला। जसवन्त अपराध बोध से ग्रसित होकर बीमार हो गया। इतना कि सलीम को फिर शहर जाना पड़ा। पांच दिन बिना आराम किए सलीम ने आखिर उसे ढूंढ ही निकाला। थके, हारे हुए सलीम ने सुलतान के मिलने पर उसे मात्र इतना कहा-'तेरा दादा मर जाएगा, वापिस आ जा। बहुत बीमार है वह।'

सुलतान क्रोध में घर तो छोड़ आया था परन्तु अपराधबोध से ग्रस्त था। सलीम की बात सुनकर उसके पीछे-पीछे घर तो आ गया परन्तु उसकी नाराजगी गई नहीं थी। जसवन्त उसे देखते ही बच्चे की तरह फ़फक पड़ा। आज तक वह सुलतान को यही बताता आया था कि उसके माता-पिता की मौत बीमारी से हुई थी, परन्तु उस दिन पता नहीं किस भावावेश में बहकर वह कह बैठा कि उसने अपने बहू-बेटे को विभाजन के दंगों में मरते देखा है। अब वह किसी अपने से अलगाव नहीं सह सकता। सुलतान के लिए यह जानकारी नई थी। यह सुनते ही वह हक्का-बक्का रह गया था। उसे अपने माता पिता की सूरत तक याद नहीं थी। उसके माता पिता की उसके पास कोई फोटो भी नहीं थी। यह सुनते ही कि विभाजन में उसके मां बाप को कत्ल कर दिया गया था वह चीख पड़ा। विभाजन की जिन्दा कहानियां उसने भी सुनी थीं। किस प्रकार के अमानवीय अत्याचार किए गए थे, खासकर स्त्रियों पर। इस सूचना ने उसके मन में मुसलमानों के प्रति नफरत प्रगाढ़ कर दी। वह चीख पड़ा-'किसने मारा था मेरे मां पिताजी को। मुसलमानों ने? इसे पता होगा,' वह सलीम की तरफ इशारा करने लगा। भावावेश में कहने के बाद जसवन्त भी पश्चाताप कर रहा था कि यह क्या निकल गया उसके मुंह से? परन्तु अब क्या हो सकता था। सुलतान ने सलीम के लिए धमकी दे दी कि यदि यह घर पर आया तो वह वापिस भाग जाएगा। वह कहता था-'माना कि हम मुसलमान नहीं थे, इसलिए हमें पाकिस्तान से भागना पड़ा, परन्तु यह तो मुलसमान था, यह क्यूं आया? वहीं मरता।' जसवन्त इस पर खून के घूंट पीकर रह जाता था। सलीम उस दिन का निकला फिर कभी घर नहीं आया। उस दिन सलीम की आंखों से आंसू यूं बह रहे थे मानो कहीं बांध टूट गया हो। परन्तु जुबान से एक शब्द भी नहीं निकला। वह दर्द की अधिकता से मुस्करा रहा था, रो रहा था, बिल्कुल चुप था। जसवन्त सियालकोट के विभाजन को भी सह नहीं पाया था, यह दूसरा विभाजन था जो उसे बिल्कुल तोड़ गया था। परन्तु सुलतान के मन में सलीम के प्रति ऐसी नफरत फैल चुकी थी, कि उसका हल नहीं था। समय गुजरते हुए उनका घाव तो नहीं

भरा, परन्तु उस पर दर्द की ऐसी पपड़ी जम गई थी कि वह किसी को दिखती नहीं थी परन्तु भीतर ही भीतर उसमें टीस उठती थी। जसवन्त आज भी चाहता था कि सुलतान उसे सलीम से मिलने दे। रात अंधेरे वह कभी-कभी सलीम से मिलने जाता था, परन्तु एक दिन सुलतान को न मालूम कैसे पता चल गया और फिर घर में वही महाभारत शुरू हो गई थी।''

समय के साथ सुलतान ने कुछ पैसे एकत्र किए और यह दुकान कर ली। एक लड़की का रिश्ता भी आ गया और आज सुलतान है, वह है, उसकी बहू है परन्तु सलीम नहीं है।

मंजी पर लेटे-लेटे जसवन्त ने करवट बदली। सुलतान दुकान पर अकेला बैठा था। जसवन्त सुलतान के चेहरे की तरफ देखता रहा। उसे सलीम भी याद आता रहा।



'दादा, कल तेरी दवाई लानी है। कल जाकर डाक्साब को दिखा देना।'- अचानक सुलतान बोला।

जसवन्त ने लेटे-लेटे हुंकार भरी। अचानक उसके मन में एक बार आया कि कल समय निकालकर वह सलीम के पास जाएगा। सुलतान को कह देगा कि उसके घुटने में दर्द कम है, इसलिए वह खुद ही डाक्टर के पास चला जाएगा। साथ में बहू को भेजने या उसे साथ जाने की जरूरत नहीं है। ऐसा सोचकर उसके होंठों पर हल्की सी संतोषप्रद मुस्कान आ गई। वह कई देर अपना कार्यक्रम बनाता रहा, बहाने सोचता रहा। शाम को एक बार फिर रेलगाड़ी ने सीटी दी। पसीना पसीना होता वह कमरे में घुस गया और चादर तानकर लेटा रहा। वहीं खाना खाया और यह सोचते हुए कि यदि कल सब ठीक रहा तो वह सलीम से कल अवश्य मिलकर आएगा। रात नींद से पहले वह मानो यादों की नींद में गहरा उतर गया।

''वह सियालकोट की मुख्य सब्जी मण्डी से घर की तरफ छुपते हुए जा रहा था। उसे पता चला था कि इसी इलाके में कहीं दंगा हुआ है और गोली भी चली है। इस समय चारों तरफ मौत की शांति थी। कल एक गुरूद्वारे को जला दिया गया था, जिसमें कई लोग, जिसमें औरतें और मासूम बच्चे भी थे, जिन्दा जल गए थे। उसे यह भी पता चला कि स्थानीय पुलिस भी आक्रमणकारियों के साथ मिल गई है। सिक्खों पर विशेष कयामत ढाई जा रही थी। जिन सिक्खों ने सियालकोट को इतना कुछ दिया, उन्हीं के साथ हद दर्जे की निर्दयता बरती जा रही थी। हालांकि सिक्खों ने काफी विरोध किया था, पर बहुतेरे सिक्ख काट डाले गए। कल रात उसकी गली में रामदीन का भी मकान जला दिया गया था और उसके घर का सारा सामान लूट लिया गया था। इस लूट के कुछ देर पहले ही रामदीन और उसके परिवार वाले चुपके से घर छोड़ के गए थे। हकीकतन जब रामदीन और उसका परिवार घर छोड़कर जा रहे थे, वह अपनी छत से उन्हें जाते हुए देख रहा था। उस रात उसे लगा था कि रामदीन जल्दबाजी कर रहा है। सियालकोट में सिक्खों के वर्चस्व को खतम करने के लिए सिक्खों को मारा जा रहा है, परन्तु क्या पता हिन्दुओं के साथ इतना अत्याचार न हो। कुछ देर बाद जब कुछ लोगों ने रामदीन के घर पर हमला किया और आगजनी की तो उसने समझ लिया कि नहीं, अब जाना ही होगा। यह आग उसके घर तक भी आ सकती है।

सुबह वह उठा भी नहीं था कि सलीम उसके घर छिपता सा आया था और उसने बताया था कि उसके ताया के बेटे नियामत और जावेद उससे उसका हाल-चाल पूछ रहे थे। सलीम ने बताया था कि उनके पूछने के अंदाज से उसे शक हुआ था इसलिए वह ताकीद करने आया है। जसवन्त का कलेजा धड़क उठा था। तो क्या वास्तव में बंटवारा हो गया है? क्या वास्तव में उसका देश, उसकी जमीन उससे छूट जाएगी। लगभग सारा शहर उसे जानता है। इसी शहर में वह पैदा हुआ, पला, बढ़ा। सभी उसके दोस्त हैं। क्या करीम, क्या जावेद, क्या नियामत और यह जो शहर के प्रमुख लोग हैं, लगभग सभी के ही साथ तो उसकी उठ-बैठ है। वह लोग, जिनसे वह बिछड़ने के नाम पर ही उदास हो जाए, क्या वह उसके दुश्मन हो गए हैं? क्या सलीम भी? नहीं, सलीम तो उसे ताकीद करने आया था। तो वह क्या करे? उसने फैसला कर लिया था कि जोखिम लेने की जरूरत नहीं। वह अपना घर छोड़ देगा। हमेशा के लिए। सोचते ही उसका कलेजा फट पड़ा। उसे लगा कि वह चीख-चीखकर रोने लगेगा। हिन्दुस्तान के दो टुकड़े! क्या यह संभव है? क्या जमीन दो टुकड़ों में बंट जाएगी? अपनी जमीन पर हमेशा रहते आए लोगों को एक अनजान नाम बताया गया 'पाकिस्तान' और इस नाम ने उनका सब कुछ छीन लिया। यह पाकिस्तान किसने रचा, क्यों रचा, किससे पूछकर रचा? क्या दो अति महत्वाकांक्षी व्यक्तियों की महत्वाकांक्षा के लिए किसी देश के दो टुकड़े भी स्वीकार किए जा सकते हैं? एक को हिन्दुस्तान चाहिए और एक को पाकिस्तान। कांग्रेस पार्टी पर तो उसे भरोसा नहीं था, वहां व्यक्तिगत स्वार्थ हावी हो चुके थे, परन्तु क्या गांधी जी भी कुछ नहीं कर सके? बात-बात पर अनशन करने वाले गांधी जी अब क्यों शान्त रह गए? उसके मन में प्रश्न भी बहुत थे और दुख भी।

उसका कलेजा फटा जा रहा था। सब्जी मण्डी से निकलते ही जब वह अपने घर की गली में घुसा तो देखा रामदीन के घर

से अब भी धुंआ निकल रहा है। कुछ लोग रामदीन के घर के बाहर खड़े हैं। वह सकपका कर तुरन्त एक मकान की ओट में हो लिया। यहां से उसका मकान दिखाई तो नहीं देता था परन्तु कुछ ही दूरी पर था। वह जिस मकान की ओट में था, उसके भीतर घुस गया। उस घर के सदस्यों ने उसे शंका की दृष्टि से देखा परन्तु वह उनके नजरों की परवाह किए बिना छत पर पहुंचा और फिर छतों से होता हुआ अपने घर की छत तक जा पहुंचा। अभी तक लोग उसके घर तक नहीं पहुंचे थे। एक बार उसके मन में फिर आया था कि शायद कुछ न हो, शायद उसे घर ना छोड़ना पड़े परन्तु जब वह छत से होता अपने घर के आंगन में पहुंचा तो एक कोने में उसे अपनी बहू दिखी। घबराहट उसके मासूम चेहरे पर लिपटी हुई थी। उसके दिल से हूक से उठी। अभी एक साल भी तो नहीं हुए उसे इस घर में आए। उसकी गोद में दूधमुंहा बच्चा था। शहर में जो वारदात हो रही थी, क्या वह भी उसी का शिकार हो जाएगी। घर छोड़ने की जो दुविधा उसके मन में थी, वह एकाएक खतम हो गई थी। उसने तुरन्त घर छोड़ने का फैसला कर लिया। अंधेरा होने को था। उसने अपने बेटे को आवाज दी। भीतर के कमरे से उसका बेटा कृपा बाहर आया।

'बेटा, हमें अभी शहर छोड़ना है।' वह बोला तो बहू के मुंह से चीख निकल गई।

फिर तीनों जरूरी सामान समेटने में लग गए। जो समेटा गया उसे एक बक्से और एक गठरी की सूरत में और अंटी में समेट लिया गया। वह पूरी तरह फारिग हुए भी नहीं थे कि बाहर शोर सा मचा। शोर पता नहीं किसका था। जसवन्त चीखा-'भागो।' तुरन्त ही तीनों छत पर जा चढ़े। छत के पीछे सुहागसिंह का मकान था। तीनों उसके मकान में कूद गए। सुहागसिंह का मकान भी खाली हो चुका था। तीनों गलियों में भागते किसी सुनसान जगह की तलाश में थे। राह में उन्हें कुछ घर जले मिले। सिक्खों और हिन्दुओं के लगभग सभी घर खाली हो चुके थे। वह हैरान था कि उसे माहौल समझने में इतनी देरी कैसे हो गई? एक स्थान पर दो लाशें दिखाई दीं, जिसे चार-पांच लोग घेरे खड़े थे। एक गली में किसी अभागे का पैर आधा कटा हुआ एक कूड़े के ढेर पर पड़ा था। यह सब देखकर उनका दिल सहम गया था। क्या मानव का शरीर अब कुड़े से भी गया गुजरा हो गया। भीगे मन से भागते हुए उसके बेटे ने पूछ लिया-'कहां जाना है पिताजी?'

'सलीम ताया के घर।' उसके मुंह से बरबस निकला। उसके बेटे के पांव ठिठके पर उसके पांव नहीं रूके थे। लम्बा रास्ता पकड़ते हुए, गलियों में छिपते-छिपाते अंततः वह सलीम के घर के पास पहुंच गए। उन्हें एक सुरक्षित और सुनसान स्थान पर खड़ा करके जसवन्त सलीम के घर गया। वहां संयोग से सलीम बैठा ही था। जसवन्त को देखते ही सलीम उसे खींच कर भीतर ले गया।

'बाकी कहां हैं?' सलीम सरगोशी करता पूछा।

तब से सलीम की बेगम रूखसाना और उसका बेटा करीम भी आ गए।

जसवन्त ने बताया। तुरन्त करीम बाहर की तरफ भागा। थोड़ी देर में आया तो करीम के साथ कृपा और उसकी बहू भी थी।

'देवरजी चिन्ता मत करो।' रूखसाना बोली-'आप यहीं छिप जाओ। आधी रात को आपको बाहर तक छोड़ आएंगे। रात के लिए एक लारी कर रखी है जो कुछ लोगों को लेकर वजीराबाद होते हिन्दुस्तान जाएगी। उसी लारी में आप सभी के लिए कह रखा है। यह भी सुना है सरकार यहां पर जल्दी ही फौज तैनात कर देगी। खुदाया सब भली करेंगे।'

तीनों वहां छिपने को राजी हो गए। और कोई विकल्प भी नहीं था। हर गली में सन्नाटा बिखरा पड़ा था और लोग रात के अंधेरे में ही भाग रहे थे या फिर काफी सारे लोग एक साथ जत्था बनाकर निकल रहे थे। अब लोगों से संपर्क करने का समय नहीं था इसलिए उनका भी रात के अंधेरे में निकलना आवश्यक हो गया था। सलीम ने उन्हें अपने घर की एक अंधेरी कोठरी में छिपा दिया था जो उसके घर के बिल्कुल पिछवाड़े पड़ती थी। उस अंधेरी कोठरी में वह तीनों अपने सीने की धड़कन सुन सकते थे। देर रात जसवन्त को एकदम से ध्यान आया कि उसकी पत्नी की एकमात्र निशानी उसकी फोटो तो घर में ही रह गई। उसने उसकी फोटो अपने खेती बाड़ी के कागजों के साथ एक छोटी सी संदूक में अनाज वाले कोठे में रख रखी थी। आज उससे उसका घर छूट रहा था। इस घर की समस्त यादें भी यहीं रह जानी थीं। पर कृपा की मां की याद, जो जब तक जिन्दा रही, उसका हमसाया बनी रही, उसकी एकमात्र याद को वह कैसे पीछे छोड़ जाता।

वह अपने स्थान से उठने लगा।

'पिताजी।'-तुरन्त ही कृपा ने अंधेरे में ही उसका हाथ पकड़ लिया।

'अभी आया पुतरा।'-कहकर जब तक कृपा उसे रोकता, वह तेजी से दरवाजे की तरफ बढ़ा और दरवाजा खोलकर धीरे से बाहर झांका। बाहर नीम अंधेरा था। कहीं दूर पर कुछ आवाजें आ रही थीं। जसवन्त बाहर निकल गया। पीछे कृपा और उसकी पत्नी अपने कलेजे को थामे और परमात्मा को याद करते बैठे रहे। वह अपने घर की तरफ धीरे से निकल गया था। रास्ते में कोई नहीं मिला। सारी गलियां यूं शांत पड़ी थीं कि उसे उस शांति में मौत के कदमों की आहट सुनने लगी थी। दूर कहीं अब भी अजीब सी आवाजें आ रही थीं जो डर को बढ़ा ही रही थीं। वह अपने घर के पास पहुंचा तो धक से रह गया। बाहर का दरवाजा गिरा पड़ा था। भीतर से कुछ लोगों की आवाजें आ रही थीं। यूं लग रहा था कि कुछ लोग भीतर हैं जो सामानों को उठाकर फेंक रहे हैं। वह डरते हुए दरवाजे के पास पहुंचा। भीतर कुछ लोग उसे दिखे भी। अब भीतर जाने का कोई फायदा नहीं था। उसने अपने घर को एक बार हसरत भरी निगाह से देखा, उसके दीवार पर हाथ फिराया मानो किसी बच्चे को सहला रहा है और फिर उल्टे पांव वापिस हो लिया। वह लगातार भाग रहा था। जब वह सलीम के घर के पास पहुंचा तो अंधेरे में अचानक किसी ने उसका हाथ पकड़ लिया। उसके मुंह से चीख निकल गई थी।

'यह मैं हूं सलीम, कहां गया था?'-वह सलीम ही था।

उसकी सांस फूल रही थी। उससे कोई जवाब नहीं दिया गया। सलीम उसे खींचता हुआ एक तरफ ले चला।

'कृपा और बहू...? उसने पूछा। सलीम उसे अपने घर से दूर लिये जा रहा था।

'उन्हें लारी में बैठा दिया। अचानक ही कार्यक्रम बदलना पड़ा। पर तू चिन्ता मत कर। वह सुरक्षित हैं। तू मिला नहीं तो तुझे ढूंढने तेरे घर जा रहा था।'

'पर मेरा इन्तजार तो कर लेता।'-वह शिकायत भरे लहजे में बोला।

'घर पर बिलावल आया था। वह बता रहा था कि जावेद को पता नहीं कैसे शक हो गया है कि तू यहां छिपा बैठा है। यह भी बता रहा था कि जावेद कुछ लोगों को लेकर तेरे घर की तरफ गया है। और बताया कि वजीराबाद में कत्लेआम मच गया है। उसके जाने के तुरन्त बाद रूखसाना को भेजकर लारी वाले को वजीराबाद जाने से रोका है और उसे कश्मीर रोड पर एक गली में रूकने को कह रखा है। अब स्टेशन से अमृतसर वाली गाड़ी पकड़ेंगे।'- सलीम उसे खींचता सा बोला।

'पर वहां तो...?'-वह सहम गया।

'इस समय वहीं से ही जाना सुरक्षित है। चल चलते हैं। समय बिल्कुल नहीं है। जावेद तुझे घर पर नहीं पाकर यहां भी आ सकता है। वह बहुत गुस्सैल है। कुछ अनहोनी यहीं न हो जाए जसवन्ता। जल्दी कर।'

दोनों भागते हुए कश्मीर रोड तक

आए और उसे लेकर सड़क से लगती एक चौड़ी गली में सलीम घुस गया। वहां कोई लारी नहीं थी।

'लगता है लारी चली गई।'-सलीम की भी सांसे चढ़ आई थीं।

'हमें स्टेशन जाना होगा।'-वह बोला।

'चल, मैं भी चलता हूं।'- सलीम बोला।

'तू क्या करेगा? स्टेशन आठ किलोमीटर दूर है। तू घर जा।'

सलीम बड़ी लाचारी वाली हंसी हंसा। बोला-'तेरी भाभी कृपा और बहू के साथ कुछ और लोगों को भी सुरक्षित पहुंचाने गई है। मैं तुझे भी कैसे छोड़ दूं मेरे जिगरी यार। फिर तेरी भाभी को वापिस भी तो लाना है।'

जसवन्त का कलेजा रो उठा। कैसी त्रासदी थी। एक मुसलमान कुछ लोगों के लिए जान का जोखिम तक उठा रहा था तो दूसरे मुसलमान उनकी जान के पीछे पड़े थे। सुनने में आ रहा था कि ऐसा ही हाल देश के अन्य स्थानों पर भी था। कहीं हिन्दू मार रहे थे, तो कहीं मुसलमान। हां, इतना अवश्य था कि जो मर रहे थे वह इन्सान थे। लाचार, बेबस, दुखी। वह दोनों भागते रहे। स्टेशन के बाहर लोगों का हुजूम उमड़ा पड़ा था। वहां उन्हें फौज का कोई आदमी नहीं दिखाई दिया। कुछ पुलिस वाले खड़े थे, परन्तु उन पर कतई विश्वास नहीं किया जा सकता था।

वह स्टेशन के भीतर गए तो वहां का हाल देखकर उनकी रूह कांप गई। सारा स्टेशन लोगों से जिनमें अधिकांश सिक्ख थे और उनकी तुलना में आधे हिन्दू थे, से भरा पड़ा था। उनमें से बहुत से लोग घायल थे। वहां कुछ लोग हथियार लिए हुए जत्थे बनाए खड़े थे। यह वह लोग थे, जो अपने रिश्तेदारों को गंतव्य तक सुरक्षित पहुंचाने के लिए उनकी सुरक्षा को लेकर चिंतित थे। स्टेशन के एक तरफ भयंकर चीख पुकार मची थी। सहमते हुए दोनों ने उधर देखा। पता चला कि स्टेशन से थोड़ी दूरी पर वजीराबाद से अभी-अभी एक रेलगाड़ी पहुंची है, जिसमें सभी लोगों को मार डाला गया है। भीड़ का बहुत सा हिस्सा उधर की तरफ भाग रहा था, हालांकि वह रेलगाड़ी यहां से दिखाई नहीं दे रही थी। उस रेलगाड़ी को स्टेशन के बाहर ही रोक दिया गया था। कुछ लाशें वहां से स्टेशन पर लाई गई थीं और कुछ लाई जा रही थीं। उन लाशों को स्टेशन पर ही रखा गया था। उसने भी देखा। एक लाईन से करीब तीस लाशें रखी हुई हैं। शायद ही उनमें से किसी लाश के पूरे अंग थे। एक पुलिस वाला उन लाशों की गिनती कर रहा था और कागज पर कुछ नोट कर रहा था। उनमें बच्चों की भी लाशें थीं। उसने एक औरत की लाश देखी। वह नंगी थी। अचकचाकर उसने नजरें घुमा ली। उसे लगा कि वह वहीं बेहोश होकर गिर जाएगा। सलीम ने उसका हाथ थाम रखा था। सलीम का भी चेहरा दर्द से भरा हुआ था। लाशों से निगाहें हटाते दोनों अमृतसर जाने वाली गाड़ी को देखने लगे। वह देरी से पहुंचे थे और उस समय अमृतसर जाने वाली रेलगाड़ी स्टेशन से रवाना हो चुकी थी। रेलगाड़ी का अन्तिम डिब्बा ही सामने था। रेलगाड़ी का बहुत कम हिस्सा दिखाई दे रहा था। उसके ईंजन के पुश्तों से लेकर उसकी छत तक लोग ही लोग दिख रहे थे। छोटे बच्चे तक रेलगाड़ी की छत पर लटक रहे थे। डिब्बों के बीच बहुत से लोग खड़े थे। चारों तरफ चीख-पुकार मची थी। कोई स्टेशन पर छूट गया था और रेलगाड़ी के पीछे बेतहाशा भाग रहा था। एक औरत की गोद में बच्चा था और वह भीड़ को तीर की तरह चीरती चीखती हुई रेलगाड़ी के पीछे भाग रही थी उसकी पुकार से लग रहा था कि उसका कोई संबंधी रेलगाड़ी में बैठ चुका है और वह बैठ नहीं पाई। ऐसे ही और भी लोग दिख रहे थे, जो यदि अपने परिवार से आज बिछुड़ जाते तो पता नहीं कहां मिलते। मिलते भी या नहीं। रेलगाड़ी की छत पर खड़े कुछ लोग भी अपने अपने संबंधियों को बुला रहे थे जो स्टेशन पर ही रह गए थे। कोई भीड़ में अपने परिचितों को तलाश रहा था। सभी के चेहरों पर गम और आंसू दिख रहे थे। रेलगाड़ी में इतने लोगों के चढ़ने के बावजूद भीड़ इतनी थी कि अपने संबंधियों को तलाशना नामुमकीन था। ऐसे में जसवन्त अपने बेटे, बहू को कहां देख पाता? वह रेलगाड़ी के पीछे भागते हुए बेटे को पुकारने लगा। उसे यह भी तो पता नहीं था कि दोनों रेलगाड़ी पर चढ़ भी गए या नहीं। इधर सलीम रूखसाना को बुलाए जा रहा था, आखिर रूखसाना के साथ ही दोनों यहां आए थे। रेलगाड़ी कछुए की चाल की तरह चलती चली जा रही थी। धीरे-धीरे उसने गति पकड़ ली और रेलगाड़ी की छुक-छुक और तेज सीटी की आवाज से उसका कलेजा कांप उठा। उसे लगा कि कृपा और उसकी बहू सदा के लिए दूर हो रहे हैं। रेलगाड़ी की वह आवाज उसके कलेजे में हमेशा के लिए घर करती लग रही थी। रेलगाड़ी चली गई तो थक हार कर सलीम और वह बाहर आ गए। जसवन्त के शरीर में कोई ताकत नहीं रह गई थी। उसके मुंह से रूदन भरी डकार निकली और वह जमीन पर बैठ गया। तभी पता नहीं कहां से रूखसाना उनके पास आ गई। उसके साथ कृपा और उसकी पत्नी नहीं थे।

'दोनों कहां हैं?'- सलीम और उसके मुंह से एक साथ निकला।

'दोनों गए। रेलगाड़ी में किसी तरह चढ़ा दिया दोनों को।' वह हांफती सी बोली।

जसवन्त का कलेजा दुख और संतोष से एक साथ भर उठा। दुख यह सोच कर हुआ कि क्या दोनों उसके बिना सियालकोट की जमीन छोड़ने को तैयार हो गए? संतोष यह सोच कर हुआ कि इस मौत की नगरी से दोनों बच तो गए। 'दोनों जाने को तैयार नहीं हो रहे थे।'-रूखसाना बोल रही थी-'मैंने यह कह दिया कि देवरजी भी इसी रेलगाड़ी पर या अगली रेलगाड़ी से अमृतसर पहुंचेंगे।' रूखसाना की आंखों में कहते हुए आंसू आ गए।

'मैं जाता हूं।'- कहकर जसवन्त खड़ा होने लगा।

'कहां?'- दोनों हड़बड़ा गए।

'इस रेलगाड़ी के साथ। जहां मेरे बच्चे गए हैं। जहां मेरा परिवार गया है। अब मेरा यहां रह ही क्या गया है सलीम मियां।' वह बोला तो उसकी आवाज में जमाने भर का दर्द था।

'मैं तेरा कुछ नहीं जसवन्ता। मैं तेरे बचपन का साथी एक ही दिन में पराया हो गया?' सलीम उसे कंधे से पकड़ता बोला।

'तू ही है मेरा। यहां मेरी इस जमीन पर अब है ही कौन मियां। तुम हो, भाभी है। पर मेरा परिवार तो वह जा रहा है, उधर। उसने अपनी बाहें लम्बी करके गई हुई रेलगाड़ी की दिशा में इशारा किया।

'यूं नहीं जाने दूंगा। रेलगाड़ी तो अमृतसर पहुंच जाएगी। तू केसे पहुंचेगा?' सलीम बोला।

'किसी तरह तो पहुंच ही जाऊंगा। वहां दोनों मेरा इन्तजार तो करेंगे।'

'मैंने दोनों को कह दिया है कि तुम्हारे पिताजी तुमसे अमृतसर में ही मिलेंगे।'- रूखसाना बीच में बोली।

'बढ़िया किया भाभी।'- जसवन्त रूखसाना का हाथ पकड़ते बोला। जसवन्त का आंसूओं में भीगा चेहरा देख रूखसाना फिर रो पड़ी।

इसके बाद सलीम जसवन्त को लिपटाकर रोने लगा। उसके बचपन का साथी आज उससे बिछुड़ रहा था, पता नहीं कभी मिलेगा भी या नहीं। जसवन्त बच्चों की तरह रो रहा था। रूखसाना वहीं जमीन पर बैठ हिचकियों से रो रही थी।

जसवन्त आगे बढ़ा तो पीछे से सलीम ने पुकारा-'जसवन्ता।''

'दादा।'- अचानक सुलतान की आवाज आई। वह हड़बड़ाकर उठ बैठा। देखा तो कमरे के दरवाजे से दिन की हल्की रोशनी

आ रही थी।

'क्या बात है, आज टैम पर नींद नहीं खुली तेरी।'-सुलतान उसके पास बैठता बोला।

जसवन्त खुद हैरान था कि उसे ऐसी कैसी नींद आई। सारी रात वह सोचता रहा या सपना लेता रहा? वह उठ बैठा। इसके बाद दैनिक कामों से फ़रिग होकर जब वह मंजी खींचकर दुकान के पास ले जा रहा था तो देखा कि दुकान पर रेलवे का लाईनमैन सत्तू बैठा है।

'दादा, ले तेरा ईलाज हो गया।'-सत्तू उसे देख चहकता सा बोला।

'क्या बात होग्गी?'-वह बैठता हुआ बोला।

'कल से रेलगाड़ी बन्द।'-सत्तू एकदम से बोला।

'क्या!'- जसवन्त का कलेजा हैरानी और खुशी से पुलक उठा-'क्या कहा तूने?'

'रेलगाड़ी बन्द। - सत्तू उसकी स्थिति का आनन्द लेता बोला।

'दादा, रेलगाड़ी बन्द ना होई है।'-सुलतान बीच में बोल पड़ा-'इदर बड़ी लाईन पड़ रई है तो कल से छ: महीने तक रेलगाड़ी नहीं आएंगी। इसके बाद फिर कई और रेलगाड़ियां चालू हो जाएंगी।'-दूसरी बात कहते-कहते सुलतान की आवाज धीमी हो गई।



जसवन्त ने मानो आधी ही बात सुनी। उसने सुना कि रेलगाड़ी बन्द हो गई है। उसका कलेजा खुशी से धक-धक करने लगा था। वह लंगड़ाता हुआ दुकान तक पहुंचा और सत्तू का हाथ खुशी से थाम लिया-'बेटा यह तो बहुत बढ़िया खबर सुनाई तूने।'

'दादा, छह महीने तक बन्द है रेलगाड़ी, फिर इससे ज्यादा आएंगी।'-चिढ़ता सा चिन्तित स्वर में सुलतान फिर बोला।

'अरे बेटा, छह महीने तो आराम है ना, फेर की फेर देखेंगे। क्या पता फेर मैं तेरी रोटी तोड़ने के लिए जिन्दा रहूं भी ना।'

'दादा, तू हजार साल जिएगा।'-सत्तू बीड़ी सुलगाता और ढेर सारा धुंआ उसकी ओर उगलता बोला।

'ना बेटा। और नहीं जीना। बहुत हो लिया बेटा। और रेलगाड़ियां शुरू होने से पहले खुदा मुझे उठा ले तो ठीक।'-वह फिर मंजी पर जा बैठा और सोचने लगा कि सलीम को यह खबर सुनानी बहुत जरूरी है। वह अपनी खुशी में सलीम को शरीक किए बिना कैसे रह सकता था? जो सलीम उसकी हर हंसी का, हर आंसू का गवाह रहा है, उसे सुनाए बिना यह खुशी कैसे पूरी होगी? पर उसके लिए उसे चुपके से सलीम के पास जाना होगा। सुलतान को यह विश्वास दिलाना होगा कि उसका पैर इतना ठीक है कि उसे डाक्टर के पास जाने के लिए बहू को या सुलतान को साथ ले जाने की जरूरत नहीं है। डाक्टर के पास जाने में अभी समय था। वह यूं ही एक-दो बार मंजी से उठकर चलने का दिखावा करने लगा।

'क्या बात दादा।'-सुलतान हंसा-'बड़ा फुदक रहा है।' अपने दादा को खुश देखकर उसका मन संतोष से भरा हुआ था।

'हां बेटा, यूं लग रहा है कि यह खबर सुनते ही घुटनों का दर्द भी ठीक हो गया है।'-इसके बाद वह डाक्टर के पास अकेले जाने की बात करना चाहता था परन्तु अनजानी आशंका से चुप रह गया।

इसके बाद दुकान पर ग्राहक आ गए। जसवन्त कृतसंकल्प था। वह उठकर धीरे से दो कदम चला फिर नजर बचाता निकल गया। उसने सोच रखा था कि सुलतान उससे अकेले जाने के बारे में पूछेगा तो कह देगा कि पैर भी ठीक लग रहा था और दुकान में व्यस्त होने के कारण वह उससे बिना कहे निकल आया।

जब वह उस मोड़ पर पहुंच गया जहां से दुकान दिखनी बन्द हो गई थी तो उसका दिल बल्लियों उछलने लग गया। सलीम का घर करीब एक कोस था। इतनी दूर एक बार में जाना उसके लिए असंभव था, परन्तु आज सलीम से वह अवश्य मिलेगा। डाक्टर की छोटी सी क्लिनिक रास्ते में थी। वहां दिखाकर, दवा की एक खुराक वहीं खाकर वह चल पड़ा। रास्ते में उसे दो जगह आराम करना पड़ा। घुटनों का दर्द यूं हो जाता कि लगता नहीं जा पाएगा। पर अन्तत: वह सलीम के घर पहुंच ही गया।

सलीम का घर साधारण सा था। मकान के बाहर एक आंगन था और भीतर दो कमरे, रसोई और बाथरूम थे। आंगन में एक नीम का पेड़ लगा था, जिसकी छाया तले बहुत बार ताश की बाजियां लगती थीं। सलीम अपना सारा सामान एक कमरे में रखता था और दूसरे कमरे में तीन-चार मंजियां बिछी रहती थीं, जिनके बीच में एक लकड़ी की पुरानी सी मेज होती थी। उस कमरे में हमेशा ताशेड़ियों का अड्डा जमा रहता था। इस समय भी वहां पर तीन अन्य लोग थे जिनके साथ सलीम ताश की बाजी लगा रखा था। लंगड़ाता जसवन्त वहां पहुंचा तो सलीम उसे देखते ही हक्का बक्का रह गया। उत्तेजना से वह खड़ा हो गया। एक पल वह जसवन्त को देखता रहा, जसवन्त उसे देख मुस्कराता रहा, फिर लगा कि सलीम रो पड़ेगा। उसने ताश फेंकी और जसवन्त से लिपट गया।

'जसवन्ता तू!'-वह बोल उठा।

'हां, मियां मैं, कैसा है?'-जसवन्त ने भी उसे लिपटा लिया।

'अचानक! सब ठीक तो है?'-सलीम ने पूछा।

'हां, सब ठीक है। आज मन किया तू तुझे देख लूं। महीनों हो गए, तुझे देखे हुए।'-जसवन्त बोला-'कैसे रह रहा है अकेला?'

'अरे ताऊ, तुम्हारे सलीम मियां को हम अकेले रहने ही नहीं देते। इनकी बीबी ताशबानो और हम इनके साथी हमेशा इनका ध्यान रखे रहते हैं।'-बैठे लोगों में एक चालीसेक साल का व्यक्ति ठठाकर हंसते हुए बोल उठा-'मियां जी, चलो अपनी चाल चलो।' वह सलीम से बोला।

'बस! अब नहीं।'-तुरन्त सलीम बोल उठा। कहकर वह जसवन्त को लेकर दूसरे कमरे की तरफ चला।

'अरे ऐसे कैसे?'-तुरन्त ही तीनों जोर-जोर से बोलने लगे, परन्तु सलीम ने

उनकी परवाह नहीं की और जसवन्त को लेकर दूसरे कमरे में आ गया।

'सुलतान कहां है?'-सलीम ने उसे एक कुर्सी पर बैठाते हुए पूछा।

'दुकान पर ही है।'

'फिर कैसे आ सका?'

'डाक्टर को दिखाना था। आगे तक आ गया।'

'तेरे घुटने का दर्द?'-सलीम ने चिन्तित स्वर में पूछा।

'वैसा ही है, पर जाने दे। तू बता कैसा है?'

सलीम कुछ बोलता कि अचानक ही बाहर से कुछ आवाजें आनी शुरू हो गईं। यह आवाजें सामान्य नहीं थीं। सलीम ने देखा कुछ लोग उसके दरवाजे से भीतर की तरफ आ रहे हैं। उनके चेहरे पर उत्तेजना साफ दिख रही है।

'क्या हुआ कमले?'-सलीम ने उनमें से एक से पूछा।

'दादा, दंगा हो गया है।'-कमले ने बताया।

जसवन्त को लगा कि रेलगाड़ी ने उसके घर का दरवाजा तोड़ दिया है और उसकी तरफ आ रही है।

'हे रब्बा!'-सलीम के मुंह से निकला-'क्या हुआ रे?'

'अरे दादा, उसे नहीं जानते...उसे...आपके रमजान को?'- कमल बोला।

'हां, तो?'- सलीम ने पूछा।

'उसने गौशाला की जमीन पर कब्जा कर लिया है।'

'रमजान ने? पर वह तो ऐसा नहीं है कमले।'-सलीम ने आश्चर्य प्रकट किया।

'अरे दादा, आप भी उसका पक्ष लेने लगे। रमजान ने गौशाला की जमीन पर अपने दुकान का सारा पुराना फर्नीचर डाल लिया है। जब गौशाला वालों ने उससे कहा कि यह सामान हटा लो तो कहने लगा कि यह जमीन मुसलमानों की है।'

जसवन्त और सलीम का कलेजा धड़क रहा था। अब भी वही हो रहा था। वही जमीन...वही हिन्दू...वही मुसलमान।

'उसने ऐसा नहीं कहा था कमले।'-तुरन्त ही एक लम्बी दाढ़ी वाले व्यक्ति ने विरोध किया।

'अरे रहने दो करीम चचा।'-कमले के साथ खड़ा एक और व्यक्ति बोल पड़ा-'आपने तो रमजान का पक्ष लेना ही है। उसकी दुकान से आपका उधारी सामान जो आता है।'

'बात उधारी की नहीं है गुलजारी...बात सही गलत की है। रमजान हर साल गौशाला को चन्दा देता है। उसने अपने गोदाम की सफाई करवाई थी, इसलिए एक बार सामान उस जमीन पर रखवा दिया। पर गौशाला का मैनेजर जाकर बोल पड़ा कि क्या कब्जा करने का विचार है? इसपर रमजान बिगड़ गया।'-करीम समझाने लगा।

'अरे रहने दो चचा...।'

इसके बाद वहां पर विवाद बढ़ता चला गया। जसवन्त ने देखा कि सलीम लाचारी से कभी एक पक्ष को समझा रहा था तो कभी दूसरे पक्ष को। परन्तु यहां भी विभाजन रूक नहीं रहा था। जसवन्त समझ सकता था कि कितनी आसानी से बातें दूसरा रूप ले लेती हैं। वह भी सलीम के साथ सभी को कहना चाहता था कि रूक जाओ...न बोलो इतना कि नफरत फैलती जाए... नहीं जानते विभाजन क्या होता है, कैसा होता है? परन्तु वह कुछ नहीं कह सका। वहां भीड़ बढ़ती जा रही थी। ताश खेलने वाले तीनों व्यक्ति भी इस बहस में उलझ गए थे। सभी ने सलीम को भी उलझा रखा था। जसवन्त दो-चार मिनट वहीं खड़ा रहा फिर धीरे से निकल आया। उसे बहुत अफसोस हो रहा था कि लम्बे समय बाद वह सलीम से बगलगीर होकर मिलता परन्तु फिर कुछ लोगों की नफरत ने उन्हें मिलने नहीं दिया। वह दंगे की आशंका से भी भयभीत था। चर्चा में यह भी किसी ने कहा था कि बात फैल गई है और हिन्दू मुसलमान गुटों में एकत्र होने लगे हैं। माहौल खराब हो सकता है। दंगा फैले और अंधेरा हो इससे पहले ही घर पहुंचना जरूरी था। वह जानता था कि जब सलीम उसे वहां नहीं पाएगा तो बहुत दुखी होगा। जसवन्त के घर पहुंचने के समय अंधेरा फैलने लगा था। सुलतान उसे देखते ही दुकान से बाहर को लपका-'दादा, कहां गए थे?'

'अरे डाक्टर को दिखाने...और कहां जाता?'-उसने भिनभिनाने का नाटक सा किया।

'बहुत देर कर दी...सुना नहीं दंगा फैलने वाला है।'-सुलतान बोला।

'किस बात का दंगा रे?'-अनजान बनने का नाटक करता जसवन्त मंजी पर बैठता बोला।

'रमजान ने गौशाला की जमीन पर कब्जा कर लिया है और वहां पर मुसलमान मस्जिद बनवाना चाहते हैं। हिन्दुओं ने उसे मना किया तो वह अकड़कर बोला कि कुछ भी हो जाए, यहां मस्जिद जरूर बनेगी।'

जसवन्त हैरानी से सुलतान को देखने लगा। अफवाह क्या-क्या रूप ले लेती है? हकीकतन जसवन्त रमजान को व्यक्तिगत रूप से जानता था। रमजान शहर का प्रतिष्ठित और सुलझा हुआ इंसान था। दुख-सुख में सभी के काम आता था। अभी तक उसके व्यवहार से कभी नहीं झलका था कि वह जात पात में विश्वास भी करता है। एक साधारण सी बात कैसे रूप बदल लेती है कि वर्षों का विश्वास क्षण भर में खतम हो जाता है। वह एक गहरी सांस लेकर रह गया। यही तो हुआ था जब हिन्दुस्तान-पाकिस्तान अलग हुए थे। विभाजन में हिंसा की शुरूआत किसी एक ही आदमी ने की होगी। वह हिंसा भी किसी अफवाह से हुई होगी, जिसने लाखों मार दिए। जिसने करोड़ों को उजाड़ दिया। जिसने नफरत और अविश्वास का कभी खतम नहीं होने वाला दौर शुरू कर दिया। काश! काश कि उस शुरूआत को किसी ने वहीं पर रोक दिया होता।

'दादा, अब भीतर चलो। माहौल खराब है, ठीक नहीं है यहां बैठना।'-सुलतान ने उसे कुछ सोचते देख कहा। जसवन्त चुपचाप उठकर घर के भीतर की तरफ चल दिया। आज अधिक चलने के कारण उसके घुटनों में भी बहुत दर्द हो रहा था। थकावट के कारण उसकी पलकें भी असमय भारी हो रही थीं। वैसे भी दुखी मन एकान्त चाहता है।

सुबह जब उसकी नींद खुली तो देखा सुलतान आंगन में नहा रहा है। हवा में हल्की सर्दी थी, फिर सुलतान धूप चढ़ने पर ही नहाता था।

'क्या बात है, आज इतनी जल्दी?'- जसवन्त ने पूछा।

'हां, आज शहर से सौदा लाना है। क्या पता दंगा क्या रूप ले ले, बाद में जाना मुश्किल हो जाएगा।'-सुलतान फटाफट नहाता बोला-'अगर माहौल ठीक लगे तो दुकान खोलना, नहीं तो दुकान खोलने की जरूरत नहीं है। मैं शाम पड़ने से पहले आ जाऊंगा।'

सुलतान नाश्ता करके रोटी बंधवा कर दो बड़े थैले लेकर चला गया। जसवन्त धूप पूरी तरह खिल जाने तक घर में बैठा रहा। वह सोच रहा था कि सत्तू की बात सही होती है या नहीं? रेलगाड़ी की सीटी बजेगी या नहीं? धूप तेज हो आई और रेलगाड़ी की सीटी नहीं बजी तो उसके मन में आशा बंधी कि शायद सत्तू की बात सही है। उसका मन खुशी से नाचने को हो रहा था और आशंका भी हो रही थी कि क्या पता आज रेलगाड़ी फिर लेट हो। इतनी देर में बाहर से किसी ने आवाज दी। वह बाहर आया तो देखा पड़ोस का सुखविन्दर पातर है।

'दादा, कि गल...तुसी अज्ज दुकान नहीं खोलणी?

'बेटा, आज माहौल चंगा नहीं है इसलिए नहीं खोली।'-जसवन्त बोला।

'ल्यो जी'-सुखविन्दर हंसा-'माहौल नू कि होया?'

'वो दंगा...?'-जसवन्त हिचका।

'केड़ा दंगा?'–सुखविन्दर फिर हंसा–'ओ जी दंगा दांगा कुछ नहीं ऐ। सब चंगा हो गया। सब राजी रप्पा हो ग्या ऐ। तुसी बाहर आओ हौर मैनूं दो सेल फड़ाओ।'

जसवन्त भीतर जाकर दुकान की चाबी लाया और सुखविन्दर की सहायता से ही दुकान का दरवाजा खोला। सुखविन्दर को टार्च वाली सैल देकर वहीं मंजी बिछाकर बैठ गया। लगभग आधे घंटे बीत गए पर रेलगाड़ी की सीटी नहीं सुनाई दी। अब जसवन्त को विश्वास हो चला था कि सत्तू की बात सोलह आना सच थी। खुशी से उसके होंठों पर लम्बे समय बाद स्वत: ही गीत के स्वर फूटने लग गए। वह गीत गाने लगा। वही गीत जो सियालकोट की औरतें अपने प्रिय के परदेश जाने पर उसके इन्तजार में गाती थीं। खुशी के आलम में उसे सियालकोट फिर याद आने लगा। सलीम याद आने लगा। कल की घटना और सलीम से मिलकर भी नहीं मिल पाने की याद ने उसके मन को एक बार दुखी किया। वह सोचने लगा कि यदि माहौल वास्तव में ठीक रहा तो अवसर निकालकर वह दोपहर में दुकान बन्द करके सलीम के पास फिर जाने की कोशिश करेगा। परन्तु तभी उसे अहसास हुआ कि उसके घुटनों में दर्द बढ़ा हुआ है। वह गहरी सांस लेकर रह गया।

दोपहर हुई। फिर शाम उतर आई। इस बीच शहर से दो ग्राहक शाम के समय घुमते हुए उधर आ गए। पूछने पर उन्होंने बताया कि बस्ती का माहौल दोपहर तक ठीक था, परन्तु अब वापिस खराब हो गया है। रमजान ने गौशाला की जमीन से फर्नीचर कल रात को ही हटवा दिया था परन्तु उससे पहले कुछ लोग इसी बात को लेकर उलझ पड़े थे, जिसमें से एक के सिर में चोट लगी थी। हालत खराब होने पर आज उसे शहर के अस्पताल में भेज दिया गया है। इससे माहौल में फिर तनाव है और पुलिस भी तैनात कर दी गई है। कुछ लोगों ने नारे भी लगाए थे। हो सकता है कि रात को कुछ हो जाए...न भी हो।

वह दोनों चले गए परन्तु जसवन्त की बेचैनी बढ़ गई। उसे सुलतान की और सलीम की भी चिन्ता सताने लगी। शाम धीरे-धीरे गहरी होती चली गई। आज रेलगाड़ी न आने की खुशी इस दंगे के कारण कम हो गई थी। वर्षों बाद आज पहली बार वह रेलगाड़ी की मार से बचा रहेगा, परन्तु दंगा ने उसके मनोमस्तिष्क को फिर उसी डर से जकड़ दिया था। अब रात उतर आई थी। सुलतान अभी तक नहीं आया था। उसका मन शंकाओं में उतरने लगा था। क्या पता शहर से बसें आनी बन्द हो गई हो। क्या पता शहर में भी दंगा फैल गया हो। तमाम तरह की बातें। उसने कुछ सोचा फिर दुकान बन्द करने का विचार करके दुकान के भीतर सामान ठीक करने लगा कि अचानक अंधेरे में दुकान के दरवाजे पर एक आकृति उभरी।

'सलीम मियां!'–मारे खुशी के जसवन्त चीख पड़ा।

यह सलीम ही था। वह दुकान के दरवाजे पर आंखें फाड़कर भीतर देखने का प्रयास कर रहा था।

'हां, जसवन्ता मैं। इत्ता अंधेरा क्यूं कर रखा है?'–सलीम बोला।

जसवन्त लपका और सलीम को गले लगा बैठा। सलीम ने अपने हाथ की छड़ी हाथ से निकल जाने दी और जसवन्त को कसकर लिपटा लिया। कुछ देर तक दोनों साथी एक दूसरे से लिपटे रहे। दोनों ने अपने-अपने कंधे पर दूसरे के आंसुओं को महसूस किया।

'अचानक कैसे?'–जसवन्त ने पूछा।

'कल तू बिना बताए आ गया था?'–सलीम नाराजगी से बोला।

'हां मियां, क्या करता। वहां हिन्दुस्तान-पाकिस्तान बन रहे थे। इसलिए आ गया। अब हिम्मत नहीं थी एक और विभाजन देखने की।'–जसवन्त बोला। साथ ही वह दुकान से बाहर निकलकर पास रखी मंजी को दुकान के भीतर तक खिसका लाया।

'बैठ।'–उसने बड़े प्रेम से सलीम का हाथ पकड़कर उसे मंजी पर बिठाया।

'सुलतान शहर गया है?'–सलीम ने पूछा।

'हां, तुझे कैसे पता?'

'किसी ने बताया था तभी आ सका। कल तू बिना बताए आ गया, रहा न जा रहा था। फिर दंगा हो गया। चिन्ता हो आई कि सुलतान शहर गया है, कहीं कोई बात न हो जाए। वह मुसलमानों के खिलाफ खुलेआम जो बोलता रहता है।'–सलीम बोलता गया।

'तू उसकी चिन्ता मत कर। अब वह बच्चा नहीं रहा।'

'पर बहुत देर हो गई है। उसे अब तक आ जाना चाहिए था।'–चिन्तित सलीम बोला।

'आ जाएगा। अगर वह आ गया होता तो तू थोड़ी मिल पाता मुझसे।'–जसवन्त अंधेरे में उसका हाथ फिर थामता बोला।

'हां, मिल तो न पाता जसवन्ता। पर अपने मिलने से कहीं अधिक जरूरी है कि अपने बच्चे ठीक रहें।'

'तू चिन्ता मत कर। वह अभी आता होगा। तू बता कैसा है?'

'मैं ठीक हूं। तू बता। सुलतान वैसे तो ठीक है न और बहू कैसी है?'–सलीम ने पूछा।

'सुलतान भी ठीक है। बहू भी ठीक है। तूने उसे देखा है न?'–जसवन्त पूछा। पूछते समय उसे याद हो आया कि सुलतान की संक्षिप्त सी शादी में सलीम नहीं आ पाया था। सुलतान ने सलीम को उस अवसर पर भी नहीं बुलाया था।

'हां देखा भी और नहीं भी देखा जसवन्ता। एक बार उसे ठीक से देखा होता तो कलेजे में ठंडक पड़ जाती।'–सलीम बोला तो उसकी आवाज में भर्राहट थी।

'देखेगा?'–जसवन्त ने पूछा।

'कैसे?'

'उसे बता देते है सब।'–जसवन्त बोला।

'क्या बकवास कर रहा है जसवन्ता?'–सलीम की आवाज एकदम से तेज हो गई–'तेरा दिमाग खराब हो गया है?चुप कर।'

'हां, मेरा दिमाग खराब हो गया है।–'जसवन्त भी कुछ तेज आवाज में बोला–'कब तक सहोगे मियां? कब तक? कितनी बार समझाया है। इतने साल अकेले रहते हो गए, अब तक नहीं समझे?'

जसवन्त कुछ और भी कहता परन्तु सलीम ने उसके मुंह पर हाथ रख दिया। कसमसाता सा जसवन्त चुप रह गया।

'लालटेन तो जला ले।'–जसवन्त के चुप होने के दो मिनट बाद सलीम बड़े प्यार से उससे बोला।

'क्यों अब भी डर लगता है?'–जसवन्त ने हंसकर पूछा।

'हां, बहुत। अब भी डर लगता है मियां। यूं लगता है कि अंधेरे में फिर वही आग लपकेगी। फिर वही चेहरे अंधेरे में एकदम सामने आ जाएंगे।'–संजीदा होकर सलीम बोला।

'रात को सोते समय अब भी लालटेन जलाए रखता है?'–जसवन्त भी संजीदा हो गया था।

'हां यार! पड़ोसी हंसते हैं इस डर पर, पर क्या करूं? यह डर नहीं मिटता।'

'कब तक डरेगा अंधेरे से?–जसवन्त फिर हंसा।

'जब तक तू रेलगाड़ी से डरेगा।'–सलीम भी हंसा।

जसवन्त चुप रह गया फिर बोला–'हम दोनों कब तक यूं ही डरते रहेंगे सलीम मियां। तुम अंधेरे से...मैं रेलगाड़ी से?'

'जब तक हम मर नहीं जाते जसवन्ता। हमारी यही नियति है। न अंधेरे ने हमें बख्शाना,... न रेलगाड़ी ने।'

'तुझे पता है रेलगाड़ी अब छः माह के लिए बन्द हो गई।'–जसवन्त एकदम से चहका।

'हां, पता है। पर फिर ढेर सारी रेलगाड़ियां आएंगी। तब कहां जाएगा?'

'जाना कहां है? जब तक रोटी पानी लिखी है, यहीं जिएंगे।'–जसवन्त आह सी लेता बोला फिर अचानक यूं बोला मानो कुछ याद आ गया हो–'अच्छा...सुन...बहू के हाथ का खाना खाएगा?'

'मेरी किस्मत में कहां मियां।'–सलीम की आवाज लरज गई।

'है रे...तेरे नसीब में आज बहू के हाथ का खाना है। तू रूक मैं अभी आया।'–कहकर जसवन्त उठने लगा।

'रहने दे जसवन्त। कहीं सुलतान आ गया तो? मैं तो बस तेरा हाल चाल लेने आया था और सुलतान के बारे में जानने आया था कि वह आया या नहीं?

'अगर सुलतान आ जाता तो क्या तू मेरे पास नहीं आता?'

'कैसे आता?'–सलीम बोला–'बस उसे दूर से देखकर संतोष कर लेता और जिस रिक्शे से आया था, उसी से वापिस चला जाता।'

'रिक्शा कहां है?'

'उसे तो यह देखकर ही भेज दिया कि दुकान पर सुलतान अभी तक नहीं आया।'

'तो रूक...मैं अभी आया।'–कहकर जसवन्त अपनी सामर्थ्य से अधिक फुर्ती से उठा और लपक कर घर की तरफ चल दिया। इस समय चारों तरफअंधेरा था। दुकान के बाहर से किसी को तुरन्त ही यह नजर नहीं आना था कि दुकान के भीतर एक मंजी पड़ी है और उस पर कोई बैठा भी है। सलीम के कहने के बावजूद जसवन्त ने लालटेन यह सोचकर नहीं जलाई थी कि यदि सुलतान अचानक आ जाए तो...।'

'जसवन्ता, जल्दी आईयो।'–उसने पीछे से पुकारा।

जसवन्त के जाने के बाद सलीम अंधेरे में दुकान के भीतर देखने का प्रयास करने लगा परन्तु कुछ समझ नहीं आया। उसने अपने कंधे पर की लोई को अपने पैरों पर डाला और मंजी पर लेट गया। उसे वह क्षण याद आने लगा जब जसवन्त उसे छोड़कर जा रहा था।

''जसवन्ता!'–उसने सियालकोट रेलवे स्टेशन के बाहर जसवन्ता को जाते देख फिर पुकार लिया था। उसे एकदम से यह ख्याल आया था कि पैदल तो जसवन्त अमृतसर जा नहीं पाएगा। अल्सुबह किसी से बात करके वह किसी मोटरगाड़ी या लारी में इन्तजाम करके भेज देगा। उसने जसवन्त को पुकारा और उसे सुबह भेजने का वादा करके वापिस अपने घर ले आया था। घर आने पर उसे पता चला कि जावेद आकर गया था और पूरे घर की तलाशी लेकर गया है। वह यह भी बार-बार पूछ रहा था कि घर के बाकी सदस्य कहां पर गए हैं? शंकित मन लिए थके हारे सभी सदस्य सो गए थे। जसवन्त को उसने अपने मकान के उस कोठे में छिपा दिया जिसमें जानवरों के लिए चारा रखा करता था। वह मकान में सबसे पीछे की तरफबना कोठा था। इस समय पौ फटने में देर थी कि अचानक उसे आहट सुनाई दी। वह उठता इसके पहले ही उसे अपने घर के दरवाजे के भीतर दो-तीन व्यक्ति आते दिखाई दिए। उसने एक की आकृति को स्पष्ट पहचाना। यह जावेद था। वह बिना कोई आहट किए सोने का नाटक करता रहा। उसे समझ आ रहा था कि शायद जावेद जसवन्त की तलाश करेगा पर जसवन्त के पास जाने का रास्ता उसकी मंजी के पास से गुजरता था इसलिए संभव था कि जावेद वहां जाने की हिम्मत न करे। परन्तु कुछ देर बाद उसे अपने नथूनों में पेटोल की गंध महसूस हुई। वह कुछ समझ पाता कि अचानक उसके बिल्कुल पास जावेद का चेहरा उभरा। लाल आंखों के साथ जावेद के हाथ में एक जलती छोटी सी लकड़ी थी। वह जावेद को रोकता इससे पहले जावेद ने लकड़ी आंगन में फेंक दी। जावेद के दूसरे हाथ में तलवार थी। उसे विश्वास नही हो रहा था कि उसके ही जमात के लोग, उसके भाई उसके घर में आग लगा रहे हैं। वह तुरन्त ही छलांग लगाकर बिस्तर से उठा और जावेद से उलझ गया। वह चीखा–'जावेद, क्या कर रहा है, अपने ही घर में आग?'

'घर? कौनसा घर? यह मेरे भाई का घर नहीं। काफिर का घर है। तूने रामदीन को छिपाया। अब जसवन्त के परिवार को छिपाया। ले अब सभी जल मरेंगे।'

वह जावेद से तलवार छिनने की कोशिश कर रहा था परन्तु जावेद उससे बहुत अधिक ताकतवर था। जावेद हालांकि उस पर हमला नहीं कर रहा था परन्तु अपनी तलवार भी नहीं लेने दे रहा था। घर के कई स्थानों पर शायद पेट्रोल छिड़का जा चुका था इसलिए आग फैल चुकी थी।

'अब कोई नहीं बचेगा। पीछे मेरे आदमी हैं। तुने जिसे भी छिपा रखा है, वह भागेगा, उस काफिर को काट डालेंगे।'

इसके बाद भयंकर शोर मचा था। भीतर से चीखती चिल्लाती रूखसाना निकली। फिर करीम अपनी पत्नी और दुधमुंहे बच्चे को लेकर निकला। बड़ी अफरा तफरी मची थी। उस आग में सारा घर जल गया। जिस जसवन्त को बाहर निकालने के लिए उसके घर में आग लगाई गई थी, वह जसवन्त उसे नहीं मिला। उसे डर था कि जसवन्त को वह साथ ले गए हैं या फिर उसे मार दिया गया है। आग तेजी पकड़ने के बाद जावेद निकल गया था। जाते-जाते वह धमकी देकर गया था कि सुबह तक यह शहर छोड़ दे वरना काफिरों की सहायता करने के एवज में उसे भी मार दिया जाएगा। वह जानता था, जावेद यह कर गुजरेगा। उसके लिए परिवार कोई मायने नहीं रखता। वह उसी अफरा-तफरी में रूख्साना, करीम, उसकी पत्नी और उसके दुधमुंहे बच्चे को लेकर निकल गया। अपने परिवार के ही एक धनी सदस्य से सहायता ली। उसने भी देश की इस हालत पर दुख दर्शाया और अपनी खुद की गाड़ी में व्यवस्था करके उसे अमृतसर के लिए भेज दिया। परन्तु अमृतसर कहां पहुंच पाना था। कोई एक घंटे चलने के बाद एक खेत के पास से गुजरते समय अचानक खेत में से कुछ लोग निकलकर उन्हें घेर लिए। सभी के मुंह पर कपड़े बंधे थे। वह समझ नहीं पाया कि यह कौन हैं। वह गिड़गिड़ाते रहे पर किसी ने नहीं सुनी। हमलावर जत्थे में ही थे। उसने अपने परिवार को बचाने की कोशिश की तो पहला वार उसी पर हुआ। फिर उसके परिवार पर भी लोग टूट पड़े। होश खोते हुए उसने देखा कि अचानक कुछ लोग उन्हें बचाने आ गए हैं। बचाने वालों में सिक्ख भी थे, हिन्दू और मुसलमान भी। उसे जब होश आया वह एक शरणार्थी कैम्प में एक अस्थाई अस्पताल के बिस्तर पर था और एक चेहरा उसपर झुका हुआ है। जसवन्त का...। जसवन्त उसे होश में आते देख पागलों की मानिन्द हंसने लगा था। जसवन्त के सिर पर पट्टी बंधी हुई थी और उसकी गोद में एक बच्चा भी था। वह किसी तरह बिस्तर से उठा। उसके खुद के पेट पर एक बड़ा सा घाव था। उसे याद आया कि यहीं पर एक धारदार हथियार से उसपर वार किया गया था। वह जसवन्त से अपने परिवार और उसके बारे में पूछने लगा परन्तु जसवन्त हंसता जा रहा था। वह कुछ नहीं बता पा रहा था। उसकी आंखें बिल्कुल रिक्त थीं। कहीं कोई भाव नहीं। कोई दुख नहीं। उसने जसवन्त को जोर से पुकारा। उसका कंधा पकड़कर जोर से हिलाया। अपना नाम सुनकर जसवन्त एकाएक उठा। बच्चे को उसके बिस्तर पर रखा। दो बार बच्चों की तरह सलीम...सलीम बोला फिर अपने दोनों हाथ फैला लिए और अपने होंठ गोल करके, कमर आधा झुकाकर रेलगाड़ी की तरह सीटी मारता चारों तरफ चक्कर काटने लगा। दुख से सलीम का कलेजा फट पड़ा। जसवन्त पागल हो गया था। वह यह भी सोचकर हैरान था कि जसवन्त ने उसे कैसे तलाश किया? क्या संयोग से ही जसवन्त

आज उसके पास है? वहां एक व्यक्ति ने बताया कि वह दो दिन बाद होश में आया है। उसने अपने परिवार के बारे में जब पूछा तो वहां काम करने वालों ने बताया कि उन्होंने सिर्फ इसी पागल को बच्चे के साथ उसके पास देखा है। कुछ लोग आए थे जो तीनों को यहां छोड़ गए थे। कई दिनों बाद जसवन्त का पागलपन दूर हुआ तो उसने बताया था कि जब उसके घर में आग लगी थी तो वह किसी तरह बचकर भागने में कामयाब हो गया था। यदि वह जावेद के हाथ पड़ जाता तो उसने सलीम के परिवार को भी काट डालना था। भागते हुए वह एक जत्थे में मिल गया फिर उसे एक लारी मिल गई थी। किसी तरह हाथ जोड़कर उनके साथ वह सियालकोट के बाहर आ सका। सुबह उसे सामने से आते कुछ लोगों से खबर मिली कि जो रेलगाड़ी सियालकोट से रात को रवाना हुई थी, उसे रास्ते में नारोवाल से पहले रोक लिया गया है। लारी से बीच में ही उतरकर वह नारोवाल पहुंचा। नारोवाल के आसपास के गांवों में पुलिस की सहायता से वहां पर भी कत्लेआम किया गया है। हर तरफ लाशें ही लाशें थीं। जली हुई, कटी हुई। नारोवाल में भी रेलवे ट्रेक पर लाशों का तांता लगा था। लाशों के हिस्से अलग-अलग स्थानों पर पड़े थे। पता चला कि रेलगाड़ी अभी तक वहां भी नहीं आई है। वह वहीं रूका रहा। करीब दो घंटे बाद रेलगाड़ी आती दिखाई दी। रेलगाड़ी धीरे-धीरे चल रही थी और लगातार सीटी दे रही थी। यूं लग रहा था कि रेलगाड़ी नहीं, मौत की बग्घी आ रही हो। उसमें डाईवर को छोड़कर कोई जीवित नहीं था। जब ट्रेक पर लाशें आनी शुरू हो गईं तो ड्राईवर ने रेलगाड़ी रोक दी और नीचे उतरकर लाईन से लाशें हटाने लगा। कितनी लाशें हटाता। वह थक गया और वहीं बैठ कर रोने लगा। पर जिस रेलगाड़ी को वह अमृतसर ले जाना चाहता था उस रेलगाड़ी में था ही क्या, लाशें ही लाशें। कोई लाश पूरे शरीर के साथ नहीं थी। स्त्रियों को नंगा करके काटा गया था। पुरुषों के हाथ-पांव अलग किए गए थे। वह अपने कृपा और बहू को ढूंढता रहा। लाशों के बीच लाश के रूप में वह मिले। अन्य स्त्रियों की तरह उसकी बहू की लाश भी पूरी तरह नंगी थी। बड़ी निर्दयता से उस बेचारी के साथ बलात्कार किया गया था और फिर वीभत्सता से उसके शरीर को धारदार हथियारों से काटा गया था। कृपा का एक हाथ अलग था। बच्चों को भी पूरी निर्दयता से काट डाला गया था। उनमें से कुछेक जिन्दा थे भी तो इस स्थिति में कि उनका अब मर जाना ही बेहतर था। उसने एक-एक लाश को हटाकर अपने पोते को भी तलाशने की कोशिश की। एक औरत के कंधे पर बहुत बड़ा घाव था। वह मर चुकी थी। उसकी छातियां खुली पड़ी थीं और उसकी छातियों से ढेर सारा दूध निकलकर उसके शरीर पर बिखरा हुआ था। मरते समय उसे अपने दुधमुंहे बच्चे को दूध पिलाने की ममता उसके सीने में जज्ब नहीं हो पाई थी। वह



रोता रहा और अपने पोते को तलाश करता रहा। बहुत देर बाद वह मिला तो...।''

'सलीम मियां..।' उसकी तन्द्रा भंग हुई। जसवन्त आ गया था। उसके एक हाथ में भोजन की थाली थी और एक हाथ में पानी का लोटा।

'ले, तेरी बहू के हाथ का खाना खा ले।'-जसवन्त खुशी से भरा हुआ भीतर से आया।

'अच्छा!'- सलीम का चेहरा भी उल्लास से भर गया-'आज पहली बार उसके हाथ का खाना खाऊंगा न!'

जसवन्त ने थाली उसके सामने रख दी। थाली में चार रोटियां और आलू, गोभी की सब्जी थी।

'यह तो तेरे लिए है जसवन्ता।'-सलीम बोला।

'नहीं, यह तेरे लिए है सलीम। तू खा। आज पहली बार तू बहू के हाथ का खाना खाएगा। तुझे मेरी सौगंध, मना मत कर। तू खा और तेरी कसम तुझे खाते देख मेरा पेट भर जाएगा।'

सलीम ने थाली पकड़ ली। रोटी को हाथ में उठाया और हाथ उठाकर आसमां की तरफ देखता बोला-'खुदा, आज तेरी यह नेमत मुझे पहली बार मिल रही है। हमारे बच्चों का ख्याल रखना मौला।' फिर उसने रोटी को सूंघा और एक कौर तोड़कर सब्जी उठाकर वह कौर जसवन्त के मुंह में डाल दिया। जसवन्त ने चुपचाप मुंह खोला और खा गया।

इसके बाद सलीम रोटी खाता रहा और जसवन्त बड़े मनुहार के साथ उसे देखता रहा। बीच में सलीम ने जसवन्त को खिलाने की कोशिश की तो जसवन्त यह कहकर मना कर गया कि वह हमेशा यही खाना खाता है पर सलीम अपने खुद के हाथ की रोटी खा-खाकर बोर हो गया होगा।

खाना खाकर सलीम ने थाली खाट के नीचे रखी और लोटे से पानी पिया। फिर संतोष से भरी सांस भरता बोला-'जसवन्ता, आज आत्मा खुश हो गई। यूं लग रहा है मक्का मदीना यहीं था। फालतू वहां जाने की फिकर लिए बैठा हूं।

'काश कि तू यहीं रहता। तुझे रोज खाना बनाने की फजीहत से निजात मिल जाती।'

'अच्छा जसवन्त बता, क्या बहू मेरे बारे में जानती है?'-सलीम ने पूछा।

'पता नहीं मियां। मैंने तेरी चर्चा नहीं की। क्या पता सुलतान ने की हो।'

'सुलतान ने उसे यही बताया होगा न कि दादा का एक मुसलमान दोस्त पाकिस्तान से दादा के पीछे-पीछे यहां तक आ गया।'-सलीम ने पूछा।

'क्या पता क्या बताया होगा मियां। वह जानता ही इतना है कि तुम मेरे साथ पाकिस्तान से यहां आए हो। क्यों आए हो, क्या लेकर आए और क्या नहीं लाए, कुछ नहीं जानता। और यह तुम्हारी ही गलती है'-

एकाएक जसवन्त की आवाज ऊंची हो गई–'कि तुम मुझे उसे कुछ बताने नहीं देते।'

'धीरे बोल जसवन्ता, धीरे बोल।'–सलीम ने सरगोशी की–'सुलतान मुसलमानों से इतनी नफरत करने लगा है। अब उसे क्या बताएगा? उसका सब कुछ बदल जाएगा रे। वह न इधर का होगा न उधर का। रहने दे।'

'पर तू उसकी नफरत झेल रहा है सलीम। कोई और होता तो मैं स्वीकार कर लेता। पर तू...तू...।'

वह कुछ ओर कहता कि सलीम ने उसके मुंह पर हाथ रख दिया।बोला–'यह क्या कम है जसवन्ता कि हमारा बच्चा हमारे सामने है। इसे देख कर ही जिन्दा हैं हम दोनों। बहुत बार मन करता है कि हज करने चला जाऊं। वहीं जन्नतनशीं हो जाऊं। अपनी रूख्साना के पास पहुंच जाऊं।

फिर दोनों शान्त हो गए। दोनों के दिमाग में बहुत सी बातें उठ रही थीं।

सुल्तान आया नहीं अभी तक?'–थोड़ी देर बाद बेचैनी से सलीम ने पहलू बदलते हुए पूछा।

'आ जाएगा। चिन्ता मत करो मियां। अब वह वह बच्चा नहीं रहा, जिसे हम गोद में यहां लेकर आए थे।'

सलीम चुप रहा परन्तु उसके चेहरे से बेचैनी नहीं गई।

'सियालकोट की कोई खबर?' जसवन्त ने विषय बदलना चाहा।

'वहां रहा ही कौन अब मियां। जो थे, वह कातिल बन गए। अपने ही कातिल बन गए और कातिलों की खबर हम क्यों लें?'

'उन्होंने बहुत गलत किया था मियां। अपने ही भाई के घर को जला डाला और फिर परिवार को मार डाला।'–जसवन्त बोला।

'हां, ताकि नाम लगा सकें रामदीन का और तेरा।'

'उससे क्या तेरे परिवार के अन्य सदस्य उसे माफ कर देते?'

'उसकी तो कोशिश थी न जसवन्ता। उसे तो यह क्रोध था कि मैंने रामदीन के परिवार को छिपाकर अपने घर में रखा। फिर दूसरी रात तुझे और तेरा परिवार छिपाया। उसके पहले भी लिहाजा राम के परिवार को मैंने अपने एक दोस्त की सहायता से अमृतसर वाली गाड़ी में बैठा दिया था। उस दिन भी कुछ लोगों को वहां से भगाया। उसे यही तो क्रोध था कि जब हिन्दू यहां पर मुसलमानों को मार रहे हैं तो मैं क्यों उन्हें बचाने में लगा हूं। वह बार-बार मुझे मना कर जाता था पर उसे सुबूत नहीं मिल रहा था।'

'तुझे चाहिए था कि मेरे परिवार को नहीं बचाता। उसी के बाद जावेद का गुस्सा भड़क गया था। बेहतर होता कि मर जाने देता हमें।' जसवन्त बोला।

'तुझे कैसे मरने देता जसवन्ता। तू मेरा सच्चा याड़ी था। हमारी मुफलिसी में तेरे परिवार ने हमारे परिवार को सहारा दिया था। तेरे खेतों में काम करके हमने यह शरीर पाया। मेरे पिताजी जब हैजे से मर रहे थे, तेरे पिताजी ने अपनी सारी बचत खर्च करके उन्हें बचा लिया था। हर मौके पर मेरे लिए तू खड़ा रहा था। उस दिन तुझे कैसे यूं ही छोड़ देता?'

'पर क्या मिला तूझे? तेरा परिवार खतम हो गया। अगर मुझे रात नहीं रखता तो तेरा परिवार भी बच जाता।'

सलीम एक बार सिर झुकाए बैठा रहा फिर बोला–'जसवन्ता, जावेद हमेशा का जरायमपेशा वाला आदमी था। वह एक मुसलमान बन के बुरा नहीं था, वह इन्सान ही बुरा था। वह हमेशा से ठगी और डकैती में शामिल रहा। उसने तो घरों में आग लगाकर डाका डालना ही था। बता कि जिसने भी अन्य लोगों को मारा, क्या वह हमेशा से शरीफ आदमी रहा होगा।'

'माना...पर कुछ लोग तब हिंसक हो गए, जब उनके घर वालों को मार दिया गया।'

'हां...यह तो है जसवन्ता। उस दौर ने इन्सानों को इन्सान नहीं रहने दिया था।

'और कुछ गैरइन्सानों ने तेरा भी सब कुछ जला दिया।'

'हां, सब। जो बचा था वह कुछ और लोगों ने ले लिया। कब ले लिया, पता ही नहीं चला। मैं बेहोश रहा, पीछे से....।' सलीम की आंखों में आंसू निकल आए।

'काश कि उस रेलगाड़ी में मैं भी चढ़ सका होता...।'–जसवन्त ने कहना चाहा।

'तो तू भी काट डाला जाता।' सलीम आहत होकर बोला।

'वही ठीक रहता मियां। कृपा की आधी कटी लाश देखने को नहीं मिलती। बहू की नंगी लाश, जिस पर तलवार के दसियों वार थे, उसे नहीं देखना पड़ता।'

'क्या पता, हो सकता था कि यह सब तेरे सामने ही होता। तू रेलगाड़ी पर नहीं चढ़ सका तभी तो आज जिन्दा है। वरना कहां तेरे परिवार को संभाल पाता।'

'यह तेरा परिवार है।'–जसवन्त लगभग गुस्से में चीख पड़ा।

'चुपकर।' सलीम एकदम से बोला।

'क्या चुपकर, बार-बार चुप कराता है। न बोलने देता है न मरने। इस अमानत को संभालते-संभालते और भी बूढ़ा हो गया हूं। तू वहां अकेला बैठा है। अपनी आंखों के आगे अपनी औलाद को औलाद नहीं कह पाता। मैं सारा दिन सोचता हुआ पागल हो जाता हूं कि कैसे झेल रहा है यह सब। एक बार बता लेने दे सलीम, फिर सब ठीक हो जाएगा।'

'नहीं जसवन्ता नहीं, सलीम कांप उठा–'रहने दे मेरे यार। अब कुछ और दिन जिन्दा हैं हम। फिर सब ठीक हो जाएगा।'

'अरे अब झगड़े खतम हो गए। हमारे सुलतान को अब कोई खतरा नहीं। अब तो साफ हो जाने सब कुछ।'–जसवन्त मानो गिड़गिड़ा रहा था।

'नहीं जसवन्ता। मत कर। अभी भी नफरत मरी नहीं है। अभी भी हिन्दुओं को मुसलमान से खतरा है और मुसलमान को हिन्दुओं से। अभी भी हम इन्सान नहीं बने हैं रे।'

'काश कि उसी समय हम सबको हकीकत बता देते।'–बेचैनी से सिर झटकता जसवन्त कहे जा रहा था।

'उस समय यदि लोगों को हकीकत बता देता तो आज सुलतान जिन्दा नहीं बचता। आदमी के बदले आदमी काटे जा रहे थे जसवन्त। सुलतान तो बहुत छोटा था। मुसलमानों ने हिन्दुओं को काटा था, यहां हिन्दू उससे बदला ले लेते। उसे बचाने के लिए इसे तेरा नाम देना जरूरी था रे।' अब सलीम भी बातों के प्रवाह में आ चुका था।

'पर यह तेरे करीम की निशानी है। कब तक मेरे कृपा का बना रहेगा यह?'

'अब यह कृपा का ही है, करीम का नहीं। फिर...'–कहते हुए सलीम बड़ी संतोषप्रद हंसी हंसा–'करीम और कृपा में फर्क ही क्या है मियां? जो है, जैसा है, वैसा रहने दे। वैसे भी जब मुझे होश आया तो तेरी गोद में यह था। मुझे तो पता ही नहीं था कि यह करीम का है या कृपा का।'

'कृपा का तो वहीं खतम हो गया था। लाशों के बीच में वह भी आंख मुंदे हमेशा के लिए सो रहा था।'–जसवन्त की आवाज फट गई।

वह कुछ और कहते कि अचानक उनकी बात के बीच में व्यवधान पड़ा। दूर कहीं शोर सा मचा और जोर से चिल्लाने की आवाज आई। दोनों दोस्तों का कलेजा जोरों से धड़क उठा।

'बहुत अंधेरा है जसवन्त, डर लग रहा है। मैं चलूं।'–सलीम की आवाज कांपी।

दंगे की आशंका से जसवन्त का भी दिल कांप रहा था। दोनों दोस्तों को मौत का डर नहीं था। उन्हें दंगे का डर था। जो नफरत और हिंसा उन्होंने देखी थी, उससे उनके दिलों में खौफ सदा के लिए छा गया

था जो किसी आदमी के चिल्लाने या सामान के टूटने की आवाज से भी उभर पड़ता था।

'डर मत। मैं हूं न।'-जसवन्त बोला परन्तु तभी उनके सामने अंधेरे में एक आकृति आ खड़ी हुई। उसके हाथ में कुछ था। दोनों की चीख निकल गई। सलीम एकदम से चीखता सा बोला-'जसवन्ता भाग।' और तेजी से मंजी से खड़ा होने लगा। तुरन्त उसका पांव फिसला और दुकान के दरवाजे से उसका सिर टकराया और एक कराह के साथ उसका बूढ़ा शरीर जमीन पर जोरों से गिरा। घबराकर जसवन्त भी उठा था पर वह लड़खड़ा कर मंजी पर ही गिर गया।

'कौन है?'-जसवन्त कांपते स्वर में पूछ बैठा।

'यह मैं हूं दादा, घबराओ मत। अरे इन्हें क्या हो गया?' सुलतान ने अपने दादा के लिए खरीद लाई हुई नई छड़ी वहीं पटकी और तुरन्त सलीम के शरीर को उठाने लपका। सुलतान को सामने देख जसवन्त और भी डर गया था। उसकी इस आशंका ने एकाएक डर से भी बड़ा रूप ले लिया था कि कहीं सुलतान ने उनकी बात न सुन ली हो। इस नीरवता में दुकान के अंधेरे कोने में दोनों पुराने दोस्त अपनी पुरानी यादों में डूबकर इतने लापरवाह हो गए थे कि उन्हें पता ही नहीं चला कि कोई उनके आस-पास है या नहीं।

'स...'-सलीम का नाम बोलते बोलते रह गया जसवन्त-'हे खुदा इसे क्या हो गया?'

तब तक सुलतान सलीम के शरीर को जमीन से उठा चुका था। जसवन्त ने देखा कि सलीम के शरीर में कोई हलचल नहीं है।

'सुलतान, बेटा अभी नाराज न होना। इसे देख क्या हुआ है?' जसवन्त का कलेजा कांप रहा था।

'दादा, माचिस जलाओ, जल्दी।'-सुलतान सलीम को उसी मंजी पर लिटाता बोला।

कांपते हाथों से जसवन्त ने दुकान से ही एक माचिस उठाई और किसी तरह जलाया। माचिस की रोशनी में दोनों ने देखा कि सलीम के माथे से खून बह रहा है और वह बेहोश है।'

'हे भगवान, सलीम को बहुत चोट लगी है। इसे क्या हो गया है? सुलतान देख इसे क्या हो गया है बेटा? जल्दी कर।'-जसवन्त रोने लगा।

'पानी लाओ। जल्दी करो।' सुलतान बोला और फिर बिना इन्तजार किया भागता सा खुद घर में गया और दरवाजे को धक्का देता घर से खुद पानी ले आया। जसवन्त किंकर्तव्यविमूढ़ सा सुलतान को तो कभी सलीम के शरीर को देखता रहा। उसके समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे। उसका दिल धाड़-धाड़ करके बज रहा था। सुलतान ने सलीम के चेहरे पर पानी डाला परन्तु कोई हरकत नहीं देख सलीम का शरीर अपने कंधे पर उठा लिया और भागता सा बस्ती के भीतर घुसता चला गया। तब तक पीछे से उसकी पत्नी भी आ गई थी। जसवन्त और वह सुलतान के पीछे लपके। सुलतान सलीम का शरीर कंधे पर उठाए उठाए तेजी से बस्ती के भीतर जा रहा था। शोर की आवाजें तब तक दूर हो गई थीं। जसवन्त अपने घुटनों के दर्द को भूलकर सुलतान के साथ चलने की पूरजोर कोशिश कर रहा था। लगभग पांच ही मिनट बाद सुलतान एक घर के आगे रूक गया और तेजी से दरवाजा खटखटाने लगा। यह एक डाक्टर का मकान था, जिसे जसवन्त भी जानता था। उस डाक्टर ने तुरन्त ही सलीम को बिस्तर पर लिटाया और पहले ब्लडप्रेशर नापा। फिर सलीम के चेहरे पर पानी के छींटे मारे। इतने में सलीम के मुंह से कराह की आवाजें निकलने लग गई थीं और आंखें हल्की सी खुलने लग गई थीं। यह देख जसवन्त की जान में जान आई। डाक्टर ने फटाफट दो-तीन इंजेक्शन भी सलीम के लगा दिए। थोड़ी देर बाद सलीम पूरी तरह होश में था। उसने देखा कि सुलतान उसकी पत्नी और जसवन्त तीनों घबराए से उसके पास खड़े हैं। उसके भी चेहरे पर आशंका छा गई। खुदाया, सुलतान ने उसे जसवन्त के साथ देख लिया है, क्या सोचता होगा? उसे अभी तक यह पता नहीं था कि जो साया अंधेरे में उभरा था, वह सुलतान का ही था।

उसने बिस्तर से उठने की कोशिश की।

'दादा, आप उठो मत। लेटे रहो।'-जसवन्त कुछ कहता उससे पहले सुलतान बोल उठा। उसकी आवाज में हल्की सी भर्राहट भी थी।

सलीम ने जसवन्त की तरफदेखा। जसवन्त के चेहरे पर भी असमंजस दिख रहा था। सुलतान वर्षों बाद सलीम को दादा कह रहा था।

सलीम ने एक बार आंखें मींच लीं। फिर आंखें खोल सुलतान की तरफ देखता बोला-'सुलतान बेटा, माफकरना। आज रहा नहीं गया। पुराने दोस्त से मिलने आ गया था...अब तुम जाओ।' कहकर उसने बड़े अरमान से अपनी बहू की तरफ देखा और फिर उठने की कोशिश करने लगा। आज पहली बार इतने नजदीक से वह अपनी बहू को देख रहा था। ज्यों ही वह उठा उसके माथे में एक तेज पीड़ा उभरी और उसके मुंह से फिर कराह निकल गई।

'आप लेटे रहो।'-सुलतान बोला-'आपको अभी उठने की जरूरत नहीं है।'

'बेटे, जाना तो है ही। नाहक तुम्हें और बहू को तकलीफ दे दी।'-कहकर सलीम ने फिर अपनी बहू के चेहरे की तरफदेखा।

'कहीं नहीं जाना दादा। आप ठीक हो जाओ तब सोचेंगे। अभी आप आराम करो। और अधिक बोलो मत। खून बहुत निकला है माथे से।'- सुलतान बोला तो उसकी आवाज में भारीपन था।

सलीम के साथ सुलतान को इतने प्यार से बोलते देख जसवन्त की आंखें भीग गईं। अचानक सुलतान पलंग पर ही बैठ गया और उसने सलीम का हाथ अपने हाथ में ले लिया।

'आप अपने दोस्त से मिलने दंगे में भी आए थे?'-उसने सलीम से पूछा।

सलीम ने अपनी भावुकता को दबाते हुए कहा-'हां, क्या करता बेटा। हम दोनों ही दंगे के मारे इन्सान हैं न। सोचा तेरा दादा अकेला होगा, संभाल आऊं।'

दंगे की चिन्ता मत करो दादा। सुलतान बोला-'अब दंगे खतम हो गए हैं। अब आप हमारे ही साथ रहो।'

सलीम का चेहरा आश्चर्य और खुशी से भर उठा। जसवन्त तेजी से उठकर कमरे से बाहर निकलकर खड़ा हो गया और हिचकियों के साथ हौले-हौले रोने लगा। दो मिनट बाद जब वह भीतर आया तो डाक्टर के साथ सुलतान भीतर खड़ा होकर दवा की बात कर रहा था। बहू एक गीले कपड़े से सलीम के माथे का घाव साफकर रही थी। सलीम के चेहरे पर संतोष का नूर उतरा हुआ था। खुशी की अधिकता से उसका चेहरा बार-बार कांप रहा था।

जसवन्त सलीम के पास आया। सलीम ने उसकी आंखों को पढ़ लिया। जसवन्त ने सलीम का हाथ अपने हाथ में लिया और बोला-'हां मियां, दंगे अब खतम हो गए। अब कोई विभाजन नहीं होगा।'

'हां, और जो हुआ, वह हमें भूलना ही होगा।'-सलीम बोला।

'हां, जिसने जो किया, उसे माफ करना होगा।'-जसवन्त भर्राए गले से बोला।

'मैं मुसलमानों की तरफ से माफी मांगता हूं, जसवन्ता।'-सलीम ने जसवन्त का हाथ भींच लिया।

'और मैं हिन्दुओं की तरफ से।'-जसवन्त ने भी उतनी ही ताकत से सलीम का हाथ पकड़ रखा था।

दोनों की आंखों से आंसू निकलकर एक-दूसरे का हाथ भिगो रहे थे। उनकी बहू अपने दोनों ससुर को हैरानी से देख रही थी।

सम्पर्क-98965 61712

•

भारत विभाजन के उत्तरदायी

असगर अली इंजीनियर, अनु. डा. सुभाष चंद्र

साम्प्रदायिक सवाल मुख्यत: सत्ता में हिस्सेदारी से जुड़ा था, चूंकि सत्ता में हिस्सेदारी के सवाल का आखिर तक कोई संतोषजनक हल नहीं निकला और अंतत: देश का विभाजन हो गया। यहां तक कि जिन्ना के चौदह सूत्री मांग पत्र, जो उन्होंने 1929 के प्रारंभ में ही (नेहरू रिपोर्ट विवाद के बाद) तैयार कर लिया था और जो मुस्लिम लीग के लिए महत्वपूर्ण बन गया था, में भी मुसलमानों की धार्मिक आजादी के बारे में कुछ विशेष नहीं था। मुख्यत: यह धर्मनिरपेक्ष मांगों से संबंधित था। यह विधान-मंडलों में मुसलमानों के प्रभावी प्रतिनिधित्व, बाम्बे प्रांत से सिंध का अलगाव, अलग चुनाव क्षेत्र जारी रखने आदि से संबंधित था।[1] यदि कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों पार्टियां इसका संतोषजनक हल निकाल लेतीं तो शायद हमारे देश के विभाजन का सवाल ही नहीं उठता।

नेहरू रिपोर्ट इस मामले में मुख्य पड़ाव है। मुसलमानों के एक वर्ग ने मुख्य मांग उठाई कि केंद्रीय विधानमंडलों में वे एक-तिहाई प्रतिनिधित्व इसलिए चाहते थे ताकि बहुसंख्यक हिन्दू अल्पसंख्यक मुसलमानों के खिलाफ कोई कानून न बना सकें। 20 मार्च, 1927 को, दिल्ली में, जिन्ना की अध्यक्षता में प्रमुख मुस्लिम नेताओं की बैठक हुई। इसमें सर्वसम्मति से निर्णय लिया कि यदि निम्न सुझाव मान लिए जाएं तो मुसलमान अलग निर्वाचन क्षेत्र की मांग छोड़ देंगे-'(1) सिन्ध को बाम्बे प्रांत से अलग करके एक अलग राज्य बनाया जाए, (2) उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रांतों और बलूचिस्तान में भारत के अन्य प्रांतों की तरह सुधार किए जाएं। (3) पंजाब और बंगाल में आबादी के अनुपात में प्रतिनिधित्व दिया जाए। (4) केंद्रीय विधान मंडल में एक-तिहाई से उपरोक्त ढंग से गठित व उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रांतों में जहां हिन्दू अल्पसंख्यक है, उनको वही रियायतें होंगी जो हिन्दू बहुल प्रांतों में मुसलमानों को देने के लिए तैयार होंगे।'[2] जिन्ना ने मुस्लिम दृष्टिकोण इन शब्दों में व्यक्त किया, 'मुसलमानों को महसूस न हो कि कहीं बहुसंख्यक समुदाय अल्पसंख्यकों को दबाने और उनसे निर्दयता का व्यवहार न करने लगे जैसा कि दूसरे कई देशों की बहुसंख्यक जनता की प्रवृत्ति रहती है।'[3]

काफी हद तक यह देश के विभाजन का कारण बना। धर्म या धार्मिक आजादी नहीं थी, बल्कि सत्ता में हिस्सेदारी व आजाद भारत में मुसलमानों का उचित ध्यान रखने की गारंटी वास्तविक विवाद थी। हालांकि मुस्लिम जनता प्रतिनिधित्व आदि के इन सवालों के लिए चिंतित नहीं थी और केवल पढ़े-लिखे मुसलमान ही ये गारंटी चाहते थे। जिन्ना के 14 सूत्रों में गरीब और अनपढ़ मुसलमान जनता के लिए कुछ नहीं था। कोई आश्चर्य की बात नहीं कि जिन्ना जैसे आधुनिक शिक्षा प्राप्त किए हुए मुसलमानों ने ही पाकिस्तान-आंदोलन का नेतृत्व किया न कि धार्मिक मामलों के विद्वान मौलाना अहमद मदनी जैसों ने या धार्मिक नेताओं में उच्च स्थान रखने वाले अबुल कलाम आजाद जैसे लोगों ने, बल्कि ये तो पाकिस्तान के विचार के ही विरुद्ध थे।

ध्यान देने योग्य है कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी का दिल्ली में मुसलमान नेताओं द्वारा तैयार की गई मांगों के प्रति नकारात्मक रुख नहीं था। कांग्रेस कार्यकारिणी ने संयुक्त मतदाता सूची के स्वीकार करने के लिए मुस्लिम नेताओं की सराहना की। अखिल भारतीय कमेटी ने 15 मई, 1927 को बम्बई में होने वाले अधिवेशन में प्रस्तुत करने के लिए हिन्दू-मुस्लिम सवाल पर लंबा प्रस्ताव पारित किया। यह उल्लेखनीय है कि इसने मुसलमानों के समस्त सुझाव मान लिए। अखिल भारतीय केंद्रीय कमेटी ने थोड़ा सुधार करके इस प्रस्ताव को सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया।[4]

दिसम्बर, 1927 के मद्रास अधिवेशन में कांग्रेस ने मुसलमानों को पूरा आश्वासन दे दिया कि उनके जायज हितों की रक्षा की जाएगी....संयुक्त मतदाता सूची में आबादी के आधार पर प्रत्येक प्रांत व केंद्रीय विधानमंडल में सीटें आरक्षित की जाएंगी....। सिन्ध, उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रांत और ब्लूचिस्तान से संबंधित अन्य मुस्लिम सुझावों को भी इसमें स्वीकार कर लिया गया।[5]

मद्रास अधिवेशन में पारित प्रस्ताव पर बोलते हुए कांग्रेसी नेता गोविन्द वल्लभ पंत ने प्रस्ताव के बारे में कहा, 'सबसे अच्छा सबसे सही इंतजाम जिसे दोनों समुदायों से भारी समर्थन मिला।' उन्होंने यहां तक कहा कि प्रस्ताव पर एम.आर. जयकर और मदन मोहन मालवीय जैसे हिन्दू महासभा के नेताओं की भी पूरी सहमति थी।[6]

हालांकि जल्दी ही हिन्दू और मुसलमान दोनों की ओर से समस्याएं खड़ी हुई। मुहम्मद शफी के नेतृत्व में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के विरोधी गुट ने अलग मतदाता सूची त्यागने से मना कर दिया और जिन्ना को इस महत्वपूर्ण सवाल पर हिन्दुओं से समझौता करने का दोषी करार दिया। हिन्दू महासभा ने भी किसी भी प्रांत में किसी भी समुदाय के लिए आरक्षण के सिद्धांत को रद्द कर दिया, इसने संयुक्त मतदाता सूची मानने के एवज में नए मुस्लिम प्रांत के गठन का कड़ा विरोध किया। इसने नए राज्य निर्माण की अपेक्षा मतदाता सूची को छोटी बुराई माना।[7] इस तरह साम्प्रदायिक समस्याएं पैदा करने के लिए दोनों तरफ से साम्प्रदायिक लोग जिम्मेदार थे। जिन्ना के विचार तर्कसंगत थे और वे कहीं भी विभाजन के नजदीक की बात नहीं कर रहे थे। दूसरी ओर उन्होंने मुसलमान नेताओं को संयुक्त मतदाता सूची स्वीकार करने के लिए राजी किया। अपने एक भाषण में समझौते के संकेत दिए। ये साम्प्रदायिक सद्भाव के प्रबल इच्छुक नेता की आवाज प्रतीत होती है-

'हमारी तरक्की के लिए जरूरी है कि हिन्दू-मुस्लिम की समस्या सुलझाई जाए, हमारे जैसे विशाल देश के समस्त समुदाय मैत्री एवं भाईचारे की भावना से

रहें। कोई देश किसी एक समुदाय का प्रभुत्व बनाकर और अल्पसंख्यकों को सुरक्षा की गारंटी दिए बिना लोकतांत्रिक संविधान और जनतांत्रिक प्रतिनिधिक संस्थाएं स्थापित करने में सफल नहीं हुआ है, जहां भी ऐसी समस्या पैदा हुई है। जब तक वैधानिक प्रावधानों के तहत स्पष्ट व पूर्ण रूप से अल्पसंख्यकों के हितों और अधिकारों की रक्षा न की जाए तो अल्पसंख्यक पूर्वाग्रही हो सकते हैं कि बहुसंख्यक सम्प्रदाय अत्याचारी एवं उत्पीड़नकारी बन सकता है और यह भय और भी बढ़ जाता है जब हमारा वास्ता बहुसंख्यक साम्प्रदायिकता से पड़ता है।'[8]

एकता बनाए रखने के लिए तेज बहादुर सप्रू ने केंद्रीय विधानमंडल में सीटें आरक्षण के लिए जिन्ना की मांग का समर्थन किया। उन्होंने इस मांग के बारे में कहा, 'यह नेहरू रिपोर्ट की विरोधी नहीं है।' उन्होंने अपने प्रतिनिधि साथियों से कहा, 'समस्या को सुलझाने के लिए हमें कुशल राजनीतिज्ञ की तरह व्यवहार करना चाहिए और अंकगणितीय आंकड़ों से भ्रमित नहीं होना चाहिए।'[9]

बहस का उत्तर देते हुए आजादी हासिल करने के लिए जिन्ना ने पुन: हिन्दू-मुस्लिम एकता पर जोर दिया। उन्होंने कहा-

'....यदि आप इस प्रश्न को आज नहीं सुलझाते, तो हमें इसे कल सुलझाना पड़ेगा, लेकिन इस दौरान हमारे राष्ट्रीय हितों को नुक्सान पहुंचेगा। हम सब इस धरती के पुत्र हैं। हमें मिलकर रहना है। हमें मिलकर काम करना और अपने मतभेदों को हर हालत में दूर करना है, न कि अधिक बिगाड़ना है। यदि हम एकमत नहीं होते तो कम से कम हम इस बात से सहमत हों कि मत वैभिन्न्य हो सकता है और हम दोस्तों की तरह विदा हों (सम्मेलन से-अनु.)। मुझ पर विश्वास करो, मैं एक बार फिर दोहराता हूं कि जब तक हिन्दुओं और मुसलमानों में एकता नहीं होती तो भारत कोई तरक्की नहीं कर सकता। हमारे समझौते में कोई तर्क, विचार या कोई और अड़चन न आए। हिन्दुओं और मुसलमानों में एकता देखने से अधिक खुशी मुझे किसी चीज में नहीं मिलेगी।'[10]

इस तरह यह सामने आता है कि 1928 तक जिन्ना हिन्दू-मुस्लिम एकता के हामी थे और कांग्रेस के काफी नेता उनके विचारों का अनुमोदन करते थे। नेहरू रिपोर्ट की असफलता की जिम्मेदार हिन्दू-महासभा थी। एसोसियेटिडड प्रैस से साक्षात्कार में कहा, 'सम्मेलन में जयकर के भाषण ने नेहरू रिपोर्ट की नियति पर मुहर लगा दी थी।'[11] एम.सी. छगला ने नेहरू रिपोर्ट पर बातचीत असफल हो जाने पर निम्न बयान जारी किया-

'मैं विशेष रूप से रेखांकित करना चाहता हूं कि मुस्लिम लीग ने सम्मेलन में जो प्रतिनिधि भेजे, वे अत्याधुनिक विचारों के मुसलमान थे, जिनमें से अधिकतर ने पहले ही नेहरू रिपोर्ट पर सहमति दे दी थी और राष्ट्रीय हितों के लिए उनमें से कई अपने ही साथियों से लड़े हैं और संगठन से अलग हो गए हैं....यदि इन प्रतिनिधियों को साम्प्रदायिक करार दिया जाए तो शायद पूरे देश में एक भी राष्ट्रवादी मुसलमान नहीं है। मैं अभी भी आशा करता हूं कि सम्मेलन समापन से पहले लीग की मांगे स्वीकार करने का कोई रास्ता जरूर निकल आएगा। जिस प्रकार मुस्लिम लीग ने संघर्ष किया है और शफी गुट को बाहर निकाल दिया है, उसी प्रकार हर प्रावधान में मुसलमानों द्वारा दिए गए सुझावों, सुधारों और सलाहों पर हर बार सम्मेलन छोड़ने की धमकी देने वाली गूंजों और जयकार से भी निबटना चाहिए।'[12]

हालांकि सम्मेलन इस मुद्दे को सुलझा नहीं सका और इस कारण जिन्ना के रवैये में बदलाव हुआ, अब वे सोचते थे कि मुसलमानों को एक संस्था के रूप में कांग्रेस के प्रति अपने रुख पर पुनर्विचार करना चाहिए। वे इस विचार से सहमत हो गए कि मुसलमानों के बिखराव के कारण ही एक बार उनकी मांग अस्वीकार करके कांग्रेस उन्हें नजरअंदाज कर रही है। इस प्रकार नेहरू रिपोर्ट साम्प्रदायिक सवाल और कांग्रेस के प्रति जिन्ना के रवैये में बदलाव बिन्दू थी। इसके बाद उन्होंने कड़ा रुख अपनाना शुरू किया। तीस के दशक के आरंभ में लंदन में दो गोलमेज कांफ्रेंसों में उनका रवैया इसका प्रमाण है। अभी तक पाकिस्तान के विचार का जन्म नहीं हुआ था और जिन्ना साम्प्रदायिक समस्या को विभिन्न प्रांतों के विधानमंडल और संसद में मुस्लिम प्रतिनिधित्व के रूप में सुलझाना चाहते थे। गोलमेल कांफ्रेंस सफल नहीं हुई और अंतत: अंग्रेजों ने 1935 के संविधान में अपनी योजना के तहत मुसलमानों को संसद में एक-तिहाई प्रतिनिधित्व देने की घोषणा की। नेहरू रिपोर्ट की असफलता के बाद के घटनाक्रम से जिन्ना इतने हताश हुए कि वे भारत छोड़कर लंदन में बस गए और वहां वकालत शुरू कर दी।

जिन्ना के दृष्टिकोण में दूसरा मोड़ 1937 के चुनावों और कांग्रेस द्वारा मुस्लिम लीग के दो मंत्री लेने से इंकार करने पर आया। हालांकि दोनों के बीच औपचारिक या अनौपचारिक कोई समझौता नहीं था, लेकिन चुनावों के दौरान दोनों में कोई टकराव नहीं था। वास्तव में काफी जगह कांग्रेस और मुस्लिम लीग ने एक-दूसरे के उम्मीदवारों को समर्थन दिया और उम्मीद थी कि कांग्रेस लीग के प्रतिनिधियों को कैबिनेट में शामिल करेगी। 1937 के चुनाव अभियान के जिन्ना के भाषणों में भी हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रति चिंता झलकती है। जनवरी, 1937 को नागपुर में अपने भाषण में उन्होंने कहा-

'हिन्दुओं और मुसलमानों को एक सांझे मंच पर आना चाहिए। अपने प्रदेश के कल्याण और मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए उन्हें इकट्ठे रहना और इकट्ठे काम करना चाहिए....यह (लीग) स्वतंत्र और प्रगतिशील आदर्शों के लिए कटिबद्ध है। उसकी नए विधानमंडल में सर्वोत्तम प्रतिनिधि भेजने की इच्छा है, जो प्रगतिशील समूहों के साथ मिलकर मातृभूमि की स्वतंत्रता और विकास के लिए काम करें। मुसलमानों व सहयोगी समुदायों को सलाह है कि वे उत्तम चरित्र-निर्माण करें और स्वतंत्रता के रास्ते में आड़े आने वाले तत्वों को निकाल बाहर करें।'[13]

जिन्ना के इस भाषण से स्पष्ट है

यह कहना तर्कसंगत नहीं होगा कि भारत के सभी मुसलमान पाकिस्तान निर्माण के जिम्मेदार थे। उत्तरप्रदेश और बिहार जैसे मुस्लिम अल्पसंख्यक राज्यों का पढ़ा-लिखा अभिजात वर्ग तो अपने विशेषाधिकारों के छिनने के डर से पाकिस्तान के प्रति लालायित था, लेकिन मुस्लिम बहुल प्रांतों का पढ़ा-लिखा अभिजात वर्ग भी इसे लेकर उत्सुक नहीं था।

कि 1937 तक वे हिन्दू-मुस्लिम एकता और भारतीय मातृभूमि की बात करते थे और मातृभूमि के विकास एवं तरक्की के लिए दोनों समुदायों को मिलकर काम करने की बात करते थे, लेकिन बाद के घटनाक्रम से कांग्रेस और हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रति उनके दृष्टिकोण में मूलभूत बदलाव आया। कुछ लोगों का कहना है कि यदि कांग्रेस उत्तरप्रदेश में मुस्लिम लीग के दो मंत्रियों को कैबिनेट में शामिल करती, तो यह हिन्दू-मुस्लिम एकता के हित में होता। लेकिन कांग्रेस पर ऐसा करने का कोई बंधन नहीं था। दूसरी और रफी अहमद किदवई जैसे राष्ट्रवादी मुसलमान कांग्रेस-मुस्लिम लीग गठबंधन को निरस्त करने वालों में थे। 28 मार्च, 1937 को बाराबंकी से उन्होंने पंडित नेहरू को लिखा : 'मेरा मानना है कि यदि कांग्रेस कभी मुस्लिम लीग से समझौता या गठबंधन करने की सोचती है तो यह भारतीय मुसलमानों के प्रति अपने कर्त्तव्य को नहीं निभा रही होगी....किसी व्यक्ति विशेष की सुविधा के लिए कांग्रेस सिर्फ उत्तर प्रदेश में अलग पैमाना नहीं अपना सकती।'[14]

नेहरू मुस्लिम लीग के दो मंत्रियों को न लेने के लिए राष्ट्रवादी मुसलमानों के दबाव में थे। यह कहना गलत होगा कि कांग्रेस किसी औपचारिक समझौते से पीछे हटी। 21 जुलाई 1937 को नेहरू द्वारा राजेंद्र प्रसाद को लिखे पत्र से यह काफी स्पष्ट है। वह लिखते हैं कि 'उत्तरप्रदेश के आम चुनावों में कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच अधिक विरोध नहीं था.... उत्तर प्रदेश के आम चुनावों में कांग्रेस और लीग में कोई समझौता नहीं था, लेकिन एक सहमति-सी बन गई थी....कार्यकारिणी की बैठक से कुछ समय पहले उत्तरप्रदेश मुस्लिम लीग के नेता खालिक जामन और नवाब इस्माइल खान ने कांग्रेस से सम्पर्क किया था...स्वाभाविक तौर पर इसका कुछ संबंध मंत्रीपद की संभावना से था...जब मौलाना अबुल कलाम आजाद वर्धा से लखनऊ पहुंचे तो वे खालिक से मिले, जिसने उन्हें बताया कि - उनको और उत्तरप्रदेश बोर्ड के अध्यक्ष नवाब इस्माइल खान - दो को मंत्रीमंडल में शामिल करने के बदले उन्हें खाली चैक (सीटों के बारे में-अनु.) देने के लिए तैयार हैं। मौलाना ने इस स्थिति को संदेह की नजर से देखा, लेकिन पूरी मुस्लिम लीग का एक संगठन के रूप में अस्तित्व समाप्त होने और इसके कांग्रेस में आत्मसात की संभावना ने उनको आकर्षित किया। हम इन व्यक्तियों को लेना नापसंद करते थे, जो कांग्रेस के दृष्टिकोण से कमजोर थे। हमें आम कांग्रेसियों की प्रतिक्रिया का डर था।'[15]

इस प्रकार इस बहस के दो पहलू थे। मुस्लिम लीग के दो मंत्रियों को शामिल करने में - दोनों पार्टियों के बीच मधुर संबंध और हिन्दू-मुस्लिम एकता बढ़ने की संभावना थी। लेकिन कांग्रेस ने पार्टी में भी इसके प्रभावों को देखना था। इसे अनदेखा नहीं किया जा सकता था।

हालांकि मंत्रीमंडल में शामिल न किए जाने से कड़वाहट बढ़ी और लीग ने जोर-शोर से कांग्रेस-विरोधी अभियान छेड़ दिया। लेकिन लीग द्वारा लगाए गए अधिकतर आरोप झूठे थे। मौलाना आजाद ने कहा, 'मुस्लिम लीग का कांग्रेस के विरुद्ध मुख्य प्रचार यह था कि यह केवल नाम से ही राष्ट्रीय है। कांग्रेस को सामान्य तौर पर बदनाम करने से ही संतुष्ट नहीं हुई, बल्कि लीग ने कांग्रेस के मंत्रियों द्वारा अल्पसंख्यकों पर अत्याचार के आरोप भी मढ़े। इसने एक समिति गठित की, जिसने मुसलमानों और अन्य अल्पसंख्यकों के प्रति हर तरह के भेदभावपूर्ण व्यवहार के आरोप लगाए। मैं अपनी जानकारी के आधार पर कह सकता हूं कि ये आरोप पूर्णतः बेबुनियाद थे। वायसराय और विभिन्न प्रांतों के गवर्नरों का भी यही विचार था। इसलिए लीग द्वारा तैयार की गई रिपोर्ट को संवेदनशील लोगों में कोई मान्यता नहीं मिली।'[16]

अब मुस्लिम लीग का सरोकार लगाए गए आरोपों की सत्यता के प्रति नहीं, बल्कि मुसलमानों में कांग्रेस के खिलाफ भारी प्रचार से था। केवल इसलिए नहीं कि कांग्रेस ने इनको नीचा दिखाया था, बल्कि इसलिए भी कि वह अभी तक अभिजात वर्ग की राजनीति में विश्वास करती थी। चुनाव-परिणामों ने इसकी आंखें खोल दी। 1937 के चुनावों में इसकी करारा हार हुई, उसने 482 सीटों पर चुनाव लड़ा, जिसमें से केवल 109 सीटें ही जीत पाई। इसके साथ ही, मुस्लिम बहुल चार प्रांतों में से किसी भी प्रांत में बहुमत हासिल नहीं कर पाई।[17] 'मुसलमानों की एकमात्र प्रतिनिधि होने का दावा करने वाली पार्टी के लिए यह करारा झटका था। लीग चुनाव परिणामों से चिंतित थी और अब मुसलमानों को रिझाना चाहती थी। यह 'हिन्दू' कांग्रेस का 'मुसलमानों के प्रति भेदभाव' का भूत खड़ा करके किया जा सकता था। जिन्ना एक कुशल कूटनीतिज्ञ था, उसने मुसलमानों में 'हिन्दू' कांग्रेस के प्रति दुर्भावना पैदा करने के लिए हरसंभव चाल चली। इस दुष्प्रचार ने मुसलमानों को, विशेषकर पढ़े-लिखे मुसलमानों को कांग्रेस से दूर किया।

यहां पुनः इस पर जोर देना जरूरी है, जैसा कि 1937 के चुनावों ने भी दर्शा दिया कि मुस्लिम लीग का आम मुसलमानों में कभी लोकप्रिय आधार नहीं रहा। शिक्षित बुद्धिजीवी वर्ग में भी इसकी अधिकतर स्वीकार्यता केवल उर्दू-भाषी राज्यों जैसे उत्तरप्रदेश और बिहार के अल्पसंख्यक मुसलमानों में और कुछ हद तक बाम्बे प्रांत में ही थी, जबकि दक्षिण भारत के मुस्लिम अल्पसंख्यक प्रांतों में इसका कोई आधार नहीं था। जिन्ना को अपने और पार्टी के सीमित व संकीर्ण आधार का अहसास हुआ, इसलिए उन्होंने मुस्लिम जनता का विश्वास जीतने के लिए नए-नए तरीके अपनाने शुरू किए, लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली। कांग्रेस के पास आर्थिक कार्यक्रम था, जो बहुत क्रांतिकारी तो नहीं था, लेकिन फिर भी इसने भारतीय जनमानस को आकर्षित किया। लीग के पास ऐसा कोई कार्यक्रम नहीं था। जब उल्लेखनीय उर्दू शायर इकबाल ने जिन्ना को मुसलमान जनता विशेषकर पंजाब से गरीबी दूर करने के लिए आर्थिक कार्यक्रम को प्राथमिकता देने के लिए लिखा तो उनसे पंजाब मुस्लिम लीग की अध्यक्षता छीन ली गई। जिन्ना को अब मुसलमानों के शक्ति सम्पन्न वर्गों-जागीरदारों, ताल्लुकेदारों और व्यापारियों का समर्थन हासिल था, इन वर्गों के नाराज हो जाने के डर से वे कोई क्रांतिकारी आर्थिक कार्यक्रम बनाने से बचते रहे। मुस्लिम लीग का मुस्लिम-समाज में अत्यधिक सीमित आधार था। गरीब जनता इसकी ओर कभी आकर्षित नहीं हुई। इस तरह जब 23 मार्च, 1940 को लाहौर में पाकिस्तान प्रस्ताव पारित हुआ तो मुसलमानों ने कोई जोश नहीं दिखाया। दूसरी ओर हजारों अंसारी (जुलाहा) मुसलमानों ने दिल्ली में दो-तीन महीने बाद इसके विरुद्ध प्रदर्शन किया।

उस समय सबको वोट का अधिकार नहीं था। 1935 में अंग्रेजों द्वारा लागू किए गए संविधान के अनुसार दस प्रतिशत भारतीय आबादी को भी वोट का अधिकार प्राप्त नहीं हुआ। जिनके पास कुछ

शैक्षिक योग्यता थी या कुछ सम्पति थी, केवल वही वोट डाल सकते थे। इस कारण जनभावना का अनुमान नहीं लगाया जा सकता था और सभी महत्वपूर्ण निर्णय लोकप्रिय विचार जाने बिना लिए जाते थे।

मुस्लिम बहुत क्षेत्रों में मुस्लिम लीग की स्थिति और भी खराब थी। आयशा जलाल ने इस पहलू पर प्रकाश डाला है, वह लिखती हैं कि 'पंजाब और बंगाल प्रांत अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के लिए सबसे महत्वपूर्ण थे। इन दोनों प्रांतों में मुसलमान बहुत कम अंतर से ही बहुसंख्यक थे, इसलिए दूसरे लोगों के साथ अच्छे संबंध बनाए रखने की जरूरत के कारण कट्टर साम्प्रदायिक दृष्टिकोण अख्तियार नहीं कर सकते थे। दोनों प्रांतों के क्षेत्रीय-दृष्टिकोण जिन्ना के अनिश्चित केंद्रीय जनमत को कमजोर करते थे, इसलिए जिन्ना के लिए इन प्रांतों पर नियंत्रण रखना मुश्किल हो रहा था और साथ ही पंजाब के उत्तर- पश्चिम में स्थित नवगठित प्रांत सिन्ध व उत्तर पश्चिमी सीमांत प्रांत में समर्थन जुटाने के लिए उससे भी अधिक मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा था। लीग 1937 के चुनावों में सिन्ध और उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रांत में सम्मानजनक प्रदर्शन भी नहीं कर पाई थी। असल में मुस्लिम बहुत सीमांत प्रांत ने अपने को कांग्रेस से जोड़ लिया था। अल्लाबख्श मंत्रीमंडल जो सत्ता से बाहर-अंदर होता रहा, वह शुरू से आखिर तक कांग्रेस के समर्थन पर निर्भर रहा।'[18]

यह कहना तर्कसंगत नहीं होगा कि भारत के सभी मुसलमान पाकिस्तान निर्माण के जिम्मेदार थे। उत्तरप्रदेश और बिहार जैसे मुस्लिम अल्पसंख्यक राज्यों का पढ़ा-लिखा अभिजात वर्ग तो अपने विशेषाधिकारों के छिनने के डर से पाकिस्तान के प्रति लालायित था, लेकिन मुस्लिम बहुल प्रांतों का पढ़ा-लिखा अभिजात वर्ग भी इसे लेकर उत्सुक नहीं था। वास्तव में पंजाब में जिन्ना के लिए यह काम आसान नहीं था। यहां विभिन्न धर्मों के सामंतों के अवसरवादी घटकों के ढीले-ढाले गठबंधन से बनी यूनियनिस्ट पार्टी का दबदबा था। लीग को मंत्रीमंडल से बाहर रखना यूनियनिस्ट पार्टी के हित में था। मई, 1942 में सिकन्दर हयात खान ने कांग्रेस में शामिल होने की संभावनाएं तलाशना शुरू कर दिया था, लेकिन इस वर्ष के अंत में उनकी मृत्यु हो गई। जिन्ना के रास्ते की सबसे बड़ी रूकावट दूर हो गई। मुस्लिम बहुल राज्यों में अपना रास्ता बनाने में जिन्ना को बड़ी मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा था और इन प्रांतों में हिन्दुओं से कोई डर नहीं था, क्योंकि इनमें से कुछ प्रांतों में हिन्दू गठबंधन मंत्रीमंडल का हिस्सा थे। इन राज्यों में मुसलमान राजनीतिज्ञों को मुस्लिम लीग में शामिल करने के लिए जिन्ना को कई तरह के पापड़ बेलने पड़े। ऐसा करने में वह 1945 के बाद ही कामयाब हो पाए, तेजी से बदल रही परिस्थितियों में जिन्ना उनको यह समझाने में सफल हुए कि बेशक उनको प्रांतीय स्तर पर कोई डर न हो, लेकिन केंद्रीय स्तर पर केवल वही (जिन्ना) उनको आवश्यक रियायत दिला सकते थे।

ध्यान देने की बात है कि 1945 तक सोचा नहीं जा सकता था कि पाकिस्तान एक सच्चाई बन सकता है। पाकिस्तान बनाने का अंतिम प्रस्ताव 9 अप्रैल, 1946 को पारित हुआ। प्रस्ताव में अब दो के बजाए एक 'स्वतंत्र सम्प्रभुसत्ता सम्पन्न देश' की मांग की गई। पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के लिए हिन्दू और मुसलमान प्रांतों के लिए दो अलग-अलग संवैधानिक सभाओं की मांग की।[19]

कैबिनेट मिशन योजना में भारतीय संघ के ढांचे में राज्यों को पूर्ण स्वायत्तता का उचित सुझाव था। इसमें केंद्र को केवल तीन विषय - रक्षा, संचार और विदेश नीति सौंपे जाने थे, शेष सभी शक्तियां स्वायत्त राज्यों को दी जानी थीं ओर इन राज्यों को दस साल बाद संघ से अलग होने की छूट थी। गहन संदेह का वातावरण था, जुबान की जरा-सी फिसलन भी विनाशकारी साबित हो सकती थी, कैबिनेट मिशन योजना के साथ यही हुआ। जवाहर लाल नेहरू ने कैबिनेट मिशन योजना के बारे में जो कहा वह जिन्ना के लिए बम का धमाका साबित हुआ। मौलाना आजाद ने उन 30 पृष्ठों में से एक में इसका वर्णन किया है जो प्रतिबंधित थे और 1988 में प्रकाशित हुए हैं-

'इतिहास बदल देने वाली दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं में से एक घटी। 10 जुलाई को जवाहरलाल नेहरू ने बम्बई में प्रेस कान्फ्रेंस में विचित्र बयान दिया। प्रेस के कुछ प्रतिनिधियों ने उनसे पूछा कि क्या अखिल भारतीय कांग्रेस कार्यकारिणी में प्रस्ताव पारित करके कांग्रेस ने अंतरिम सरकार की बनावट समेत योजना को पूर्णत: स्वीकार कर लिया है।'

'जवाहर लाल नेहरू ने अपने उत्तर में कहा कि कांग्रेस समझौते से प्रभावित हुए बिना संविधान सभा में जाएगी और वह स्थिति के अनुसार निर्णय लेने में स्वतंत्र है।'

'प्रेस के प्रतिनिधियों ने आगे पूछा कि इसका अर्थ है कि कैबिनेट मिशन योजना में बदलाव किया जा सकता है।'

'जवाहर लाल नेहरू ने दृढ़ता से जवाब दिया कि कांग्रेस ने सिर्फ संविधान सभा में भाग लेना स्वीकार किया है, कैबिनेट मिशन योजना के संबंध में वह इसे बदलने या सुधार करने जैसा वह उचित समझे वैसा करने को स्वतंत्र है।'[20]

मुस्लिम लीग ने इस योजना को दबाव में स्वीकार किया था। आजाद के अनुसार, 'जवाहर लाल नेहरू का बयान जिन्ना को बम की तरह लगा। उसने तुरंत बयान जारी किया कि कांग्रेस अध्यक्ष की इस घोषणा से समस्त स्थिति पर पुन: विचार करने की आवश्यकता है।' मुस्लिम लीग ने योजना को इस आश्वासन पर सहमति दी थी कि कांग्रेस ने इसे स्वीकार कर लिया है। जवाहरलाल नेहरू के दुर्भाग्यपूर्ण बयान में यह निहित था कि योजना में बहुसंख्यक हिन्दुओं द्वारा बदलाव किया जाएगा और

जवाहरलाल नेहरू और सरदार पटेल दोनों मजबूत केंद्र के पक्ष में थे। उन्हें कमजोर केंद्र और अविभाजित भारत या मजबूत केंद्र और विभाजित भारत में से एक चुनना था, इन्होंने मजबूत केंद्र और विभाजित भारत को चुना। यह स्पष्ट है कि दो समुदायों के अभिजात वर्ग के बीच साम्प्रदायिक सवाल का संतोषजनक हल नहीं निकल पाया। हिन्दू महासभा की भी साम्प्रदायिक माहौल बनाने में भूमिका रही। यह भी इस विचार की थी कि हिन्दू और मुसलमान दो राष्ट्र हैं और ये सद्भावना से इकट्ठे नहीं रह सकते। उन्होंने मुस्लिम लीग के 1940 के लाहौर प्रस्ताव से काफी पहले 1937 में इस आशय का प्रस्ताव पारित किया था।

अल्पसंख्यक मुसलमान बहुसंख्यक हिन्दुओं की दया पर होंगे। 27 जुलाई, 1946 को बम्बई में मुस्लिम लीग परिषद की बैठक में जिन्ना ने पाकिस्तान की मांग दोहराई और इसे मुस्लिम लीग के सामने बचा एकमात्र रास्ता बताया।

तीन दिन की बहस के बाद लीग परिषद ने कैबिनेट मिशन योजना को अस्वीकार कर दिया और पाकिस्तान निर्माण के लिए सीधी कार्यवाही करने का फैसला भी किया। इस अहम् फैसले के बाद जो घटित हुआ, उसे हम सब जानते हैं।

नेहरू ने ऐसा बयान क्यों दिया, जिसने भारतीय इतिहास को बदल दिया? पूछे जाने पर इस घटना के 12 साल बाद भी नेहरू कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दे सके। लेकिन जो उन्होंने कहा कि वह विचारधारात्मक स्तर पर महत्वपूर्ण था : 'मैं समझता हूं कि एक ऐसी बलवती भावना थी कि यदि ऐसा संघ बनता है तो एक तो इससे आंतरिक दबाव खत्म नहीं होते और दूसरे इसके विभिन्न संघटकों को सत्ता-हस्तांतरण करने से केंद्र सरकार बहुत कमजोर रह जाती, यह इतनी कमजोर रह जाती कि यह ठीक तरह से काम करने या प्रभावी आर्थिक कदम उठाने में भी सक्षम नहीं होती। यही असली कारण थे जिनके कारण हमें अंततः विभाजन स्वीकार करना पड़ा। यह कितने भारी मन से किया गया चयन था, इसकी आप कल्पना कर सकते हैं। अब यह कहना मुश्किल है कि उन परिस्थितियों में और क्या किया जा सकता था।'[21]

जवाहरलाल नेहरू और सरदार पटेल दोनों मजबूत केंद्र के पक्ष में थे। उन्हें कमजोर केंद्र और अविभाजित भारत या मजबूत केंद्र और विभाजित भारत में से एक चुनना था, इन्होंने मजबूत केंद्र और विभाजित भारत को चुना। यह स्पष्ट है कि दो समुदायों के अभिजात वर्ग के बीच साम्प्रदायिक सवाल का संतोषजनक हल नहीं निकल पाया। हिन्दू महासभा की भी साम्प्रदायिक माहौल बनाने में भूमिका रही। यह भी इस विचार की थी कि हिन्दू और मुसलमान दो राष्ट्र हैं और ये सद्भावना से इकट्ठे नहीं रह सकते। उन्होंने मुस्लिम लीग के 1940 के लाहौर प्रस्ताव से काफी पहले 1937 में इस आशय का प्रस्ताव पारित किया था। महासभा के नेता भाई परमानंद ने 1938 में लिखा, 'मि. जिन्ना मानते हैं कि इस देश में दो राष्ट्र हैं....यदि जिन्ना ठीक हैं और मैं मानता हूं कि वे हैं, तो कांग्रेस की सांझी राष्ट्रीयता की अवधारणा ही धराशायी हो जाती है। इस स्थिति के केवल दो ही समाधान हैं। एक तो देश का विभाजन है और दूसरा देश के अंदर ही एक अलग मुस्लिम देश विकसित होने देना।'[22] इस तरह हिन्दू और मुस्लिम दोनों साम्प्रदायिक शक्तियों ने धर्म के आधार पर भारत के विभाजन का समर्थन किया। भारत को विभाजित करने के लिए सभी उत्तरदायी हैं।

संदर्भ :

1. शरीफ अल मुजाहिद कायदे-आजम जिन्ना-स्टडीज इन इंटरप्रेटेशन, दिल्ली, 1985, पुनर्मुद्रित, पृ. 473
2. जमालुद्दीन अहमद, हिस्टोरिक डॉक्यूमेंट ऑफ द मुस्लिम फ्रीडम मूवमेंट, लाहौर, 1970, पृ. 86
3. एन.एन. मित्रा, (स.) इंडियन क्वाटरली रजिस्टर, 1927, वाल्यूम I, पृ. 37
4. वही, पृ. 15
5. रिपोर्ट ऑफ द इंडियन नेशनल कांग्रेस, फोरटी सेकंड सेशन, मद्रास, 1927, पृ. 61
6. उमा कौरा, मुस्लिम एंड इंडियन नेशनलिज्म, दिल्ली, 1977, पृ. 31 और देखें रिपोर्ट ऑन इंडियन नेशनल कांग्रेस, फोरटी-सेशन, वही, पृ. 75
7. पुरुषोत्तम ठाकुरदास पेपर्स, नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एंड लाइब्रेरी, न्यू दिल्ली, उद्धृत उमा कौरा, उपरोक्त, पृ. 32
8. द प्रोसिडिंग्स ऑफ द आल पार्टीज नेशनल कन्वेंशन, इलाहाबाद, 1928, पृ. 78
9. वही, पृ. 78, उद्धृत उमा कौरा, उपरोक्त, पृ. 44
10. द प्रोसिडिंग्स ऑफ द ऑल पार्टीज नेशनल कन्वेंशन, वही, पृ. 94-95
11. द ट्रिब्यून, लाहौर, 2 जून 1929
12. बॉम्बे क्रानिकल, 12 जनवरी, 1929, उद्धृत उमा कौरा, पृ. 46
13. स्टार ऑफ इंडिया, 2 जनवरी 1937 और देखें पी.एन. चोपड़ा (स.) टुवर्ड्स फ्रीडम, वाल्यूम I, पृ. 7 उद्धृत खालिक अहमद निजामी मौलाना अबुल कलाम आजाद एंड द 38 पेज़ेज ऑफ हिज इंडिया विन्स फ्रीडम, दिल्ली, 1989, पृ. 46-47
14. एआइसीसी फाईल नं. जी 5 (1)/1937 टू टुवर्डस फ्रीडम (सं.), पी.एन. चोपड़ा, I, पृ. 288-89
15. नेहरू पेपर्स, उद्धृत पी.एन. चोपड़ा (स.), टुवर्डस फ्रीडम, वही पृ. 736-768, खालिक अहमद निजामी, पृ. 52
16. मौलाना अबुल कलाम आजाद, इंडिया विन्स फ्रीडम, ओरिएन्ट लांगमेन, 1988 (पूर्ण संस्करणी), पृ. 16
17. द टाइम्स ऑफ इंडिया, 3 मार्च 1937
18. आयशा जलाल, द सोल स्पोक्समैन-जिन्ना, द मुस्लिम लीग एंड द डिमांड फॉर पाकिस्तान, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रे.स, 1985, पृ. 109
19. पीरजादा सईद शरीफद्दीन (सं.) फाउंडेशन ऑफ पाकिस्तान: ऑल इंडिया मुस्लिम लीग डॉक्यूमेंटस : 1906-1947, कराची, 1970, वाल्यूम II, पृ. 512-13
20. इंडिया विन्स फ्रीडम उद्धृत उपरोक्त, 164-65
21. खालिक अहमद निजामी, उद्धृत, उपरोक्त, पृ. 32
22. एन.एल. गुप्ता (सं.) नेहरू ऑन कम्यूनलिज्म, दिल्ली, 1965, 12, पृ. 22

•

उर्मिल मोंगा की कविता

धुआं

मंदिर मस्जिद गिरजे की
मीनारों से उठता धुआं
तमाम पेड़ जल गए
पत्ता-पत्ता
डाली-डाली सुलग रही
सोन चिड़ी बहुत रोई
राख हुआ
उसका घौंसला
तड़प रही
भाग रही,
इधर उधर, शहर से गांव
दूर पहाड़ों पर
खेतों खलिहानों में
ढूंढ रही ऐसा नीड़
निरापद रहें जहां
उसके चुनमुन

सम्पर्क: 9996684988



विभाजन

डब्ल्यू.एच. ऑडेन, *अनु. -डा. दिनेश दधीचि*

(रेडक्लिफ लाइन यानी भारत-पाकिस्तान की सीमा रेखा। कितनी जल्दबाजी में यह किया था, केवल कुछ ही हफ्तों में बिना किसी सोच-विचार के इस काम को किया था। इस कविता से इसका अनुमान लगाया जा सकता है)

इतना तय है कि जब वह अपने मिशन के लिए पहुंचा, तो उसके दिल में कम-से-कम कोई पक्षपात या पूर्वाग्रह नहीं था,
क्योंकि उसने वो सरज़मीं कभी देखी ही नहीं थी, जिसका उसे विभाजन करना था
दो समुदायों के बीच, जो कट्टर बन कर
एक-दूसरे के ख़िलाफ़ खड़े थे।
उनका खान-पान अलग था
और उनके देवताओं की आपस में बनती नहीं थी।

लंदन में उसे समझाया गया था,
वक़्त बहुत कम है;
आपसी समझौते या तर्कपूर्ण बहस की गुंजाइश ख़त्म हो चुकी है।
हल सिर्फ़ यही बचा है कि बंटवारा कर दिया जाए।
जैसा वायसराय के ख़त से आप समझ जाएँगे, उनका ख़्याल है कि आप उनके संग जितना कम दिखाई दें, उतना ही बेहतर होगा।
लिहाज़ा हमने आपके रहने का दीगर इंतज़ाम किया है।
हम आपको सलाह-मशविरे के लिए
चार न्यायाधीश दे सकते हैं - दो मुस्लिम और दो हिंदू - लेकिन आख़िरी फैसला आपका ही होगा।
एकांत भवन में बंद हुआ वह।
भवन के बाग़ में हत्यारों को दूर रखने के लिए दिन-रात पुलिस का सख़्त पहरा था।
जुट गया वह काम में।
काम था लाखों की क़िस्मत का फ़ैसला करना।
जो नक्शे थे उसके पास, सभी पुराने थे
और जनगणना के आँकड़े तो लगभग निश्चित रूप से ग़लत थे।
लेकिन उनकी जाँच करने का वक़्त ही कहाँ था?
न ही कोई वक़्त था विवादित क्षेत्रों का निरीक्षण करने का।
मौसम भयानक रूप से गर्म था
और पेचिश के चलते उसे लगातार दौड़ते रहना पड़ रहा था।
इसके बावजूद सिर्फ़ सात हफ़्तों में यह काम हो गया।
सीमाओं के फ़ैसले हो गये और एक महाद्वीप का बंटवारा हो गया।
भला हुआ या बुरा मालूम नहीं।
अगले ही दिन वह इंग्लैंड की तरफ़ जा रहे जलपोत में सवार था,
जहां जाकर वह जल्दी से इस सारे मामले को भुला सकता था।
जैसा कि किसी भी अच्छे वकील को करना ही चाहिए।
फिर, जैसा उसने क्लब में बताया,
वापस तो उसे आना ही नहीं था।
उसे गोली मार दिये जाने का डर जो था।

सम्पर्क-93541-45291

हरभगवान चावला की कविताएं

मुल्तानकी औरतें

अस्सी पार की ये औरतें
जो चलते हुए कांपती हैं
लड़खड़ाती हैं
या लाठी के सहारे
कदम बढ़ाती हैं धीरे-धीरे
सन सैंतालीस में
जिला मुल्तान से आई थीं
जब अचानक बैठे-बिठाए
बदल गया था उनका मुल्क
तब ये युवतियां थीं
या युवतियां हो जाने वाली थीं
उस वक्त जब समझदार लोग
किसी भी तरह जान बचाना चाहते थे
या सोना-चांदी
ये लड़कियां
तंदूर पर पकती
रोटियों को याद करती थीं
या कुएं के ठंडे मीठे पानी को
वे अपने साथ लाना चाहती थीं
मुसलमान सहेलियों के होठों पर
छूट गई अपनी हंसी
कपास और शलगम के पौधों पर
छूट गए अपने गीत
पर सामने मौत थी
मौत के जबड़े खून से सने थे
रास्ते में कट गई कितनी सहेलियां
कितनी नहरों में कुद गई
कितनी कैद कर ली गईं
कितनी आग में जल मरीं
इन लड़कियों ने बेबस आंखों से
अपनों को मरते देखा
इन्होंने सुनी
मरते परिजनों की आखिरी चीखें
ये चीखें उनकी देह से चिपक गई
जैसे पत्थर की छाती को
छेनी से काटकर
लिख दी गई हों इबारतें
ये चीखें आज भी
उनकी नींद में चली जाती हैं
तब ये बूढ़ी औरतें
फिर से युवतियां होकर
मूक विलाप करती हैं

ये बूढ़ी औरतें हंसती भी हैं
कुएं के पानी-सी छलछलाती हंसी
पर उनकी हंसी की धवलता में
जाने कहां से आ घुलता है लाल रंग
उन्हें हूबहू याद हैं अपने गांव
अक्सर वे सोचती हैं
अब बूढ़ी हो गई होंगी पीछे छूटी सहेलियां
उन्हीं की तरह
उनकी हंसी में भी शायद
कभी घुल जाता होगा लाल रंग
इनमें से एक औरत
सैंतालीस में पोटली मे बांध लाई थी
गांव की मिट्टी
ये सब औरतें एक साथ
कभी-कभी पोटली खोलती हैं
सूखी मिट्टी
फिर से गीली हो जाती है।

•

रक्त में जगह

मेरे जन्म से
साढ़े ग्यारह साल पहले
मेरे बहुत युवा पिता
छोड़े आए थे मुल्तान
मैंने कभी नहीं देखा मुल्तान
फिर मुल्तान मेरे सपनों में क्यों आता है?
मेरे अंतस् को झिंझोड मुझे क्यों बुलाता है?
मैं मुल्तान से मिलने को क्यों छटपटाता हूं?
मुल्तान का कोई दरवाजा क्यों खटखटाता हूं?
कोई बताये तो
कितनी पीढ़ियों तक
रक्त में बसी रहती है कोई जगह?

सम्पर्क-93545-45440

निदा फ़ाज़ली

पासपोर्ट आफ़ीसर के नाम

कराची एक मां है
बम्बई बिछड़ा हुआ बेटा
ये रिश्ता प्यार का पाकीज़ा रिश्ता है जिसे
अब तक
न कोई तोड़ पाया है
न कोई तोड़ सकता है
ग़लत है रेडियो, झूठी है सब अख़बार की ख़बरें
न मेरी मां कभी तलवार ताने रन में आई है
न मैंने अपनी मां के सामने बंदूक उठाई है
ये कैसा शोरो हंगामा है
ये कैसी लड़ाई है

••

साहिर लुधियानवी

ऐ शरीफ़ इंसानो

हिंदोस्तान और पाकिस्तान की जंग के पसमंजर[1] में लिखी गई और महादा-ताशकंद[2] की सालगिरह पर नश्र[3] की गई

खून अपना हो पराया हो
नस्ले आदम का खून है आखिर
जंग मशरिक़[4] में हो कि मग़रिब[5] में
अम्ने-आलम का खून है आख़िर

बम घरों पर गिरें कि सरहद पर
रूहे-तामीर ज़ख़्म खाती है
खेत अपने जलें कि औरों के
ज़ीस्त फ़ाक़ों से तिलमिलाती है

टैंक आगे बढ़ें कि पीछे हटें
कोख धरती की बांझ होती है
फ़त्ह[6] का जश्न हो कि हार का सोग
ज़िंदगी मय्यतों पे रोती है

जंग तो खुद ही एक मसला है
जंग क्या मसअलों का हल देगी
आग और खून आज बख़्शेगी
भूख और एहतियाज[7] कल देगी

इस लिए ऐ शरीफ़ इंसानो!
जंग टलती रहे तो बेहतर है
आप और हम सभी के आंगन में
शम्आ जलती रहे तो बेहतर है

1. पृष्ठभूमि 2. ताशकंद समझौता 3. प्रसारण 4. पूरब 5. पश्चिम 6. जीत 7. कंगाली

किस-किसको बताएंगे जुदाई का सितम हम

ज्ञानप्रकाश विवेक

पिता रेलवे में थे। तंखा कम। इरादे मजबूत। जेहन में हजारों यादें। सामने वर्तमान का फैला बीहड़। मेरे पिता। इंसानी कद्रों और रवायतों को बचाकर रखता हुआ एक शख्स। एक अदीब। एक विस्थापित - जो बहादुरगढ़ शहर में स्थापित होने के बावजूद विस्थापित था। कोई शय थी जो उन्हें स्थापित नहीं होने देती थीं। शायद वो यादें थीं - जिसे वो माज़ी (अतीत) कहते थे। वो अतीतजीवी नहीं थे, लेकिन बंटवारे का रोग उन्हें माज़ी की तरफ खींच कर ले जाता। बंटवारा एक रोग की तरह था, जिसका इलाज हर शख्स अपने तरीके से कर रहा था।

बेशक वो इस संसार में थे, लेकिन उनका अपना संसार भी था। प्रतिसंसार। एक संसार या जज़ीरा। जहां और कुछ था या नहीं था स्मृतियों की औंधे मुंह पड़ी कश्तियां थीं और एक रेगज़ार था।

पिता पाकिस्तान में थे तो कोट अदू रेलवे स्टेशन उनकी कर्मस्थली था। कोट अदू मुल्तान का छोटा-सा शहर और रिहायश महमूदकोट में - कोटअदू के पास का छोटा-सा शहर। यहां, बहादुरगढ़ रेलवे स्टेशन। छोटा-सा स्टेशन। और वो सहायक स्टेशन मास्टर। उनकी सफ़ेद जीन्स की वर्दी होती। सफ़ेद कोट। सफ़ेद पतलून। कोट के दो जेब। एक जेब में दुनिया का यथार्थ। दूसरी जेब में शायरी। एक जेब में खर्चा। नोट। चिल्लर। कागज। पुरानी टिकटें। अखबार की कतरनें। दूसरी जेब में शायरी। तसव्वुर। शायरी और दुख। शायरी और कशमकश शायरी और वर्तमान से मुठभेड़ के काल्पनिक तौर-तरीके। जब मुश्किले-दौरां से लड़ते हुए थकने लगते तो इकबाल के शेर का एक मिसरा गुनगुनाते-'के शिकस्ता हो तो अज़ीज़तर है निगाहे-आईनासाज़ में।'

पिता सफेद वर्दी पहनकर खड़े होते तो शानदार इंसान नजर आते। सफेद कोट पतलून का सबसे बड़ा लाभ यह था कि वो तंगदस्ती के सारे शिगाफ छुपा लेती। पिता घर के मुखिया थे। मुखिया और दुखिया। वो दुख छुपाने का हुनर जानते थे। दुखों का मखौल उड़ाते तो यूं लगता गोया अपना मखौल उड़ा रहे हों।

विस्थापित होकर आए हर शख्स के अंदर एक अभिमन्यु था जो तकसीम के बाद के हालात से निहत्था लड़ रहा था। यह एक अदृश्य लड़ाई थी, जो दिखाई बेशक नहीं देती थी, लेकिन इस लड़ाई के निशान और न सुनाई देने वाला शोर चेहरे पर नुमायां हो जाता था। यही अवस्था पिता की भी थी। कई बार वो इतने चुप हो जाते यूं लगता जैसे आसमान की सारी आकाशगंगाएं टूटकर जमीन पर आ गिरी हैं। कई बार वो किसी बुत की तरह बैठे होते कुर्सी पर। देर तक बैठे रहते-बेआवाज। यूं लगता, जिस्म को रखकर, अपनी आत्मा के साथ महमूद कोट चले गए हैं।

तकसीम को कई साल हो गए थे। यहां आकर उनके कई बच्चे हुए। परिवार बना। बेशक ये बातें उनके लिए सुखकारी थीं। इसके बावजूद उन्होंने अपने अंदर जो एक महमूद कोट बना रखा था, वो रहते उसमें थे। हमेशा नहीं तो अक्सर।

हम सब छोटे-से बच्चे थे। उन्हें चकित भाव से देखते रहते। उनकी आंखें नम होतीं। वो मुस्कराने की कोशिश करते रहते। आंखों में नमीं, होठों पर मुस्कान का भावार्थ हमें बिल्कुल समझ न आता।

पिता ऊंचे कद के ऊंचे इंसान थे। अपने आत्मसम्मान के लिए बहुत कुछ गंवाते रहे। बंटवारे को वो तकसीम कहते। तकसीम ने दो मुल्क बनाए। तकसीम ने भूगोल भी दोफाड़ कर दिया। भूगोल ही नहीं इंसानों के दिल भी दोफाड़ हो गए। पिता तो और भी ज्यादा जज़्बाती इंसान वो हिन्दुस्तान में आकर बस जरूर गए। लेकिन उनकी रूह का कुछ हिस्सा कहीं पीछे छूट गया। घर छोड़ते वक्त, रस्सियों से उन्होंने सामान तो बांध लिया था, लेकिन मित्रताओं को किस रस्सी से बांधते। उनके सबसे प्यारे दोस्त हबीब ने तो ऐलानिया लहजे में कहा था, 'प्रीतम, बांध सकता है, तो जज्बात बांधकर दिखा।'

हबीब ने रस्सियां देखीं। घर का माल-असबाब बंधते देखा। पिता के चेहरे पर गम की लकीरें देखीं। एक उजड़ रहे घर की कैफियत पिता के चेहरे पर रेत की तरह उड़ने लगी। पिता के बाकी सब भाई और भाइयों के बच्चे सब मिलकर इस तरह सामान बांध रहे थे कि कुछ छूट न जाए और पिता इस लिहाज से सामान बक्सों और लोहे के ट्रंकों में रख रहे थे कि कुछ चीजें रह जाएं। वो घर को पूरी तरह खाली करके नहीं जाना चाहते थे। बची हुई चीजें, एक तरह की उम्मीद जैसी थीं कि जाने वाला शायद लौट आएगा। यह एक गुमान था। यह एक फ़रेब था। लेकिन यह फरेब दिलकश था। जो पूरी तरह से इस मुल्क को छोड़ रहा था, वो चाहता था कि घर छूटने के बावजूद घर जैसी कोई शय बची रहे। बची हुई और छोड़ दी गई चीजों में पिता की आत्मा के अंश थे।

हबीब पिता को देखता पिता हबीब को। दोनों में गहरी चुप। दोनों के बीच हमेशा न खत्म होने वाली बातें होती थीं। आज कोई बात नहीं थीं। आज चुप थी। मार्मिक चुप। आहत करती चुप। दोनों के पास चुप की अदृश्य रस्सी थी जैसे उस रस्सी से दोनों ने अपने-अपने शब्दों को भी बांध दिया हो।

हबीब बिल्कुल भी नहीं चाहता था कि पिता महमूदकोट छोड़कर जाएं। फ़साद का उसे इल्म हो चुका था। खूरेज़ी, बलवा और आगजनी की खबरें उस तक पहुंच रही थीं। सब जानते थे। सब जान बचाकर जाने की बेचैनी में थे। लेकिन उस हबीब का क्या करते तो कभी रस्सी पकड़ लेता तो कभी पिता का हाथ।

बहुत देर बाद जब सारा सामान बांधा जा चुका तो हबीब ने ग़मज़दा आवाज में कहा, 'प्रीतम, तू कहता था न हर शख्स इस दुनिया में, अपनी आवाजों के साथ कदम रखता है और अपनी आवाजें लेकर चला जाता है। तू नहीं जाएगा प्रीतम, तेरे साथ तेरी तमाम आवाजें भी चली जाएंगी।'

'क्या हालात ऐसे हैं कि मैं यहां रूक जाऊं?' पिता ने हबीब से पूछा था।

'हालात बेहद कशीदा है प्रीतम। तुझे रूकने का कैसे कहूं? लेकिन तेरे चले जाने के बाद अधूरा हो जाऊंगा मैं।' आंखों से आंसू टपक पड़े थे हबीब के। यही हाल पिता का भी था।

पिता हमें एक-एक क्षण का हाल सुनाते थे। यह उनकी आपबीती थी जो बाद में वो संस्मरण के रूप में दोहराते। और भी अनेक वाकयात। लकड़ी की बिना हत्थीवाली कुर्सी (जिसकी हत्थियां वो जोड़ते। कुछ दिन बाद कील उखड़ते। हत्थियां गिर पड़ती) पर बैठे-बैठे सुनाते रहते। पास-पड़ौस, यार-दोस्त, सगे-संबंधी और हमें....सबको। वो कई-कई बार यादों के अजायबघर से कुछ ढूंढते और फिर पुरकशिश लहजे में सुनाने लगते।

हबीब उनका अंतरंग मित्र था। दोनों एक दूसरे पर न सिर्फ भरोसा करते थे, मर मिटने की हद तक एक-दूसरे को चाहते भी थे।

पिता शायर अच्छे थे तो हबीब गाता बहुत अच्छा था। रामलीला के दिनों में। पिता राम का किरदार निभाते। लेकिन सबसे मुश्किल और अवसादपूर्ण राम वनवास की रात होती। पिता राम बनकर बनवास जा रहे होते। पर्दे के पीछे खड़ा हबीब अपनी मुतरन्नुम आवाज में गा रहा होता। 'राज के बदले माता ने मुझको दे दिया हुकुम फकीरी का।'

पिता बन की ओर प्रस्थान कर रहे होते। हबीब गा रहा होता और लोगों की आंखों से टप-टप आंसू गिर रहे होते। अजीब बात थी। अंतिम पद तक जब हबीब पहुंचता तो वो खुद भी रोने लगता।

उसी हबीब को पिता पाकिस्तान में छोड़ कर यहां चले आए। विभाजन की नामुराद लकीर और रास्ते का सफर इतना संगीन कि हर लम्हा मौत सामने आ खड़ी होती।

सालों साल पिता हबीब को याद करते और रो पड़ते।

पिता अपने हैडमास्टर साहब मौलवी खुदा बख्श को भी कभी नहीं भूले थे। वो पिता को बड़ी आत्मीयता से मुल्तानी बोली में 'बचड़ा' कहते। बचड़ा मतलब बच्चा। बचड़ा मतलब प्यारा बच्चा। पिता, मौलवी खुदा बख्श के सबसे प्यारे, सबसे करीबी और मुंहलगे तालिबेइल्म यानी छात्र थे।

पिता ने महमूद कोट में दसवीं पास की तो सबसे ज्यादा खुशी मौलवी खुदा बख्श को हुई। रेलवे में नौकरी की खबर सुनकर तो मौलवी खुदाबख्श ने दोनों हाथ उठाकर पिता के लिए 'खैर' मांगी थी।

उस मौलवी खुदा बख्श के अपनेपन को किस संदूक में रखकर साथ ले आते, जिन्होंने इल्म के साथ-साथ शायरी का 'उरुज़' भी सिखाया और जज्बातों की लौ पैदा की।

मौलवी खुदा बख्श ने उर्दू के लफ्जों को बरतने की कला सिखाई। हिसाब सिखाया। अंग्रेजी के टेंस सिखाए तो तरही मिसरे पर किस तरह पूरी गजल लिखी जाए - यह हुनर भी अता किया। स्लेट पर मिसरा लिखवाते शेर पूरा करने के लिए गिरह लगवाते। शेर हो जाता तो बड़ा फख्र होता



मौलवी खुदा बख्श को।

एक तरही मिसरा तो बड़े खिलंदड़े किस्म का जो लाख कोशिश के बावजूद मौलवी खुदा बख्श गिरह न बांध सके। उन्होंने पिता को बुलाया, 'बचड़ा, एक मिसरा लिख और गिरह बांध।' यानी शेर पूरा कर। मिसरा रूमानियत और मसखरेपन से भरपूर- 'दिलेनादां को आदत है पराए घर में जाने की।'

पिता ने स्लेट पर मिसरा लिखा। क्लास रूम में अपनी सीट पर जाकर बैठ गए। मिसरा और छात्रों ने भी लिखा। लेकिन शेर मुकम्मल किया सबसे पहले पिता ने। शेर बेशक हलका-फुलका था, लेकिन था दिल फरेब। शेर यूं हुआ था-

बहुत मारा बहुत पीटा बहुत झाड़ा-बहुत झपटा
दिलेनादां को आदत है पराए घर में जाने की।

शेर पढ़कर हैडमास्टर साहब, मौलवी खुदाबख्श ने पिता की पीठ थपथपाई। खुश हुए।

मौलवी खुदा बख्श उच्च कोटि के विद्वान और शानदार अध्यापक थे। किसी-किसी दिन वो उर्दू पढ़ाते-पढ़ाते कोई ऐसा शेर सुनाते, जिसमें जीवन दर्शन होता। शेर मुश्किल होता। मौलवी खुदा बख्श उसकी तशरीह (व्याख्या) करते हुए डूब-सा जाते।

एक दिन उन्होंने शेर पढ़ा-
तू ही सच-सच बता वो कौन था शीरीं के पैकर में
कि मुश्ते-खाक के बदले में कोई कोहकन क्यों हो?

प्रेम की प्रबल भावनाओं को व्यक्त करता शेर जिसमें फहरात का कहीं जिक्र नहीं। लेकिन असल किरदार तो वही है जो शीरीं के लिए पहाड़ काटता है।

लेकिन अचरज तो इस बात में है कि शीरीं तो एक मुट्ठीभर राख ही थी और उसके लिए पहाड़ काटने का हौसला! नहीं! बात कुछ और है। परवरदिगार, तू ही सच-सच बता। शीरीं के भेस में कहीं तू खुद तो नहीं था।

मौलवी खुदा बख्श जब शेर की व्याख्या करते तो कितने सारे मंजर खुलते चले जाते। शेर बहुत बड़े आख्यान में बदल जाता।

मौलवी खुदा बख्श पढ़ाते नहीं थे, ज्ञान देते थे। वही ज्ञान देने वाले मौलवी खुदा बख्श कहीं पीछे छूट रहे थे। हबीब पीछे छूट रहा था और कादरबख्श थानेदार! लहीम-शहीम शख्सियत के मालिक, रूखसत के वक्त पिता को बेबस नजरों से देखते रहे।

ये वही कादरबख्श थानेदार थे, जिन्होंने पिता को गिरफ्तार होने से बचाया था। पिता शायर थे और अफसाना-निगार भी थे। उन्होंने एक अफसाना लिखा - 'बड़े दिन की छुट्टियां'। अंग्रेजी हकूमत के खिलाफ आग उगलता अफसाना। नतीजा?

अखबार जब्त और पिता की गिरफ्तारी के वारंट!

थानेदार कादरबख्श को करनी थी कार्रवाई। वो जानते थे प्रीतम लाल को गिरफ्तार कर लिया तो उम्रभर सड़ता रहेगा जेल में। कुछ भी हो। प्रीतम लाल गिरफ्तार नहीं होना चाहिए। चुनांचे, वो हरकत में आए। तुरंत भेजा अपना भरोसेमंद कारिन्दा प्रीतम लाल के घर, इस 'रूक्के' के साथ कि जितनी जल्दी हो, वो शहर छोड़कर कहीं चला जाए।

पिता अपने दोस्त हबीब के साथ महमूदकोट छोड़कर कोटअदू चले गए। कई दिन वहां छुपकर रहे।

कादरबख्श को जब यकीन हो गया कि प्रीतम लाल घर छोड़ कर कहीं चला गया है तो वो अपनी घोड़ी पर बैठकर, चंद सिपाहियों के साथ पिता के घर आए। धावा बोला। घर की तलाशी ली। हर कमरे की। हर नुक्कड़ की। फिर खाली हाथ लौट आए। तहरीर लिखी-'बड़े दिन की छुट्टियां लिखने वाला अफसानानिगार इस शहर में नहीं रहता।'

पिता के सब दोस्त उनकी चेतना में खलबली मचा रहे थे। पिता इन सब शानदार और साफ दिल दोस्तों को छोड़कर जा रहे थे। मन भारी था आंखें नम!

और कश्फी! पिता के दोस्त, ऊंचे पाये के शायर!

कश्फी मुल्तान के बड़े शायर थे और फक्कड़पन की अजीम मिसाल! एक बार महमूदकोट आए। महमूदकोट में दो सभाएं श्रीराम सभा और श्रीकृष्ण सभा। दोनों सभाओं के मौजिज लोगों ने कश्फी साहब को दावत दी। कश्फी साहब ने उनकी दावत को तपाक से कबूल फरमाया। दोनों सभाओं के सरकरदा और आम लोग। पूरा महमूदकोट ही उठकर चला आया हो जैसे।

कश्फी साहब ने दो तवील नज्में सुनाईं - एक श्रीराम चंद्र की अकीदत में, तो दूसरी श्रीकृष्ण और उनकी गीता पर। लोग वाह-वाह कर उठे। एक-एक बंद पर मुर्करर की गुजारिश कश्फी साहब भी बड़े दिल से नज्में सुनाते रहे। वो गाकर नज्में सुनाते थे। इतना अच्छा गाते थे कि उन्हें बुलबुले-मुल्तान कहा जाता था। कश्फी साहब ने वो समां बांधा कि लोग मुरीद हो गए।

महमूदकोट शहर बेशक गरीब लोगों का था, लेकिन धर्म के मामले में लोग दरियादिल थे। लोग नज्में सुनकर कश्फी साहब पर फिदा हो उठे। नज्मों का ऐसा तिलिस्म की नोटों की बारिश होने लगी। बहुत देर तक लोग कश्फी साहब पर नोट लुटाते रहे। फिर सब शांत होकर बैठ गए।

कश्फी साहब ने नोटों से भरे थाल पर जरा नजर डाली। बोले, 'साहेबान, खाकसार की नज्मों को आपने पसंद किया, इसके लिए मैं आप सबका शुक्रगुजार हूं।' फिर कुछ पल रूके, शाइस्तगी से कहा, 'थाल में पड़े आधे पैसे राम सभा के लिए, आधे कृष्ण सभा के लिए।'

लोग स्तब्ध रह गए। एक पल के लिए खामोशी छाई रही, फिर तालियां बजीं और देर तक तालियां बजती रही। हकीकत यह थी कि इन सभाओं में कोई कथावाचक कथा बांचने आता तो ज्यादा-से-ज्यादा दान देने की अपील करता।

इधर, जनाब कश्फी थे नोटों से भरे थाल को छोड़कर उठ खड़े हुए। फिर हमारे पिता के साथ बाहर, शहर की तरफ घूमने निकल पड़े। बाजार से गुजरते हुए कश्फी साहब ने हमारे पिता से कहा, 'अरमान! हमारे पिता का तखल्लुस अरमान एक दुअन्नी देना लैम्प की सिगरेट का एक पैकेट खरीदना है। मेरे पास पैसे नहीं हैं।'

कितनी सादगी से कह दी थी यह बात कश्फी शायर ने कि मेरे पास पैसे नहीं हैं! हमारे पिता तो भौंचक नजरों से फक्कड़, अलमस्त और अजीम शायर कश्फी को देखते रहे। बंदे की जेब में दुअन्नी तक नहीं थी और नोटों से भरा थाल छोड़कर चला आया है।

पिता ने कश्फी साहब के दोनों हाथों को अपने हाथों में भरकर चूम सा लिया।

पिता जब शहर छोड़कर रूखसत होने लगे तो मुल्क के अजीम शायर कश्फी उनसे मिलने आए। दोनों आमने-सामने। दोनों चुप। दोनों शायर जब कहीं मिलते, तो शायरी की बज्म-सज जाती। न सिर्फ अपने शेर बल्कि दूसरे बड़े शायरों के अश्आर सुनाते-सुनते।

लेकिन आज न शायरी थी न शेर थे। न शायरना अंदाज न बेतकल्लुफ बातें। सिर्फ चुपचाप एक-दूसरे को देखते हुए-'कि चुप-सी लग गई दोनों में बात करते हुए।'

फिर अचानक कश्फी बोले, 'अरमान, मैं अपनी रूह पर कितना बड़ा जुल्म कर रहा हूं कि तुम्हें नहीं रोक रहा। और तुम्हें रोक लूं तो तुम्हारी जिंदगी मुश्किल में पड़ जाएगी।'

वो फिर बोले, 'हम कितने बेचैन हैं कि हम अलग नहीं होना चाहते, लेकिन हम कितने बेकैफ़ हैं कि सियासतदानों की सियासत हमें जुदा होने के लिए मजबूर कर रही है। जाओ अरमान! पूरा सफर मुश्किल भरा सफर होगा। मेरी नेक दुआएं तुम्हारे साथ रहेंगी। तुम सरहद के उस पार ख़ैरियत से पहुंच जाओ।'

पिता के तमाम मुसलमान दोस्त जिद्द पर अड़े रहे कि तुम्हें उस पार नहीं जाने देंगे। लेकिन हालात हर दिन कशीदा और रंजीदा होते गए। वही दोस्त, यह कहने को मजबूर हुए कि आप यहां से मिल्ट्री के ट्रक में बैठकर, जितनी जल्दी हो सके कूच कर जाओ। अब हालात साज़गार नहीं रहे।

बहुत सारा गैर जरूरी सामान पिता के साथ चला आया। लेकिन मुहब्बत, दोस्ती, खुलूस, बेफिक्री, मस्ती, आवारगी, दीवानगी महमूदकोट में छूट गए।

पिता कभी-कभी बहुत भावुक हो उठते। पीछे छूट गए दृश्य, उनके अंदर जिंदा होकर सामने आ खड़े होते। पाकिस्तान का मुल्तान। मुल्तान का जिला मुजफ्फरगढ़ और मुजफ्फरगढ़ का शहर महमूदकोट! दृश्य खुलते चले जाते। पिता की आंखें भीगती रहती। लकड़ी की कुर्सी पर बैठे पिता, खुद ऐसे काठ प्रतीत होते जो गीला हो और सुलग रहा हो। शायद हर शरणार्थी की यही कैफियत होती हो।

वो टूटी हत्थीवाली कुर्सी पर बैठे होते तो ऐसा लगता, एक और हत्थी भी टूटी है - उनकी आत्मा की हत्थी। फिर वो भरे मन और भीगी आवाज से बुल्लेशाह की 'काफी' लगते-

ओहने केहड़ी गल्लों नजरां ने फेरियां
रातां जाग-जाग लंघदियां मेरियां
लगे दिल उत्ते जख़्म दिखावां
जे कद्दी मेरा यार मिल जाए
ओहदा बण के फिरा मैं परछावां
जो कद्दी मेरा यार मिल जाए
ओहदे नाम दा जपां मैं सरनामा
जे कद्दी मेरा यार मिल जाए।

(पता नहीं मेरे मित्र ने मुझसे नजरें क्यों चुरा ली हैं। इस दुख में मेरी रातें जाग-जाग कर गुजरती हैं। अगर कभी मेरा मित्र मिल जाए तो मैं उसे दिल पर लगे घाव दिखाऊं। अगर वो कभी मिल जाए तो मैं उसकी परछाई बनकर उसके साथ-साथ रहूं और उसके नाम की माला जपता रहूं।) ●

मकान

ज्ञानप्रकाश विवेक

शरणार्थियों की यात्रा, यात्रा नहीं होती। बेघरी का फरमान होता है। पिता और अन्य हजारों-लाखों शरणार्थियों के साथ सबसे बड़ा सवाल यह था कि वो कहां जाएं? किस स्टेशन पर उतरें? जान बच गई- यह जिंदगी की सबसे बड़ी सौगात थी, लेकिन उसके बाद? कितने सारे मसाइल थे...कितने सारे सवाल! और हर सवाल इतना तीखा इतना घायल करता कि सवालों से सब बचना चाहते थे, लेकिन सवालों से बचना आसान नहीं था। ज़िंदगी खुद सवालों का बीहड़ लेकर खड़ी थी।

पिता और उसके परिवार के तमाम लोग खुश थे कि जान बच गई। उदास थे कि एक भाई पीछे छूट गया कशमकश में थे कि आगे क्या होगा। बेचैन थे कि बंटवारा क्यों हुआ? ग़मज़दा थे कि अच्छा-खासा ठौर-ठिकाना छोड़कर निकल भागना पड़ा।

पिता रेलवे में थे। पाकिस्तान में भी रेलवे के मुलाज़िम और हिन्दुस्तान में भी। बंटवारे से कुछ दिन 'बहादुरगढ़' जैसे अनजान शहर में तबादले का आर्डर ले लिया था। निकले तब, जब फसाद फैल गए। रेलगाड़ी में बैठे हुए तय कर लिया कि बहादुरगढ़ रेलवे स्टेशन पर रेलगाड़ी रुकेगी तो उतर पड़ेंगे।

अनजान शहर-बहादुरगढ़ के प्लेटफार्म पर सब के सब, सारा कुनबा उतर पड़ा। इतना सारा सामान और वो लोग। लगता था बंजारों का काफिला प्लेटफार्म पर डेरा डालने आया है।

रात प्लेटफार्म पर गुजरी। अगले दिन सुबह जब शहर के आखिरी हिस्से में पहुंचे तो कई सारे मकान खाली नजर आए। यह मुसलमानों की बस्ती थी जो तकसीम के वक्त घर-बार छोड़कर चले गए।

यह उपेक्षित जगह थी। मकान पुराने थे। इलाका शहर के बाहर, जिसे हिकारत से देखा जाता था। लेकिन शरणार्थियों के लिए यह जगह और खाली मकान बेहद माकूल थे।

पिता के भाइयों ने खाली पड़े घरों में डेरा जमाया। बेघरी का सवाल इतनी जल्दी हल हो जाएगा किसी ने सोचा भी नहीं था।

लेकिन पिता!

पिता जब खाली पड़े, पुराने से मकान में पहले-पहल दाखिल हुए, तब मकान अजीब तरह से चुपजदा था। जाने वाला मकान खाली करके चला गया था। उदास चुप को छोड़ गया था। हो सकता है कि उसने अपनी बेबस चुप को किसी रस्सी में बांध कर, साथ ले जाने की कोशिश की हो और वो चुप को न बांध पाया हो।

यह मकान अकेला था, लेकिन इस मकान की चुप, मकान से भी ज्यादा अकेली थी। इतनी अकेली कि खाली घर को और ज्यादा खाली और अनाथ बना देती थी। चुप इतनी गहरी और प्रश्नाकुल थी कि वो किसी अदृश्य इंसान की तरह सामने आ खड़ी होती। चुप, जैसे जा चुके मनुष्य की चिट्ठी हो-जिसमें बेघरी की वेदना हो और घर छोड़कर चले जाने की व्याकुलता।

सिर्फ पिता थे जो इस चुप का भावार्थ समझते थे। चूंकि, ऐसी ही कोई चुप, वो भी महमूदकोट के मकान में छोड़ आए थे। घर छोड़ना कितना तल्ख़ और अव्यक्त अनुभव होता है-हलकान करता हुआ अनुभव!

यही अनुभव उस शख़्स ने भी तो महसूस किया होगा, जब उसने न चाहते हुए घर छोड़ा होगा। हमारी आत्माएं जो अस्वीकार करती हैं, प्रतिकूल परिस्थितियों में वही करने को विवश हो जाती हैं।

पिता, उस घर की चुप से डर जाते। व्याकुल पिता ओर ज्यादा व्याकुल नजर आते। शरणार्थी पिता, इस मकान में कहीं ज्यादा विस्थापित नजर आने लगते। मकान जिस शख़्स का था, उसकी बेबस चुप उन्हें स्थापित न होने देती।

पिता दो मकानों के बीच शरणार्थी। एक मकान पाकिस्तान में, जिसे वो बिना ताला लगाए, सांकल मूंदकर चले आए थे। दूसरा मकान, इस बहादुरगढ़ शहर के उपेक्षित इलाके में। पिता का न वो मकान अपना न ये। एक मकान पीछे छूट गया। जब चलने लगे थे वहां से तो आखरी बार झांककर देखा था-मकान के अंदर, घर की रूह तड़पती हुई सी।...क्या पता था कि यहां भी वैसा मकान मिलेगा मकान आपका, लेकिन घर किसी और का।

शुरू-शुरू में, मां और पिता दोनों- इस घर में ऐसे रहते थे जैसे खानाबदोश रहते हों। उनके पास बहुत थोड़ा सामान था। उस थोड़े से सामान से जरूरी सामान ऐसे निकाला था जैसे यहां थोड़ी देर के लिए या थोड़े दिनों के लिए रूकना हो और फिर सामान उठाकर कहीं और चल देना हो। यह घर किसी मुसाफिरखाने की तरह लगता था दोनों को। दोनों किसी अनजान, अजनबी और अबूझ-सी रेलगाड़ी का इंतजार कर रहे हों। इंतजार और स्मृति-दो चीजें उनके जीवन का मुहावरा बन गई थीं। मां की यादें कुछ और तरह की थीं, पिता की और तरह की।

मां और पिता दोनों को यह मकान कागज के शामियाने जैसा लगता। किसी रोज बारिश को आना था और कागज के शामियाने को गल जाना था।

यह मकान किसी मंजूर इलाही का था। मकान को छोड़ते वक्त, बेहद तकलीफ में रहे होंगे मंजूर इलाही। किसी विस्थापित की तरह वो भी तकलीफों की गठरी और जिंदगी का जरूरी सामान उठाकर चल दिए होंगे - बेबसी के आलम में, न चाहते हुए। पैरों में थकान, दिल में उजाड़ी हुई वीरानी और आंखों में परेशानी के कील लेकर। मकान छोड़ते वक्त उनके साथ पूरा कुनबा होगा और साथ रहा होगा बेघरी और जलावतनी का अहसास। ख़लिश और ख़ौफ! बेचारगी और बेबसी! बेयकीनी और संशय!

मंजूर इलाही अपने साथ सामान लेकर चले गए। मकान के अंदर जो अदृश्य-सा घर होता है, शायद वो उसे भी साथ ले गए हों। लेकिन वो मकान छोड़ गए थे।

मां और पिता जब इस खाली पड़े मकान में दाखिल हुए तो डरे हुए थे। डरा हुआ मकान भी था। खाली मकान खुद डरे हुए होते हैं और वो अजीब-सा डर भी पैदा

करते हैं। मकानों में मकीन रहें तो मकान जिंदा इंसानों जैसे प्रतीत होते हैं। मकान खाली हों, तो उदास, हलचल रहित। शहर में किसी लापता बच्चे जैसे।

मकान छोड़कर जाने वाले मंजूर इलाही ने घर की एक दीवार पर, उर्दू जुबान में अपना नाम लिखा था-मंजूर इलाही! मंजूर इलाही की लिखावट में एक थरथराहट-सी महसूस होती थी। यह लिखावट दीवार पर टंगे उस कैलेंडर की तरह थी जो दीवार की शरण में हों और दीवार पर टंगे रहने की गुजारिश कर रहा हो। यूं तो दीवार पर लिखा नाम मंजूर इलाही - एक नाम ही था। लेकिन यह एक जाते हुए शख्स की व्याकुल निशानी थी। पिता कई कई बार उस नाम को पढ़ते। मंजूर इलाही का खाका अपने जेहन में उतारते।

खाली मकान में दाखिल होना आसान था। लेकिन उसे आबाद करना मुश्किल! यह मकान जैसे दो शरणार्थियों के दुख का शिविर हो। यह मकान किसी मंजूर इलाही की स्मृति थी। पिता अक्सर मंजूर इलाही का खाका बनते। लेकिन मंजूर इलाही कैसे रहे होंगे, यह किसी को पता नहीं था।

मकान पराया था। पराए मकान को अपना कहने में बहुत वक्त लगा था। मकान की रजिस्ट्री अपने नाम कराने के बावजूद, पिता को लगता यह मकान मंजूर इलाही का है।

धीरे-धीरे यह मकान पिता को अपना मकान लगने लगा था। शायद इसलिए कि दोनों की हालत एक जैसी। दोनों शिकस्ताहाल - पिता भी और यह मकान भी। दोनों का खालीपन भी एक जैसा वीरानी भी। पिता की खामोशी भी इस मकान जैसी। यूं लगता जैसे इस मकान में घर की आत्मा, खामोशी का निरीह पियानों बजा रही है।

पिता ने इस मकान की दो बार सफेदी भी कराई। या शायद ज्यादा बार। लेकिन सफेदी के दौरान, हर बार, दीवार के उस हिस्से को जस का तस छोड़ दिया जाता, जहां मंजूर इलाही जाते वक्त अपना नाम लिख गए थे।

जैसे नाम न हो, कोई 'रूक्का' हो और उसे ता-जिंदगी संभालकर रखना अनिवार्य हो।

दीवार पर लिखा नाम जैसे नाम न हो, कोई अलविदा हो, या कोई चेहरा-उदास और अदृश्य! •

उजड़े हुए लोग-ज्ञानप्रकाश विवेक

किला मौहल्ला, उजड़े हुए, उखड़े हुए और अपनी जड़ों से कटे हुए लोगों का मौहल्ला था। बहादुरगढ़ के बहुत सारे इलाकों में 'रिफ्यूजी' बस गए थे। लेकिन किला मौहल्ला में सबसे ज्यादा। शहर की यह आखिरी उजाड़ जगह थी। इसके बाद बहुत विशाल, पुरानी इमारत थी - जिसे नवाब की हवेली कहते थे। उसके बाद खेत थे, जंगल था। किला मौहल्ला के मुसलमान, अपने मकान खाली छोड़कर या उन्हें ताला लगाकर पाकिस्तान चले गए थे। पाकिस्तान के पंजाबी शरणार्थी (जो मुलतान और झंग जिले के ज्यादा थे) इन 'खाली उदास' घरों में समा गए थे।

बंटवारे के वो दिन! जिंदगी कहीं कूच कर गई हो जैसे। मौत की आहट थी और मौत की गंध। भय का हौलनाक मंजर हर कहीं था। वातावरण में अजीब तरह की सुलगती हुई चुप। आधे उखड़े नाखून का दर्द पूरी बस्ती का दर्द था।

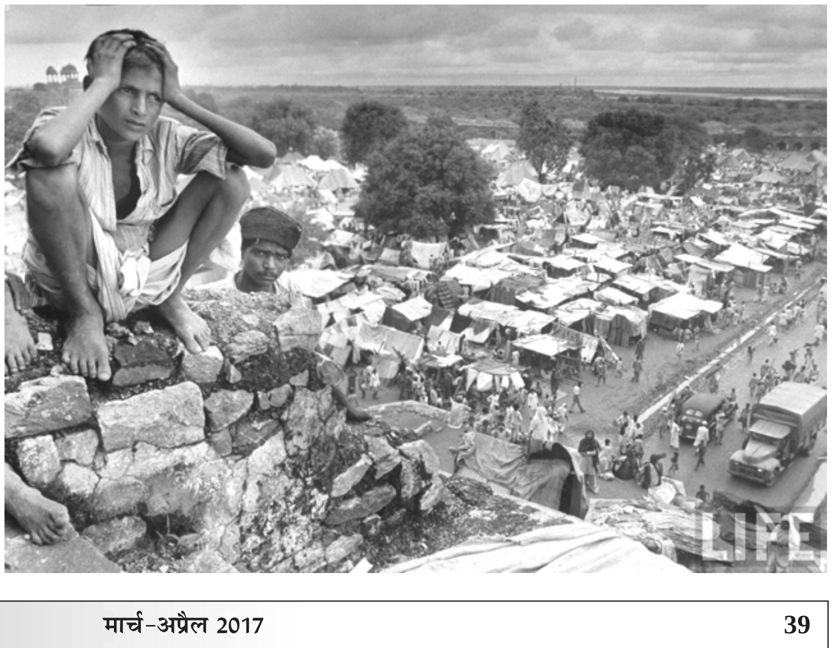
रिफ्यूजियों के लिबास और बोलचाल से ऐसा प्रतीत होता था जैसे पाकिस्तान का कोई हिस्सा किला मौहल्ला की शक्ल में आबाद हो गया हो। ऐसा लगता हर शख्स के पास अपना एक पाकिस्तान है।

इन लोगों के पास कुछ भी नहीं था। यह 'कुछ भी नहीं' इनकी सबसे बड़ी दौलत थी। कुछ नहीं होने के अहसास ने सबके अंदर संघर्ष करने की भावना पैदा की थी। अपनी पहचान का संकट किसी को भी नहीं था। स्थानीय लोगों के लिए ये विस्थापित सिर्फ 'रिफ्यूजी' थे। यह इनकी पहचान थी। यहां के मूल निवासी रिफ्यूजियों को हिकारत और अजनबी नजर से देखते थे। किसी के मन में न दोस्ताना जज्बा था न हमदर्दी के भाव! रिफ्यूजियों की उपस्थिति को स्वीकार लिया गया था, यही गनीमत थी।

पाकिस्तान से अपने माता-पिता के साथ आए बच्चों की पढ़ाई छूट गई थी। आठवीं-दसवीं की पढ़ाई छोड़कर आए किशोर और जवान लड़कों को कुछ भी समझ नहीं आ रहा था कि क्या करें?

तीन चार साल बाद रिफ्यूजियों की एक संस्था ने स्कूल बनवाया - करोड़ डीएवी हाई स्कूल! पाकिस्तान में करोड़ एक जगह का नाम था। पैसा खर्च करने वाले वहां के (करोड़ के) बाशिंदे थे। उस स्थान की स्मृति में स्कूल का नाम!

आवारा घूमते तमाम बच्चों को स्कूल में दाखिला मिला। लेकिन इन बच्चों के माता-पिता का अब भी धंधा ठीक से नहीं जम पाया था। आय का कोई साधन नहीं था। जवान होते लड़के और किशोर बच्चे अपने माता-पिता की तंगहाली से परिचित थे। वो नए यथार्थ को भी समझ रहे थे। इन सबने इस बात को ठीक से समझ लिया था कि जो जमीन-



घर और सपने पाकिस्तान में छोड़ आए हैं, वो अब किसी सूरत में भी अपने नहीं हो सकते। अब जो कड़ियल सच और कशीदा हालात सामने हैं, वही अपने हैं। इनसे पलायन नहीं किया जा सकता।

सब लड़के, छोटे और बड़े लड़के, किसी न किसी काम में खुद को झौंक रहे थे।

यह बेहद मुश्किल वक्त था। और मुश्किल वक्त किसी पाठशाला की तरह भी था। लड़के जीने का हुनर सीख रहे थे। तमाम लड़के और बड़ी उम्र के लोग बांस के जंगल की तरह थे – सुलगते हुए। हर वक्त धुआं-सा। बेकरारी और बेचैनी का धुआं। हर शख्स के अंदर एक चिमनी थी – दुख की चिमनी जो व्याकुलता का धुआं उगलती थी।

सब लड़कों की अपनी-अपनी जिद्दें थीं। वो अपनी जिद्द को हथियार बनाकर, अभावों से लड़ाई लड़ रहे थे।

कुछ लड़के स्कूल के बाद, घर जाने के बदले बहादुरगढ़ रेलवे स्टेशन पहुंचते। वो अपने बस्ते को कहीं छुपाते और छुपाकर रखे गए बोरी या कट्टे को निकालते। रेलवे लाईन के बीचों-बीच चल पड़ते। स्टीम इंजन जब रेलगाड़ी को ले जाते तो उनका कोयला भट्ठी से गिरता रहता। फायरमैन भट्ठी का कोयला गिराते। नया कोयला बेलचे से डालते। कोयले का गिरना भी चकित करने वाला होता। फायरमैन इंजन के भीतर लगे एक लीवर को खींचते। इंजन के नीचे छलनी से कोयला और राख गिरती चली जाती। बाद में उस इंजन में जल चुके और रेलवे लाईन में गिर चुके कोयले को स्त्रियां-पुरुष और लड़के चुनते। वो एक बार फिर जलाने के काम आता। जो इंजन में कोयला डाला जाता, उसे 'कोक' कहते और इस इंजन से गिरे कोयल को सिंडर कहते।

रिफ्यूजी लड़के इस कोयले को चुनने के लिए रेलवे लाइन के बीचोंबीच, लकड़ी के स्लीपरों पर पैर जमाते हुए चलते और जहां कोयला नजर आता उसे पीठ पर टंगे कट्टे में डालते जाते।

कुछ लड़के पूर्व की तरफ, कुछ पश्चिम की तरफ-कुछ घेवरा स्टेशन की तरफ, कुछ आसौदा स्टेशन की तरफ निकल पड़ते। जब कहीं, जहां भी कट्टा कोयले से भर जाता, वो वापिस लौट पड़ते। उन कोयले के कट्टों को सिर पर या पीठ पर लादकर वो शहर में आते। किसी हलवाई या चाय वाले को वो कोयला बेच देते। हलवाई या चाय वाले इनका कोयला खरीद लेते लेकिन सस्ते दामों पर।

कुछ लड़के हफ्ताभर पढ़ाई करते। इतवार को रिक्शा चलाते। कुछ लड़के दुकानों से अखबार की रद्दी ले आते और लिफाफे (ठोंगे) बनाकर बेचते। कुछ लड़के फैक्ट्रियों में माल ढुलाई का काम करते। कुछ लड़के दीवारों पर इश्तहार चिपकाने का काम करते।

सब लड़कों के कपड़े पुराने होते। जूते घिसे हुए। चेहरे पर तनाव। जैसे अपने अंदर कोई लड़ाई लड़ रहे हों। वो चाहते थे कि उनके कपड़े शानदार हों। जूते नए और चमकते हुए। जूते हों तो जुराबें भी हों। स्कूल में आधी छुट्टी के वक्त वो भी अपनी जेब से पैसे निकालें और झट से खाने की कोई चीज खरीद लें।

इन तमाम रिफ्यूजी लड़कों की एक बात मुशतरका थी कि उनकी सोच में एक शब्द था-जद्दोजहद! वो समझ चुके थे कि मातम मनाने से कुछ भी नहीं होगा। बैठे रहने से और उदास बने रहने से मुकद्दर भी मुंह फेर कर चला जाता है। वो जान गए थे कि अभाव का मातम कोई पंडाल नहीं, जिसे सजाया जाए। कोई भजन नहीं जिसे गाया जाए।

इन तमाम लड़कों का यकीन और तरह का था और जिंदगी की पेशकश भी। वो आपस में बातचीत करते। एक-दूसरे का आत्मबल और उम्मीद पैदा करते हुए कहते – जिस आसमान को छोड़ आए हैं और जिस जमीन पर पांव रखकर बड़े हुए, वो ऐसे नहीं थे? सब कुछ ऐसा ही तो था।

बेशक, बेघरी ऐसी नहीं थी।

सम्पर्क-98134-91654

अली सरदार जाफ़री

सुब्हे -फ़र्दा

(1)

इसी सरहद पे कल डूबा था सूरज होके दो टुकड़े
इसी सरहद पे कल ज़ख़्मी हुई थी सुब्हे-आज़ादी
यह सरहद खू़न की, अश्कों की, आहों की, शरारों की
जहां बोई थी नफ़रत और तलवारें उगाई थीं
यहां महबूब आंखों के सितारे झिलमिलाये थे
यहां माशूक़ चेहरे आंसुओं से तिलमिलाये थे
यहाँ बेटों से मां, प्यारी बहन भाई से बिछड़ी थी
यह सरहद जो लहू पीती है और शोले उगलती है
हमारी ख़ाक के सीने पे नागन बन के चलती है
सजा कर जंग के हथियार मैदां में निकलती है
मैं इस सरहद पे कब से मुन्तज़िर हूं सुब्हे-फ़र्दा का

(2)

यह सरहद फूल की, खू़शबू की, रंगों की, बहारों की
धनक की तरह हंसती, नदियों की तरह बल खाती
वतन के आरिज़ों पर ज़ुल्फ़ के मानिन्द लहराती
महकती, जगमगाती, इक दुल्हन की मांग की सूरत
कि जो बालों को दो हिस्सों में तो तक़्सीम करती है
मगर सिंदूर की तलवार से, सन्दल की उंगली से
यह सरहद दिलबरों की, आशिकों की, बेक़रारों की
यह सरहद दोस्तों की, भाइयों की, ग़मगुसारों की
सहर को आये ख़ुर्शीदे-दरखू़शां पासबां बनकर
निगहबानी हो शब को आस्मां के चांद तारों की
ज़मीं पामाल हो जाये भरे खेतों की यूरिश से
सिपाहे हमलावर हों दरख़्तों की क़तारों की
ख़ुदा महफ़ूज़ रक्खे ग़ैरों की निगाहों से
पड़ें नज़रें न इस पर खूं के ताज़िर ताजदारों की
कुचल दें इसको फ़ौलादी क़दम भारी मशीनों के
करे यलग़ार इस पर ज़र्बे-कारी दस्त कारों की
उड़ें चिंगारियों के फूल पत्थर के कलेजे से
झुके तेग़ों की महराबों में गर्दन कोहसारों की
लबों की प्यास ढाले अपने साक़ी अपने पैमाने
चमक उठें मसर्रत से निगाहें सोगवारों की
महब्बत हुक्मिरां हो, हुस्ने क़ातिल, दिल मसीहा हो
चमन में आग बरसे शोला पैकर गुल अज़ारों के
वह दिन आये कि आंसू होके नफ़रत दिल से बह जाये
वह दिन आये यह सरहद बोसा-ए-लब बनके रह जाय

(3)

यह सरहद मनचलों की, दिलजलों की, जांनिसारों की
यह सरहद सरज़मीने-दिल के बांके शहसवारों की
यह सरहद कजकुलाहों की, यह सरहद कजअदाओं की
यह सरहद गुलशने-लाहौरो-दिल्ली की हवाओं की
यह सरहद अम्नो-आज़ादी के दिल अफ़रोज़ खू़वाबों की
यह सरहद डूबते तारों, उभरते आफ़्ताबों की
यह सरहद खूं में लिथड़े प्यार के ज़ख़्मी गुलाबों की
मैं इस सरहद पे कब से मुन्तज़िर हूं सुब्हे -फ़र्दा का

1.हमला 2.फौजें 3.हमला 4.भारी चोटें 5.तिरछी टोपी वाले

नूरू की थाली

रामकिशन राठी

घोड़े दौड़ रहे थे...क्यड़पड़-क्यड़पड़, नगाड़े बज रहे थे...पड़गड़ाम...पड़गड़ाम-पड़गड़ाम...

लड़ाई के मैदान के नजारे को बयान करते हुए वह मुंह से ऐसी आवाजें निकालता था जो हूबहू घोड़े की टापों से मिलती-जुलती थी और नगाड़े पर डंके की चोट की आवाज भी ऐसे निकालता था, जैसे वास्तव में नगाड़ा ही बज रहा हो। फिर वह जोश भरे स्वर में युद्ध का वर्णन करता था।

एक लड़ैये मोहबे वाले जिनकी मार सही न जा

एक को मारै दूजा मरज्या तीजा पड़ै सनाका खाय

इतने जोशीले स्वर में वह आल्हा गाता था कि सुनने वालों को भी जोश आ जाता था। सिंहासन बतीसी के किस्से, बेताल कथाएं, मीरा के भजन, लोककथाएं, सीता के दोबारा वनवास की व्यथा-कथा और लव-कुश की बहादुरी की घटनाएं...इन सब का सजीव वर्णन बच्चों को ऐसा लुभाता था कि बच्चे उसे देर रात का सोने नहीं देते थे।

पशुओं में जब कोई बीमारी हो जाती, तो रांझा गाने के लिए गवैये बुलाए जाते थे। उनके साथ बैठकर वह हारमोनियम की ताल पर उनसे ताल मिलाकर इतना आनंदमयी समां बांधता था कि पौ फटने तक लोग सोने का नाम नहीं लेते थे। सारंगी और हारमोनियम के साथ रामदीन की ढोलकी, ये सारे गजल का समां बांध देते थे।

इतने सामाजिक संस्कारों का धनी था नूरदीन लुहार। वह गांव भर में नूरू के नाम से मशहूर था। शाम चार बजे वह ऐरन गरम करता था और कस्सी, खुरपा, दरांती, कुहाड़ियां उसके ऐरन पर देने लिए जाते थे। देर शाम तक हाली अपनी फालियों की नोक पैनी कराते थे। नौ बजे तक उसकी धौंकनी कोयलों को गरम रखती थी। फिर मौहल्ले भर के बच्चे उसे कहानियां सुनाने के लिए घेर लेते थे। उसकी मां लालमिर्च व लहसुन मिश्रित कचरियों की चटनी के साथ रोटियां उसे बच्चों के बीच में ही थमा जाती थी। मां जानती थी कि बच्चे उसका पीछा नहीं छोड़ेंगे। बच्चे भी उसके साथ खाना खाने लग जाते। कहानियों की फरमाईश नूरू को ठीक से खाना भी नहीं खाने देती थी। चटनी और कहानियों के रसास्वादन के बीच बच्चे सो जाते और माताएं और बहनें कंधे से लगाकर उन्हें घर ले जाती थी।

पूरा सामाजिक ताना-बाना एकदम दुरुस्त था। गांव में किसी को भी किसी प्रकार की चिंता नहीं थी। रबी की फसल पक जाने के बाद पूरा गांव उमंग के साथ होली मनाता था। ईद और दीवाली पूरे समाज के सांझा त्यौहार थे।

साल 1947 की त्रासदी ने पूरे के पूरे सामाजिक प्रेम में फूट के बीज बो दिए। सुख-दुख के साक्षी एक-दूसरे के खून के प्यासे हो गए। आजादी की लड़ाई पूरे समाज ने मिलकर लड़ी थी। बंटवारे की तलवार ऐसी लटकी कि जमीन के टुकड़े के साथ ही दिलों का बंटवारा भी हो गया।

गांव के समझदार लोगों को चिंता हुई। मामदीन तांगे वाले ने सबसे पहले जाने की इच्छा जाहिर की। गांव समाज ने बहुत समझाया था। सब तरह की सुरक्षा की जिम्मेदारी ली, लेकिन अज्ञात भय के कारण समझ भी पलायन कर गई थी।

गांव के नौजवान प्रत्येक परिवार को जींद तक सुरक्षित ले जाते थे। आगे फौज-पुलिस का इंतजाम था। नूरू का परिवार आखिर तक जाने को तैयार नहीं हुआ। मेद ने उसे समझाने की कोशिश की।

'नूरू'

'जी चाचा'

'तू क्या समझता है हम तुझे भेजकर खुश हैं। अरे पगले तेरे बिना हमारा काम कैसे चलेगा। कौन हमारे फाली-खुरपे ठीक करेगा। बच्चों को कहानियां कौन सुनाएगा।'

'चाचा जिस मिट्टी में पैदा हुए, खेल कूदकर बड़े हुए, इतना प्रेम आपसे मिला। आगे तो अंधा कुआं है ना! वहां न जाने हमारे साथ क्या होगा? इसी मिट्टी में दफन होने की इच्छा है चाचा।'

'अरे पगले! अभी तेरी लंबी उम्र है। आगे भी मिलते रहेंगे। समय के आगे किसी की कोई तरकीब चली है क्या? जा...! खुश रहना....।'

और मेद की बोलती बंद हो गई। वह फफक कर रो पड़ा। उसने नूरू को गले लगाया। उसके और अपने आंसू पोंछे। साफे का पल्लू आंसुओं से तर हो गया।

और फिर नूरू की विदाई का समय आ गया। उसने अपने बरतन, कपड़े, घन, हथोड़े गांव के घरों में जाकर बांट दिए। गांव के लोगों ने औरतों ने यथायोग्य नकदी व बच्चों के कपड़े नूरू को दिए। दिल्ली से जींद जाने वाली रेलगाड़ी का समय हो गया था। आदमी और औरतें स्टेशन पर गाड़ी में बिठाने गए। सब की आंखें नम थी। कहने-सुनने को कुछ भी नहीं था।

रेलगाड़ी आई। गांव के नौजवानों की टोली नूरू के साथ रेल में बैठ गई। एक बार फिर दोनों तरफ से आंसुओं की बाढ़ आ गई। जिनकी आंखों में अपने सगों की मौत पर भी आंसू नहीं आए थे उनकी आंखों से सावन-भादों बरस रहे थे। गाड़ी चल दी। हाथ हिलाकर दोनों तरफ से अभिवादन के साथ विदाई हुई।

एक अजीब इत्तिफाक हुआ। नूरू की विदाई के समय बच्चे स्कूल में गए हुए थे। वरना आंसुओं का एक सैलाब और झेलना पड़ता। स्कूल से छुट्टी हुई तो नूरू के घर के सामने बच्चों की भीड़ लग गई। ऐरन ठंडा पड़ा था। घर सूना पड़ा था। बच्चे अंदर गए तो घर में कोई नहीं मिला। उनका दिल बैठ गया। बड़े बच्चे तो कई दिन से पलायन देख रहे थे। उनकी समझ में बात जल्दी आ गई थी। छोटे बच्चे अवाक् थे। समय जैसे ठहर गया हो। किशना घर पहुंचा

'मां'

'......'

'नूरू कहां गया?' किशना सहमा हुआ था।

'नूरू चला गया।'

'कहां'

मां किशना को कुछ नहीं समझा पाई। वह रो पड़ी। किशना भी मां से लिपटकर रो

पड़ा। नूरू किशना के लिए एक थाली दे गया था।

धीरे-धीरे बिना समझाए ही मामला सब की समझ में आ गया। और फिर आ गया 15 अगस्त। देश का पहला स्वतंत्रता दिवस। पहले दिन स्कूल में फरमान जारी हुआ कि सब बच्चे खाकी कमीज और खाकी निक्कर पहनकर आएंगे और हाथ में तिरंगा झंडा लेकर आएंगे।

किशना के पास चौसी (खद्दर) की निक्कर और सफेद कमीज थी। मां ने उनको खाकी रंग में रंग दिया। साथ ही मां ने बड़े सफेद कागज पर तिरंगा झंडा बना दिया। गेरू पीसकर ऊपर का हिस्सा केसरिया रंग का बना दिया। कोंधरे के पत्तों को पीसकर नीचे हरा रंग बना दिया और बीच में काली पेंसिल से अशोक चक्र बना दिया। गेहूं के आटे की लिहाई बनाकर लंबे सरकंडे में लिहाई से चिपका दिया।

दुआ के मैदान में लंबे पोल पर स्कूल के तिरंगे में बच्चे फूल बरसने के लिए बेताब थे।

हैडमास्टर जी ने तिरंगे की रस्सी खींची। फूल बरसे। भाषण भी दिया। देश के दो टुकड़े हुए, यह भी बताया। साथ ही बताया गया कि अब देश आजाद है। हमारा शासन होगा। अब अंग्रेज चले गए हैं।

हवा बंद थी। तिरंगा शांत था। शायद तिरंगा उदास था। किशना भी उदास था। वह सोच रहा था। अंग्रेज चले गए। नूरू भी तो चला गया। उसका बाल मन आहत था।

नूरू की दी हुई थाली में ही किशना खाना खाता था। थाली की कलई उतर चुकी थी। दादा ने उसे बताया था कि थाली में उर्दू भाषा में नूरू लिखा हुआ था। यह नूरू का नाम लिखा हुआ था। मां ने थाली की कलई करा दी थी। थाली चमक रही थी। कलई करने के बाद थाली में नूरू का नाम धुंधला पड़ गया था। सुए से खुरच कर किशना ने नूरू का नाम फिर से उजागर कर दिया था। आठवीं कक्षा के बाद किशना जिला मुख्यालय के स्कूल में पढ़ने चला गया था। वहीं छात्रावास में रहने लगा। नूरू की थाली पुरानी पड़ चुकी थी। एक किनारे में तरेड़ आने से मांजते समय मां का हाथ कट गया था।

दूसरे बरतनों के साथ मां ने वह थाली भी फूट में बेच दी थी। किशना घर आया तो मां से पूछने लगा :

'मां...'

'बोलो बेटा'

'नूरू की थाली कहां है?'

'बेटा उसमें तरेड़ आ गई थी। उसे मैंने फूट में बेच दिया। किशना उदास हो गया। वह सोच रहा था....'

'नूरू की थाली भी चली गई। अब उसके पास नूरू की यादें, उसकी कहानियां और उसकी मुस्कुराहट रह गई, जिसे कोई नहीं मिटा सकता।'

उसे कबीर का दोहा याद आ रहा था

प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय
राजा प्रजा जेहि रूचै शीश देय ले जाए

सीस में प्रक्षेपित अहंकार को त्याग दो, तभी प्रेम का अहसास हो सकता है। प्रेम का कोई विकल्प नहीं है।

1407/21, प्रेम नगर, रोहतक (हरियाणा)
सम्पर्क-94162-87787

साक्षात्कार

याद आते हैं पुराने दोस्त

नानक चंद से चंद्र त्रिखा की बातचीत

नानक चंद की उम्र उस समय 21 साल रही होगी, जब पाकिस्तान के नूरगढ़ गांव जिला मुल्तान में उनके गांव पर मुसलमानों ने हमला बोल दिया। पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के अलग-अलग होने की फुसफुसाहट कई दिनों से चल रही थी लेकिन नानक चंद को इन बातों से कोई सरोकार नहीं था और वे अपने पिता के साथ दुकान पर कारोबार में हाथ बंटाते थे। अचानक एक दिन पिता ने गांव छोड़ने का ऐलान कर दिया। बच्चे सहम गए। नानक चंद के भी परिवार में छोटे भाई स्कूल (पाठशाला) गए हुए थे, उन्हें बीच में घर बुलाया गया। इस बीच मुसलमानों की टोलियां उनकी ओर बढ़ने लगीं। नानक चंद बताते हैं कि एक बार ऐसा लगा कि उनके लालाजी (पिता) उन्हें अकेले छोड़कर भागने की फिराक में हैं लेकिन बच्चों और महिलाओं ने उनके आगे अपनी सुरक्षा की दुहाई मांगी। हालांकि उनके पिता ऐसा नहीं चाहते थे कि वे बच्चों को छोड़कर जाएं किंतु हालात के बयान यही थे। खैर ऐसा नहीं हुआ और नानक के पिता ने अपने हमउम्र लोगों के साथ कुछ मुसलमान मौजिज लोगों से बात की ताकि वे वहां से सुरक्षित निकल सकें। बात बन गई और कुछ मुसलमान लोग आगे बढ़े तथा उन्हें कुत्तापुर के रास्ते टिब्बा सुल्तानपुर तक छोड़ गए। हालांकि उपद्रवी अपने इरादों से बाज नहीं आए और गांव के चार लोगों को वहीं मार दिया। एक-दो पठानों ने भी इनकी मदद की। बैलगाड़ी और पैदल लोगों का जत्था लाहौर की ओर बढ़ने लगा। सामने से आई हिन्दुस्तान की फौज ने उन्हें ट्रकों व रेलगाड़ियों से लाहौर से आगे हिन्दुस्तान के अलग-अलग शहरों में भेजा। 90 साल की उम्र में नानक चंद शाहपुर बेगू (सिरसा) में अपने घर पर निरंतर रेडियो सुनते हैं। खासतौर पर जब पाकिस्तान से जुड़ी खबर आती है तो उन्हें कहीं कुछ छूटी हुई चीजें याद आती हैं। उन्हें अपने मुसलमान साथी रसूल खां तथा गुलाम कादिर भी याद आते हैं और उन्हें लगता है कि शायद वे अब इस दुनिया में नहीं हैं। शाहपुर बेगू में ही रह रहे दौलत राम भी अब काफी वृद्ध हो गए हैं। उन्हें याद है 1947 का एक मंगलवार जब उनके गांव कोटला दिलबरदा के पड़ोसी गांव पजीवाला को उपद्रवियों ने आग लगा दी। हादसे में गांव के लगभग सभी लोग स्वाहा हो गए। इससे भयभीत दौलत राम के परिवार ने भी अन्य लोगों के साथ गांव छोड़ दिया। पाकिस्तान की पाठशाला में 8 जमात पढ़े दौलत राम बताते हैं कि जैलदारों ने उन्हें परमिट दिलवाए और लाहौर से पहले कान्हा-काशा स्टेशन तक भिजवाया। वहां पहले से ही भारत की फौज मौजूद थी, जिसने उन्हें भारत की सीमा तक पहुंचाया। दौलत राम जब करनाल के तरावड़ी शहर में आ गए और मेहनत मजदूरी करने लगे।

साभार-वे 48 घंटे-डा. चंद्र त्रिखा

अवाम का कवि उस्ताद दामन

एस.के.सेठी

'भावें मूहों ना कहिये, पर व्हिच्चों व्हिच्ची
खोए तुसी वी ओ, खोए असी वी आँ
इन्हाँ अज़ादियाँ हत्थों बरबाद होणा,
होए तुसी वी ओ, होए असी वी आँ
कुछ उमीद ऐ ज़िन्दगी मिल जावेगी,
मोए तुसी वी ओ, मोए असी वी आँ
ज्यूंदी जान ई मौत दे मूँह अन्दर,
ढोए तुसी वी ओ, ढोए असी वी आँ
जागण वाल्याँ रज्ज के लुट्या ए,
सोए तुसी वी ओ, सोए असी वी आँ
लाली अखियाँ दी पई दसदी ए,
रोए तुसी वी ओ, रोए असी वी आँ।'

1950 में दिल्ली में हुए हिन्द-पाक मुशायरा में जब उस्ताद दामन ने ये कविता कही तो बहुत सी आँखें नम हो गईं, कुछ लोग सुबक पड़े तो कुछ रो दिए। विभाजन के घाव तब हरे थे और लोगों के मन भारी। सुन कर हर कोई अश-अश कर उठा। उस मुशायरे में जवाहरलाल नेहरू भी मौजूद थे। उन्होंने उस्ताद दामन से विनती की कि वे भारत में ही बस जाएँ पर वे न माने और कहने लगे कि लाहौर उन से नहीं छुटेगा। वहीं पैदा हुए, बड़े हुए,वहीं रहेंगे और उसी मिट्टी में मौत की आग़ोश में चले जाएँगे।

दिल में उतर जाने वाली ऐसी ही कविता कहते थे उस्ताद दामन। वे सदा हिन्दू-मुस्लिम-सिख एकता के अलमबरदार रहे और देश के बंटवारे के ख़िलाफ़।

उस्ताद दामन (असली नाम चिराग़ दीन) का जन्म 1911 में लाहौर में हुआ था। उन की माँ धोबी का काम करती थी, पिता रेलवे में मुलाज़िम थे और साथ ही ख़ाली वक्त में सिलाई का काम भी करते थे। दामन पिता के सिलाई के काम में उन का सहयोग बचपन से ही देते चले आए थे। मैट्रिक पास कर लेने के बाद जब दामन को कोई नौकरी न मिली तो वे पूरी तरह से सिलाई के काम में लग गए। वे अक्सर कहते थे कि माँ के व्यवसाय के कारण उन का मन निर्मल और सोच साफ़ है, और पिता के काम की वजह से वे ज़िन्दगी के टुकड़ों की सिलाई कर के उन्हें जोड़ने का काम करते हैं।

कपड़ों की सिलाई करते समय उस्ताद दामन अपनी कविताएँ गाते रहते थे और इस बात के लिए वे लाहौर के अपने पड़ोसी मोहल्लों में मशहूर थे। 1930 में लाहौर के एक प्रमुख मुस्लिम कांग्रेसी नेता ने उन्हें एक सूट सिलने के लिए दिया और जब उंन्होंने उस्ताद को गाते हुए सुना तो वे बहुत ज्यादा प्रभावित हुए। उन्हीं दिनों लाहौर में कांग्रेस एक बहुत बड़ी सभा करने जा रही थी। उन नेता ने उस्ताद दामन को उस सभा में अपना कलाम सुनाने के लिए निमन्त्रण दिया। उस बड़े जलसे में इन की कविता को बहुत पसन्द किया गया और उन का बड़ा नाम हुआ। उसी जलसे में जवाहरलाल नेहरू भी मौजूद थे। उन्होंने उस्ताद को आज़ादी के शायर का ख़िताब दिया और



ईनाम से भी सुशोभित किया। इस घटना के बाद इन की प्रसिद्धि उत्तर भारत में फैलनी शुरू हुई।

अधिकतर कविताएँ उस्ताद दामन पंजाबी ज़ुबान में ही कहते थे। लेकिन उन के कलाम में उर्दू की शायरी भी ख़ूब मिलती है। उन की असली प्रसिद्धि मुशायरों और जलसों में अपना कलाम सुनाने के कारण जन-जन तक पहुँची। ये उनके चाहने वाले श्रोता ही थे जिन्होंने उनके गुज़र जाने के बाद उन की कविताओं को संकलित किया। उनकी पहली किताब 'दामन दे मोती' शाहमुखी में ही प्रकाशित हुई। लेकिन यह सब उन के देहान्त के बाद हुआ। पाकिस्तान सरकार की सोची-समझी नीति प्रान्तीय भाषाओं और क्षेत्रीय संस्कृतियों की मुख़ालफ़त कर के उनके आगे बढ़ने में रुकावट पैदा करने की रही थी। पंजाबी और पंजाबियत भी इसी उपेक्षा का शिकार हुए लेकिन उस वक्त का पंजाबी साहित्य बहुत समृद्ध था और अधिकतर शाहमुखी में प्रकाशित हो कर जन-जन तक पहुँचता था। पंजाबी साहित्य के महान लेखकों में बाबा फ़रीद, बुल्ले शाह, वारिस शाह और समान्तर कवि शाहमुखी में छपते थे। अख़बार और रिसालों में भी कविता ख़ूब छपती थी। ये सब शाहमुखी में ही छापा और पढ़ा जाता था।

यहाँ 'शाहमुखी' और 'गुरुमुखी' लिपियों का अन्तर जानना ज़रूरी होगा। अगर पंजाबी ज़ुबान को फ़ारसी-अरबी के अक्षरों में लिपिबद्ध किया जाए तो उसे 'शाहमुखी' कहेंगे और अगर उसी ज़ुबान को 'गुरुमुखी' लिपि में लिखा और छापा जाए तो उसे गुरुमुखी कहा जाता है। पाकिस्तान में पंजाबी साहित्य अब भी

शाहमुखी में छापा और पढ़ा जाता है जब कि भारत वाले पंजाब में यह सब गुरुमुखी लिपि में होता है। शाहमुखी दरबार और कचहरी की परम्परागत लिपि रही है जब कि सिख धर्म के प्रचार-प्रसार के साथ-साथ गुरुमुखी का प्रचलन बढ़ने लगा और धार्मिक रचनाएँ उस में छपने लगीं। यहाँ यह भी जान लेना ज़रूरी है कि शाहमुखी 'मुसलमान' हो गई और गुरुमुखी 'सिख' क्योंकि सरकारी नीतियों ने ऐसा ही किया।

उस्ताद दामन के कलाम का शाहमुखी में छपना और उस की लोकप्रियता एक सीमा में ही बंधे रहना उस्ताद की सीमित प्रसिद्धि के लिए बड़े तौर पर ज़िम्मेदार था। आज़ादी के कुछ समय बाद उस्ताद का कलाम पंजाब (भारत) में भी गुरुमुखी में छपने लगा और सराहा गया। इन सभी कोशिशों के पीछे पंजाबी प्रवासी भारतीयों और विश्वविद्यालयों का विशेष योगदान रहा है।

1911 में ही फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ का जन्म काला कादर, ज़िला सियालकोट में हुआ। यह वही साल था जिस में दामन पैदा हुए। फ़ैज़ उर्दू में कहते थे और दामन पंजाबी में। दोनों अपने-अपने क्षेत्र में एक ऊँचा स्थान रखते हैं। दोनों बहुत अच्छे मित्र रहे और इन दोनों में लम्बी मुलाकातें भी होती रहती थीं। फ़ैज़ साहब दामन को अपना उस्ताद या मेन्टर मानते थे। जैसे दोनों जीए संग-संग, तो मरने में भी फ़ैज़ दामन से केवल 13 दिन पहले गुज़रे और उनकी इच्छा के अनुसार उनका जनाज़ा दामन के घर से हो कर ही कब्रिस्तान ले जाया गया। उस्ताद दामन उन दिनों काफ़ी बीमार थे और हस्पताल में दाख़िल थे। वहीं से वे रिक्शा लेकर कब्रिस्तान जा पहुँचे। मित्रों ने जब उन्हें देखा तो कहा कि ऐसी हालत में आप को नमाज़-ए-जनाज़ा में नहीं आना चाहिए था। उस्ताद ने कहा कि मन नहीं माना और चला आया। और 13 दिन बाद उस्ताद दामन भी इस जहान-ए-फ़ानी से कूच कर गए।

फ़ैज़ साहब से जब किसी ने पूछा कि उन्होंने पंजाबी में कविता क्यों नहीं की,तो उन का जवाब था-पंजाबी में सुलतान बाहू,बाबा बुल्ले शाह, फ़रीद और वारिस शाह जैसे कद्दावर कवि हुए हैं और वर्तमान युग में तो उस्ताद दामन ही उनके कद के कवि बैठते हैं। ऐसे में मेरा उर्दू की ओर जाना ही मुनासिब था।

अपनी शायरी में दामन ने पंजाब के सभी रंगों को बख़ूबी उजागर किया है। उन की कविता में व्यंग्य और कटाक्ष ख़ूब नज़र आता है। वे हमेशा सच्चाई का पक्ष लेते, और पूरे ज़ोर से लेते। झूठ, फ़रेब और बेईमानी की खुलकर मुख़ालफ़त करते। दामन हमेशा ग़रीबों, किसानों, मज़दूरों और दबे-कुचले वर्गों के हक़ में आवाज़ बुलन्द करते रहे। वे पंजाबी को उसका सही स्थान दिलाने के लिए उम्र भर संघर्षरत रहे। नेताओं द्वारा साज़िश कर पंजाबी को देश-निकाला दे कर उसकी जगह उर्दू को सरकारी भाषा बनाने वाले सरपरस्तों को जम कर कोसते और उन का विरोध करते रहे। वे कहते हैं कि वे उर्दू ज़ुबान के ख़िलाफ़ नहीं हैं लेकिन पंजाबी को उस की माँ-बोली के हक़ से वंचित करना बिल्कुल अनुचित है। उनकी सोच दोनों पंजाबों में एक पुल का काम करती रही।

फ़ैज़ साहब और दामन, दोनों का कलाम आवाम के हक़ की बात करता है। दोनों की सोच साम्यवादी विचारधारा से प्रभावित थी और दोनों सदा ही मुल्क की आज़ादी की बात करते थे। देश के विभाजन के विरुद्ध दोनों खुल कर बोलते थे। दोनों मित्र प्रगतिशील लेखक आन्दोलन से जीवन भर जुड़े रहे लेकिन कुछ मुद्दों पर दोनों अलग-अलग भी खड़े नज़र आते हैं। जहाँ फ़ैज़ ने उर्दू साहित्य में नाम कमाया और अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर अपना स्थान बनाया, कई-कई भाषाओं में उन का अनुवाद हुआ, वहीं दामन पंजाबी में कविता कहते और पंजाबी बोलने वालों में उन का एक अलग और ऊँचा स्थान रहा। जहाँ फ़ैज़ साहब की किताबें उन के जीवन में ही प्रकाशित होनी शुरू हुईं, वहीं उस्ताद की पहली किताब उन की मौत के बाद शाहमुखी में प्रकाशित हुई। फ़ैज़ साहब ने काफ़ी समय तक उत्तर भारत के एक अग्रणी अंग्रेज़ी अख़बार का सम्पादन किया और इस से पहले वे फ़ौज में ऊँचे पद पर भी रहे, वहीं दामन अपनी ज़िन्दगी मुफ़लिसी में काटते रहे। फ़ैज़ साहब अपनी आलोचना में सौम्य, शालीन और नर्म भाषा का प्रयोग करते - वहीं दामन साफ़, स्पष्ट और चुटीली भाषा में खुली आलोचना करते थे। इसी कारण सरकार से उन की कभी नहीं पटी। सज़ा का ख़ौफ़ भी उन को साफ़गोई से कभी न रोक पाया। भुट्टो ने जब शिमला समझौते पर हस्ताक्षर किए तो उस्ताद कह उठे -

कदी शिमले जाना एँ
कदी मरी जाना एँ*
लाही खेस जाना एँ
खिच्ची दरी जाना एँ
ऐ की करी जाना एँ?
ऐ की करी जाना एँ?

धसा धस जाना एँ
धुसा धुस जाना एँ
जित्थे जाना एँ तूँ
बन के जलूस जाना एँ
ऐ की करी जाना एँ?
ऐ की करी जाना एँ?

कदी चीन जाना एँ
कदी रूस जाना एँ
बन के तूँ अमरीकी
जसूस जाना एँ
ऐ की करी जाना एँ?
ऐ की करी जाना एँ?

लाही कोट जाना एँ
टंगी बाह्वाँ जाना एँ
उडाई कौम दा तूँ
फलूस जाना एँ
ऐ की करी जाना एँ?
ऐ की करी जाना एँ?

(*मरी - एक हिल स्टेशन का नाम)

इस कविता के बाद ज़ुल्फ़िकार अली भुट्टो उस्ताद से कितना राज़ी हुए होंगे, इस का अन्दाज़ा बख़ूबी लगाया जा सकता है। इस कविता के बाद उस्ताद पर बम बरामदगी का केस बना -

स्टेजाँ ते आइये, सिकन्दर होईदा ए
स्टेजों उतर के, कलन्दर होईदा ए
उलझे जे दामन! हकूमत किसे नाल
बस ऐना ई हुन्दा, अन्दर होईदा ए

सानूँ कोई शिकस्त नहीं दे सकदा
भावें कोई किड्डा दम-ख़म निकले
उस्ताद दामन दे घर देख्या जे
दो रिवाल्वर ते दो दस्ती बम निकले

भुट्टो के बाद ज़िया-उल-हक़ द्वारा मार्शल लॉ लगा दिया गया। ज़िया-उल-हक़ और फ़ौजी हुकूमत के बारे में उस्ताद दामन ने क्या ख़ूब कहा है

मेरे मुल्क दे दो ख़ुदा
ला इला ते मार्शल लॉ
इक रहन्दा ए अर्शाँ उत्ते
दूजा रहन्दा फ़र्शाँ उत्ते
ओदा नाँ ए अल्ला मीयाँ
एदा नाँ ए जनरल ज़िया
वाह बई वाह जनरल ज़िया
कौन कहन्दा तैनूँ एत्थों जा।

साडे देश दियाँ मौजाँ ई मौजाँ
चारों पासे फ़ौजाँ ई फ़ौजाँ
लक्खाँ बन्दे कैदी हो के
अद्धा देंदे मुल्क गवा
वाह बई वाह जनरल ज़िया
कौन कहे तैनूँ एत्थों जा।

जब देश का विभाजन हुआ तो पाकिस्तान के दो भाग थे - एक पश्चिमी पाकिस्तान और दूसरा पूर्वी पाकिस्तान (अब बांग्लादेश)। तब उस्ताद सहज ही कह उठे

पाकिस्तान दी अजब ऐ वण्ड होई
थोड़ा एस पासे थोड़ा उस पासे
इन्हाँ जराहाँ नी की ए इलाज करना?
मरहम एस पासे फोड़ा उस पासे
असाँ मन्ज़िल मक़सूद ते पौंचना की
टाँगा एस पासे घोड़ा उस पासे
एत्थे ग़ैरत दा की निशान दिस्से?
जोड़ा एस पासे जोड़ा उस पासे

विभाजन को आम आदमी धर्म से जोड़ कर देखता है लेकिन उस्ताद की अन्तर्दृष्टि कुछ और ही कहती है

वाघे नाल अटारी दी नहीं टक्कर
ना गीता नाल क़ुरान दी ए
नईं कुफ़र इस्लाम दा कोई झगड़ा
सारी गल्ल इह नफ़े नुक़सान दी ए

रोटी रोज़गार के लिए लोग क्या क्या खेल रचाते हैं और असलीयत सामने न आए, उस के लिए कैसे कैसे उपाय करते हैं, यह बात उस्ताद की नज़रों में बिल्कुल साफ़ है और वे इसे यूँ कहते हैं -

पेट वास्ते बांदराँ पाई टोपी
हथ जोड़ सलाम गुज़ारदे ने
पेट वास्ते हूर ते परीज़ादाँ
जान जिन्न ते भूत तों वारदे ने
चीर-फाड़ के बन्दे नूँ खाण जेहड़े
रिच्छ नचदे व्हिच बज़ार दे ने
पंछी जंगलों तुरे ने शहर वल्ले
दुनियादार पए चोग खिलाँवदे ने
दौलत किसे दी, रात नूँ जाग के ते
चौकीदार पए हाकराँ मारदे ने
भार इट्टाँ दा सिराँ ते चा के ते
बेघरे पए महल उसारदे ने

उस्ताद दामन की राजनैतिक सोच उस समय की कांग्रेस की सोच के बहुत निकट लगती है। यूनियनिस्ट और मुस्लिम लीग के लोग उन की बहुत मुख़ालफ़त करते थे क्योंकि उस्ताद दामन विभाजन के ख़िलाफ़ अपनी आवाज़ रखते थे। उस्ताद की नज़रों में महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान हीरो के रूप में विराजमान थे। यह सोच उन की कविता 'महात्मा गांधी दे फ़ल्सफ़े दे चर्चे' में बख़ूबी देखी जा सकती है

महात्मा जी दे फ़ल्सफ़े दे चर्चे
इंज ने व्हिच जहान हो गए
तोपाँ उत्ते ढिंढोरची शांति दे
कदे मंत्री कदे परधान हो गए
खोह-खुंज के मुल्की रियासताँ नूँ
आप्पे एशिया दे निगेहबान हो गए
ऐसे ज़ोम अन्दर मेरे देस आए
ऐत्थे आउन्द्याँ ई परेशान हो गए
आ गई जाग ऐथर किते सुत्याँ नूँ,
उठे, उठ के ते सावधान हो गए
बुढे बुढे नूँ नशे जवानियाँ दे,
अते बच्चे वी शेर जवान हो गए

सिन्धी नाल पंजाबी ते बलोच सारे,
बंगालियाँ नाल पठान हो गए
मेरे देस दी पाक सरहद उत्ते,
वेखो ! वैरियाँ दे कब्रिस्तान हो गए
कब्रिस्तान ताँ होन्दे ने मोमनाँ दे,
बोलो राम दे एत्थे शमशान हो गए
ऐदों वद्धके मोजज़ा की होर होणा?
दामन जए दिलों मुसलमान हो गए

उस्ताद मानते थे कि धार्मिक संकीर्णता में कुछ नहीं मिलना है। यह बात इस कविता से साफ़ हो जाएगी -

मस्जिद मोतियाँ भावें जड़ी होवे,
नहीं हिन्दू ते इक वी जांदा
मन्दिर व्हिच पवे झलक काब्याँ दी,
मुसलमान दा इक नहीं जी जान्दा
इह्नाँ दोह्नाँ तों जिह्ड़े पए रहन लड़दे,
भला उह्नाँ दा, एह्दे च की जान्दा?
चंगा सी मैख़ाने बना देन्दे
जिह्दा जी करदा, ओही पी जान्दा

उस समय लाहौर फ़िल्में बनाने का एक बड़ा केन्द्र था। यहाँ पंजाबी फ़िल्में बड़ी संख्या में बनती थीं और उत्तरी भारत में ख़ूब देखी जाती थीं। उस्ताद ने कुछ फ़िल्मों के लिए गाने लिखे। उन में ख़ास कामयाब होने वाली फ़िल्म 'चन्न वे' थी, और उन का लिखा एक गाना 'बच जा मुण्ड्या मोड़ तों, मैं सद्के तेरी टोर तों' बहुत लोकप्रिय हुआ। पंजाब और दिल्ली में यह गाना बच्चे-बच्चे की ज़ुबान पर था। रेडियो और अन्य पार्टियों में इसे ख़ूब बजाया जाता था। इसी फ़िल्म का एक और गाना बहुत अर्थपूर्ण है। 'ए दुनिया मण्डी पैसे दी/ हर चीज़ विकेन्दी भा सजणाँ एत्थे रोन्दे चेहरे विकदे नहीं, हसणे दी आदत पा सजणाँ'। उस्ताद के लिखे फ़िल्मी गीत अर्थपूर्ण होते थे और उनमें संगीत और सन्देश दोनों मिलते थे।

जीवन भर उस्ताद दामन तानाशाही, सैनिक शासन, भ्रष्टाचार और झूठे दिखावे के घोर विरोधी रहे। वे आज़ादी के लिए और विभाजन के ख़िलाफ़ लड़ते रहे। उन का विश्वास था कि आज़ादी पाने के लिए हिन्दू-सिख-मुस्लिम एकता ज़रूरी है और धर्म के ठेकेदारों पर वे बहुत गहरा कटाक्ष करते हैं। वे मानते थे कि हिन्दुस्तानियों को धर्म के नाम पर विभाजित करना आज़ादी की लड़ाई को कमज़ोर करता है। सच तो यह है कि उस्ताद दामन जैसे कवि को आने वाली नस्लें उस पद पर नहीं नवाज़ पाईं जिस के वे हक़दार थे और यह भी सच है कि अब हमारी याद में से वे निकलते जा रहे हैं। इस के लिए पंजाब के टुकड़े होना, पंजाबी भाषा का शाहमुखी और गुरुमुखी, अलग-अलग लिपियों में प्रकाशित होना ही ज़िम्मेदार हो सकता है। लेकिन ये बात स्पष्ट है कि उस्ताद दामन एक पैनी नज़र वाले सच्चे इन्सान और श्रेष्ठ कवि थे। भाषा को जानने वाले, तथा खरी और खोटी बात में फ़र्क़ को समझने वाले लोग आने वाले समय में दामन को एक ऊँचा स्थान देंगे।

इस लेख में प्रस्तुत तथ्य अन्य स्रोतों के अलावा निम्नलिखित पर भी आधारित हैं

Blog:Junglee Pudina Article : The Poets we Remember, The Poets we Forget' (http://www.junglipudina.com/2011/12/poets-we-remember-poets-we-forget.html)

Article - Poetry of Ustad Daman by Fowpe Sharma
http://www.revolutionarydemocracy.org/rdv11n2/daman.htm

Article -Ustad Daman: The People's Poet by Dr. Afzal Mirza
http://drafzalmirza.blogspot.in/2006/05/ustad-daman-peoples-poet.html

सम्पर्क-94165-13841

फ़साद की इब्तिदा

मौलाना लिकाउल्लाह, अनु. रमेश पुहाल

मौलवी लिकाउल्लाह स्वतंत्रता सेनानी थे। दो बार जेल गए। उनके आग्रह पर महात्मा गांधी पानीपत आए। मौलवी लिकाउल्लाह विभाजन के दंगों में पानीपत में घटित घटनाओं के साक्षी थे और जब लोगों के दिलों में नफरत के तंदूर दहक रहे थे, वे अमन और भाईचारा स्थापित करने में जुटे थे। जून 1963 में उन्होंने 'फ़साद की इब्तिदा ' (दंगों का आरंभ) में आंखिन देखी को बेबाकी से उर्दू में बयान किया। प्रस्तुत है रमेश पुहाल द्वारा किए गए अनुवाद का एक अंश-

आखिर अगस्त सन् 1947 से पाकिस्तानी शरणार्थियों की आमद (आना) शुरू हो गई थी जो रोज बरोज़ (दिन-प्रतिदिन) बढ़ती रही। सितम्बर शुरू हुआ, तो पानीपत की फ़िज़ा (हालात) खराब होने लगी। गांधी जी की ये ख़्वाहिश (इच्छा) जरूर थी और दिली जज़्बे (हार्दिक भावना) के साथ थी, के पानीपत में अमन (शांति) रहे मगर हालात दिन-ब-दिन (प्रतिदिन) बिगड़ रहे थे। अक्तूबर में पानीपत की फ़िज़ा (हालात) को दुरूस्त (ठीक) और हालात को काबू में रखने के लिए मौलाना हिफ्ज़ुर्र रहमान साहब, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद और पंडित नेहरू को तवज्जो (अधिक ध्यान) दिलाई गई, वहां से जब कोई जवाब न आया तो तरद्दुद (चिंता) बढ़ गया और अपने छोटे भाई हाजी वक़ाउल्लाह को निहायत ख़तरनाक (अत्याधिक भय भरे) हालात में देहली भेजा। उन्होंने मेरा ख़त (पत्र) और यहां के हालात मौलाना आज़ाद के सामने पेश किए। मौलाना हिफ्ज़ुर्र रहमान साहब, मौलाना सईद अहमद साहब, मौलाना मुहम्मद जाफ़री साहब और हाफ़िज़ मुहम्मद नसीम साहब बटन वाले और दिगर (अन्य) अराकीन (प्रमुख) जमीयत उलमाएं हिन्द (भारतीय मुस्लिम धार्मिक सभा) इस गुफ़्तगू में शरीक (शामिल) थे। 29 अक्तूबर तक जब कोई साहब तशरीफ़ न लाये और शरणार्थियों की कस्रत (अधिकता) की वजह से ख़तरा बढ़ गया शहर पानीपत से बाहर मुसलमान क़त्ल किए जाने लगे तो मैं खुद (स्वयं) 30 अक्तूबर 1947 को चौधरी नारिस अली ख़ां साहब को साथ लेकर देहली पहुंचा। हालात इंतिहाई (अत्याधिक) ख़तरनाक (भयानक) थे।

मौलाना हिफ्ज़ुर्र रहमान साहब से बातचीत हुई। दूसरे रोज मौलाना आजाद से मुलाक़ात हुई। गौरोफिक्र (चिंतन पर, बातचीत, चर्चा) हो ही रहा था के 3 नवम्बर को इत्तिला (सूचना) मिली कि पानीपत में आम कत्लो ग़ारतगरी (मुसलमानों की मार-काट) शुरू हो गई है और मुहल्ला अंसारियान व राजपूतान मुसलमानों से गोरखा मिल्ट्री ने खाली करा लिया गया और यहां के मुसलमानों को मुहल्ला मख़दूम ज़ादगान और मुहल्ला अफ़ग़ानान में मुंतकल (एक स्थान से दूसरे पर भेजा गया) कर दिया गया है और इस तरह कि जो शख़्स (व्यक्ति) जहां था सब कुछ छोड़ कर खाली हाथ वहां से निकाल दिया गया। कोई सामान साथ न ले जा सका। इसकी इत्तिला (सूचना) फौरन मौलाना अबुल कलाम आजाद साहब को दी गई।

मुझको मौलाना आज़ाद साहब ने दूसरे रोज़ बुलाया चुनांचे मैं मौलाना हिफ़्ज़ुर्र रहमान साहब, मौलाना सय्यद मुहम्मद मियां साहब, हाजी मुहम्मद नसीम साहब, डा. ज़ाकिर हुसैन साहब, हाफिज़ फ़य्याज़ अहमद साहब और दूसरे हज़रात (माननीय) जो पानीपत से वतन (शहर) होने का तअल्लुक़ (संबंध) रखते थे, उनकी एक बड़ी जमाअत (वर्ग) मौलाना आज़ाद की ख़िद्मत (सेवा) में पहुंची मौलाना आज़ाद मौसूफ़ (प्रशंसनीय) को हालात सुनाए बहोत ग़म के अंदाज़ में मौलाना आज़ाद मौसूफ़ (प्रशंसनीय) ने फ़र्माया 'आह मेरा पानीपत लुट गया।'

1947 में नवम्बर को आधे शहर में कर्फ्यू लगा हुआ था। मुसलमानों को कैंप एरिया में भेजा जा रहा था। और मुसलमानों को गोलीबारी से भी भूना जा रहा था। ये मैंने यह पहले भी बयान किया है, जहां-जहां हिन्दू भाइयों की बसासत थी उन गली-कूचों के बाहर कपड़े के ऊपर साईन बोर्ड लिखा-लिखा कर टांग दिए गए थे। इन साईन बोर्डों में कतई तौर पर लिखा गया था कि इस कूचे में इस बिरादरी के लोग आबाद हैं। हिन्दू-मुस्लिम फसाद न बन जाए के खतरात (डर) को ध्यान में रखते हुए। गोरखा मिलिट्री ने हिन्दू भाइयों से पूछा कि यहां कोई मुस्लिम परिवार तो नहीं रह रहे, तो जवाब मिलता जो रहते थे वो कैंप वाले एरिये में जा चुके हैं। फिर भी गली-कूचों को चैक किया जाता था।

पानीपत से मुसलमानों को खाली करने का हिन्दू ने दुःख जाहिर किया और इम्दाद भी की। करनाल के डिप्टी कमीश्नर ने मेरे गुजारिश करने पर पानीपत के चार बड़े मुहल्लों की खूब अच्छे से पड़ताल कराई। कुछ नीचे तबके (गरीब वर्ग) के हिन्दुओं के घरों में मुसलमानों को छुपाने की हवा फैली पर गोरखा मिलिट्री को कहीं भी छुपा मुसलमान परिवार नहीं मिला। उन दिनों गरीब हिन्दू कौमों में डर बना हुआ था कि कहीं हमें भी मुसलमान समझ कर गोरखा मिलिट्री यहां से निकलने के लिए न कह दे, तो हमारे खानदानों का क्या होगा और हमारा धर्म क्या होगा।

ऐसी-ऐसी गंभीर बातों को बड़े ध्यान से सोच-समझकर, नीचे तबके के हिन्दुओं की पहचान उनकी इबादत (पूजा) काम धंधों के तौर-तरीकों और गली कूचों के नामों से शिनाख़्त (पहचान) कर उन्हें पानीपत छोड़ने के लिए नहीं कहा जाता था या फिर बड़े सियासी लीडरान की शिनाख़्त (पहचान) कर उनके गली-कूचों से मिलिट्री हटती थी। जब पानीपत मुसलमानों से कतई खाली हो गया, तब यहां सकून आया। कस्टोडियन महकमें और म्युनिसिपल कमेटी ने मुसलमानों के तमाम मकानों पर लिखवा दिया 'ये लोग पाकिस्तान चले गए हैं' यहां तक कि मेरी जायदाद और मौलाना हाली की हवेली पर भी ये ही लिखवा दिया गया था।

कर्फ्यू वाले एरिये में जो मुसलमान काम (गोलियों से मरे) आए। गोरखा मिल्ट्री ने उन लाशों को म्युनिसिपल कमेटी के ख़ाकरोब (सफाई कर्मचारी) जो काफी

तादाद में तैनात थे उठा ठेलों में रख राजपूताना मौहल्ले के कूचा अमीर कचहरी (वार्ड नं. 7 गुरु रविदास मार्ग पर जहां रविदास भवन एवं स्कूल निर्मित है) नजदीक राजपूताना चौराहा (अमर भवन चौक) के पास खाली पड़े मैदान में छोड़ते और गोरखा मिल्ट्री उन लाशों को इकट्ठा कर पेट्रोल डाल जला देते थे। ये सिलसिला तब तक चलता रहा जब तक मुसलमान पानीपत को पूरी तरह खाली नहीं कर गए।

उधर पाकिस्तान से आने वाले हिन्दू शरणार्थियों की भीड़ बढ़ती जा रही थी। मकामी हुक्काम (स्थानीय प्रशासन) शरणार्थियों को रहने को इंतजाम (व्यवस्था) नहीं कर पाया था। जिस वजह से यहां हिन्दू शरणार्थियों में परेशानी बनी। पानीपत के मकामी (स्थानीय) हिन्दू भी बहुत हैरान होते रहे और सोचते और कहते कि अब पता नहीं पानीपत का क्या होगा। लेकिन पानीपत के मकामी हिन्दुओं में मुसलमानों के लिए भाईचारा जैसी मुहब्बत प्यार था। क्योंकि पानीपत के किसी भी हिन्दू भाई ने यहां के मुसलमानों की तरफ उंगली तक न उठाई थी।

अमन की कोशिश

5 नवम्बर को मौलाना आज़ाद ने पंडित नेहरू से मुलाकात की। पंडित जी दफ़्तर तशरीफ़ ले जा रहे थे। उन्होंने फर्माया (कहा) के एक दो आदमी को मेरे पास दफ़्तर में भेज दो जो वहां के हालात तफ़सील (विस्तार पूर्वक विवरण) से बता दे। चुनांचे (जैसा, इस तरह, उदाहरणार्थ) डा. ज़ाकिर हुसैन साहब और ग़ालिबन हाफ़िज फय्याज़ अहमद साहब दफ्तर पहुंचे और पंडित जी को तफ़सीली (विस्तारपूर्वक) हालात सुनाए।

5 नवम्बर को हमारा वफ़्द (प्रतिनिधि मंडल) फिर मज़ीद (और भी) हालात सुनाने के लिए मौलाना आजाद के मकान पर पहुंचा और मौलाना आज़ाद ने गांधी जी से मुलाकात का वक्त मुक़र्रर (समय निश्चित) कराना चाहा। गांधी जी ने फौरन ही बुला लिया। गांधी जी ने बड़े तपाक (तुरंत) से इस्तकबाल (स्वागत) किया और मौहब्बत भरे अंदाज में फर्माया (कहा) भाई लिकाउल्लाह बहोत मुद्दत (समय) के बाद मुलाकात (एक दूसरे से मिलना, भेंट) हुई हम को बिठाया। हमने पानीपत के हालात सुनाने शुरू किए। मौलाना आज़ाद को पानीपत के बरबाद होने का बड़ा कलंक (दुख) था, क्योंकि वो इस गए गुज़रे दौर(समय) में भी तज्वीद (केंद्र) व क़िराअत (हाफ़िजों की परिभाषा में कुशल को शुद्ध उच्चारण और पूर्ण नियम से पढ़ना) और तालीमे कुरान (इस्लामी और धार्मिक कुरान शरीफ को पढ़ना) का बहुत बड़ा मरकज़ (केंद्र) था। मौलाना की ज़बान से इस वक्त भी ये जुमला बेसाख़्ता (तुरंत, एकदम) निकला माथे हाथ पर मारते हुए कहा लुट गया 'आह मेरा पानीपत लुट गया' गांधी जी इससे भी मुत्तासिर (प्रभावित) थे और उनको इस बिनाह (कारण) पर भी अफ़सोस (खेद) था कि पानीपत सनअत (व्यापार) और दस्तकारी (हाथ का काम) का भी एक मरकज़ (केंद्र) था।

तमाम हालात सुनाने और बातचीत के बाद मैंने चलते हुए महात्मा गांधी को हिन्दुस्तान की आज़ादी और मुसलमानों की बरबादी पर मुबारकबाद दी। इस पर महात्मा गांधी जी ने बहुत जोश व जज़्बे (भावना) में तकरीबन (प्रायः) डबडबाई (भीगी) आंखों से जिसका असर तमाम हाज़रीन (उपस्थिति) ने महसूस किया। फर्माया (कहा) कि 'मैं तो पटेल से कहता हूं कि चल पंजाब को देख तेरी बदौलत क्या हो रहा है', ताहम (तथापि) 11 नवम्बर 1947 ई0 को पानीपत तशरीफ (पधारने) लाने का वायदा किया।

रिलिफ सैक्रेट्री को पहले तम्बीह (चेतावनी) की, कि पानीपत के हालात नहीं मालूम किए। मुझे कल तक इत्मीनान (यकीन) दिलाते रहे के, वहां कुछ नहीं है। अब मौलाना लिक़ाउल्लाह साहब से कुछ हालात मालूम हुए। फिर हिदायत की कि आप खुद स्वयं मौलाना लिकाउल्लाह साहब के साथ पानीपत जाएं और वहां के हालात की सही रिपोर्ट पेश करें। ये भी सुना गया था कि 6 नवम्बर की सुबह महात्मा गांधी पानीपत आने के लिए तैयार हो गए थे गाड़ी भी मंगवा ली मगर जब कैबिनेट के अराकीन (प्रतिनिधि मंडल) को मालूम हुआ तो गांधी जी के पास पहुंचे और इस तरह दफ़अतन (अचानक) बिना किसी इंतजाम (प्रबंध) के जाने से बमुश्किल बाज़ (मना) रखा।

बहरहाल सरदार गुरबचन सिंह रिलिफ़ सैक्रेट्री और कुछ साथियों के साथ मैं 6 नवम्बर का दिन गुजार कर रात को 11 बजे पानीपत पहुंचा कर्फ्यू की वजह से रात को लाला खेमचंद रईस सदर पानीपत कांग्रेस के यहां क़याम (ठहरना) किया। सुबह घर पहुंचा ये लोग भी साथ थे, पूरा मोहल्ला एक कैंप बना हुआ था और आहोफ़ुगां (रोना, फरियाद) की सदाएं (आवाजें) हर तरफ से सुनाई दे रही थीं। हमारे पहुंचने के साथ ही एक अमेरिकन डाक्टर (जो बहुेत शरीफ़ और हमदर्द इंसान था) ज़ख़्मियों की मरहम पट्टी और इलाज के लिए पानीपत पहुंच गया था। हाली मुस्लिम हाई स्कूल में शिफ़ाखाना (अस्पताल) कायम (स्थापित) किया गया और अमेरिकन डाक्टर ने बहुेत हमदर्दी से ज़ख़्मियों का ईलाज शुरू किया। यहां आकर मालूम हुआ कि 5 नवम्बर को जब पानीपत में ये ख़बर फैली के यहां महात्मा गांधी आने वाले हैं तो उसके बाद से कत्ल का हादसा देखने में नहीं आया।

मुसलमानों की परेशानी

7 नवम्बर को पानीपत में आमतौर पर ये मालूम हुआ कि कर्फ्यू की वजह से आटे की मशीनें बंद हैं। न कहीं ग़ल्ला (अनाज) और आटा मिल रहा है और न तेल दस्तयाब (प्राप्त) हो रहा है। शहर में किसी के पास भी आटा नहीं था। चने और गेहूं उबाल कर लोग खा रहे हैं। नमक, तेल, गुड़ कोई चीज भी नहीं है, सब बंद हैं। कहा जाता है कि शहर के दुकानदारों ने फैसला कर लिया था कि अगर किसी मुसलमान के हाथ एक पैसे की चीज भी फ़रोख़्त (बेची गई) तो पांच रुपए का जुर्माना किया जाएगा।

डिप्टी कमीश्नर, इलाका मैजिस्ट्रेट रौशन लाल और राशन कंट्रोल आफिसर ने फौरन चक्की चलाने वाला तेल काफी मिक़्दार (मात्रा, तोल) में मेरे हवाले किया और चक्की चलाने वालों पर से कर्फ्यू हटा दिया गया ताकि रात को चक्कियां चल सकें। ग़ल्ले (राशन डिपो) की दुकानें कायम (स्थापित) की गई और बेहमदिल्लाह (ईश्वर की प्रशंसा) 8 नवम्बर को मुसलमानों को रोटी नसीब हो सकी।

अजीब बात ये हुई कि दाल, नमक, गुड़ वगैरा ज़रूरत की चीजें जिनसे मुसलमान महरूम (निराश) हो गए थे वो रिफ़्यूज़ियों (शरणार्थी) ने फ़राहम (उपलब्ध) की और कलंदर साहब के चौक में दुकानें लगाकर बैठ गए। मुसलमान इनसे ख़ौफज़दा (डरे हुए) थे। वो अपनी ज़रूरत की चीजें देखते थे, मगर वहां जाते हुए उनको वहशत (आदमियों से भड़कना) होती थी। उन्होंने उनसे शिकायत की मैं असिसटेंट डिप्टी कमीशनर और थानेदार वगैरा अफसरान (अधिकारियों) को लेकर वहां पहुंचा। हमने

इन दुकानदार शरणार्थियों से गुफ्तगू (बातचीत) की। हमें अंदाजा हुआ कि वो गरीब भी अपनी जरूरियात (आवश्यकताएं) फ़राहम (उपलब्ध) करने के लिए यहां बैठे हैं। चुनांचे हमने मुसलमानों को समझाया कि घबराने की बात नहीं है, वो भी तुम्हारी तरह जरूरतमंद हैं वो तुम्हारी जरूरत की चीजें तुम्हारे हाथ बेच कर अपनी ज़रूरतों के लिए पैसा कमाना चाहते हैं। आप इत्मीनान (संतुष्टि, विश्वस्त) से जाएं और ख़रीद फ़रोख़्त करें। बहरहाल नौ-दस दिन के बाद मुसलमानों को उनकी जरूरत की चीजें मयस्सर (पहुंची) और लुत्फ़ (दया, मज़ा) ये है कि इन्हीं शरणार्थियों के ज़रिए जो इनके खून के प्यासे बन कर यहां पहुंचे थे। कफ़न के लिए कपड़ा और आमतौर पर मिट्टी का तेल और नमक की जरूरत पूरी करने के लिए शहर के सब जज वगैरा मुताईय्यन (चुने) किए गए। और शहरी इंतजाम (व्यवस्था) ठीक तौर पर चलने लगा।

गांधी जी का आना

11 नवम्बर को हस्बे वादा (वचन अनुसार) महात्मा गांधी, डा. जाकिर हुसैन हजरत मौलाना आजाद, मौलाना सईद अहमद साहब, मौलाना हिफ़्जुर्र रहमान साहब, सैयद मोहम्मद साहब जाफरी, हाफिज मोहम्मद नसीब साहब बटन वाले और जमीयत उलमा-ए-हिन्द के दूसरे जिम्मेदार हज़रात पानीपत तशरीफ लाए। यहां के हालात का जायजा लिया। लाला खेमचंद जो यहां की कांग्रेस के बड़े लीडर और सदर भी थे। इनसे दरयाफ़्त (जानकारी प्राप्त करना) किया किआप लोगों की मुसलममानों से कैसी गुज़रती थी। अभी वो जवाब देने भी नहीं पाए थे के एक वकील साहब बोल पड़े हमेशा लड़ाई-झगड़े में। तब लाला खेम चंद ने फर्माया कि 'हमारी लड़ाई दो भाईयों की लड़ाई होती थी। सुबह को लड़े और शाम को गले मिल लिये और हमारे ताल्लुकात (व्यवहार) बहुत अच्छे थे।' मुसलमानों में से एक साहब ने हुक्काम (सरकारी अधिकारी) की मद्देह सराई (प्रशंसा) शुरू कर दी। जो ख़िलाफे वाक्या (घटनाओं के विरोधी) थी लोगों को अच्छा मालूम नहीं हुआ ताहम (इस पर) महात्मा जी पूरे हालात से बाख़बर होकर वापिस तशरीफ ले गए और मुसलमानों का इनख़ला (खाली होना) पाकिस्तान से आए हुए लोगों के जरिए शुरू हो गया।



ताज्जुब

एक बात बहुत ताज्जुब (आश्चर्य) की है कि मुस्लिम लीग वाले मेरे सख्त मुख़ालिफ़ (विरोधी) थे। हत्ता (यहां तक) कि कत्ल करने के लिए तैयार थे। लेकिन पाकिस्तानी हुकूमत और उनके अफ़्सरान को जब ये मालूम हुआ कि मुसलमानों के पास आटा और दिग़र (अन्य) ज़रूरियात (आवश्यकताओं) की चीजें नहीं हैं तो उन्होंने तकरीबन 70 बोरी आटा और मरीजों के लिए डाक्टरी अदवियात (दवाईयां) मेरे ही नाम भेजीं और ख़ासतौर पर वहां के रिलिफ़ कमेटी के अफसर ने मुझको ख़त लिखा कि ये तमाम (सभी) चीजें आप अपने तौर पर से मुसलमानों में तक्सीम (बंटवाएं) करें।

मुसलमानों के इन्ख़िलाअ का फैसला

(मुसलमानों का पानीपत छोड़ने का निश्चय)

रफ्ता-रफ्ता (धीरे-धीरे) कानवाइयों (सुरक्षा की टुकड़ियां) के जरिए इन्ख़िलाअ (खाली करना) हो रहा था। पाकिस्तानी दोस्त अगरचे (भले ही) मुझसे ख़फ़ा (नाराज) भी थे और ग़ालिबन (शायद) ये भी सही है कि वो मुझसे नफरत करते थे। मगर साथ ही मुझ पर ऐतिमात (भरोसा) भी इतना था कि इन्ख़िलाअ (खाली करना) की सूरत के मुताल्लिक पाकिस्तानी फौजी अफ़्सरान मुझसे ही मशविरा (परामर्श) करते थे। हालांकि मेरे मकान के नीचे खड़े हुए मुसलमान खुले तौर पर कहा करते थे कि ये शख़्स (आदमी) बाग़ी है, ग़द्दार है, काफ़िर है, हमारा नुमाईन्दा (प्रतिनिधि) नहीं है। कांग्रेसी हिन्दुओं के हाथ बिका हुआ है। पाकिस्तान का दुश्मन है। अफसर ये तमाम आवाजें सुनते थे, मगर इनको इत्मिनान (विश्वास) मेरी ही बात से होता था और जब तक बात पूरी नहीं होती थी ये वापिस नहीं होते थे।

एक रोज डिप्टी हाई कमीशन, मैजिस्ट्रेट पाकिस्तान तशरीफ लाए इनके साथ डिप्टी कमीश्नर, इलाका मैजिस्ट्रेट और कुछ फौजी अफ़्सरान थे। हज़रत शाह कलंदर साहब के नक्कार खाने पर उन्होंने मुसलमानों को जमा करके दरयाफ़्त (पूछा) किया कि आप लोग यहां रहना चाहते हैं या पाकिस्तान जाना चाहते हैं और ये भी कहा कि पाकिस्तान जाकर कोई जन्नत नहीं मिलेगी। वहां हलवा-पूरी तैयार नहीं रखी हैं। इस पर ज्यादा वजन न डालो और खुद परेशान होकर पाकिस्तान को परेशानी में मुब्तला (फंसा हुआ) न करो। मगर इसका कोई असर न हुआ और इसके बरख़िलाफ़ (विरुद्ध) मुसलमानों से एक दरख़्वास्त (निवेदन) हासिल की गई कि हम सब पाकिस्तान जाना चाहते हैं। सिर्फ मैंने ही पाकिस्तान जाने से इन्कार किया।

डिप्टी हाई कमीशन ने तन्हाई (एकान्त) में मुझसे बहुत सी बातें की। लेकिन उस वक्त मैंने ये फैसला नहीं किया था कि मैं पानीपत ही में क़याम (अस्थाई निवास) करूंगा या किसी दूसरी जगह रहूंगा।

देहाती मुसलमान और उनका इन्ख़िलाअ

(ग्रामीण मुसलमान और उनका खाली

करना)

इस इतिला (सूचना) पर कि पानीपत के मुसलमान पाकिस्तान जा रहे हैं। देहात के मुसलमानों में इंतिशार (शोर, हड़कंप) पैदा हुआ और (देहात के अक्सर मुसलमानों ने डर और ख़ौफ़ की वजह से जो पाकिस्तान से आने वाले शरणार्थियों ने फैला दिया था -अपने आपको हिन्दू जाहिर किया) फ़सादात (दंगे-झगड़े) के जमाने में पंजाब में बहुत ख़तरनाक सैलाब (बाढ़) आया था। अब ये सैलाब कम हो गया था, तो एक रोज़ तकरीबन 70 देहात के ये डरे हुए मुसलमान अपने सम्पर्क के हिन्दू जाटों के हमराह (साथ) पानीपत आए और उन्होंने मुझसे आकर कहा कि हमारा क्या हश्र होगा। क्या हम मुर्तद (धर्मपरिवर्तन) होकर यहां रहेंगे या हम भी पाकिस्तान जा सकते हैं। दूसरे रोज भी इस कद्र देहात के मुर्तद (धर्मपरिवर्तन) मुसलमान आए, मगर तीसरे रोज बहुत ज्यादा तादाद में लोग आए। उस वक्त कोई बात समझ में नहीं आई कि इनका क्या हल हो, चूंकि मैं खुद भी शक में था कि मैं देहली रहूं जैसा कि महात्मा जी और जमीयत उलमा-ए-हिन्द के आकाबरिन (बड़े लोग) की ख़्वाहिश थी कैराना या हैदराबाद क़याम (अस्थाई निवास) करूं जहां से दोस्त व अहबाब (दोस्त मित्र) का सख़्त तकाजा (मांग) था। पानीपत रहने का ख़्याल उस वक्त तक पंचताह (मजबूत) नहीं था।

सुकून

तीसरे रोज रात को मैं कुछ सो रहा था कुछ जाग रहा था बहरहाल गुनूदगी तारी (निद्रा आलस छा जाना) थी। एक हसीन चेहरा दिखाई दिया और इसने तंबीह (उत्तेजित) की कि मुसलमानों की ख़िदमत का वक्त अब है, मारकाट और शरणार्थियों की बर्बरियत (अत्याचार) व मज़ालिम (अत्याचार) की वजह से मेरा भी दिल मुतमईन (शांत) नहीं था, लेकिन इन अल्फ़ाज के बाद मेरे दिल में सुकून पैदा हो गया और वहशत (डर) व परेशानी सब काफ़ूर (समाप्त) हो गई और ये अज़्म (फैसला) पंचताह (मजबूत) हो गया कि मुझको यहां पानीपत में ही रहना है।

सुबह नमाज़ के बाद मैंने अपने एक अज़ीज़ दोस्त से ज़िक्र किया कि अब मैं कभी नहीं जाऊंगा, बल्कि पानीपत ही रहूंगा। मेरा भाई (वकाउल्लाह) जो देहली से बाज़ (कुछ) बेयारो मददगार (निराश्रय, बेबस) औरतों को लेकर हवाई जहाज से पाकिस्तान चला गया था। अगर वो मौजूद होता तो अपने इस अज़्म (निर्णय) की इतिला (सूचना) उसको देता। इस दोस्त को न देता, क्योंकि वकाउल्लाह सिर्फ मेरा भाई न था, बल्कि मेरा दोस्त भी था।

अब मेरे दिमाग़ में दो ख़्याल घूम रहे थे एक मगूया (भूली-भटकी औरतें) की वापिसी और दूसरा मुर्तद (धर्म परिवर्तन) मुसलमानों की वापसी या उनको पाकिस्तान भेजना। इस सिलसिले में कोई राय पंचताह (मजबूत) नहीं हुई थी कि पानीपत के मुसलमानों के इन्ख़िलाअ (खाली करना) का मुत्तफ़िक़ा (सबकी सहमति) आख़िरी फैसला डिप्टी हाई कमीशन पाकिस्तान के सामने हो गया तो मैं फिर दोबारा पंडित माधो राम लाला खेम चन्द रईस और दिगर (अन्य, और) कांग्रेसी दोस्तों को साथ लेकर देहली गया। रात को मौलाना हिफ़ज़ुर्ररहमान साहब और मौलाना सईद अहमद साहब से मुलाकातें हुईं और उनको मुसलमानों का फैसला सुनाया। ये आखिरी नवम्बर या दिसम्बर की पहली दूसरी तारीख़ का वाक्या (घटना) है।

सुबह के वक्त मौलाना हिफ़ज़ुर्ररहमान, मौलाना अहमद सईद साहब, डा. जाकिर हुसैन, मौलाना अबुलकलाम आजाद, मौलाना मुहम्मद मियां साहब, हाफिज मुहम्मद नसीम साहब वगैरा के साथ महात्मा गांधी के यहां पहुंचे। महात्मा जी ने फर्माया कि भाई लिकाउल्लाह अब क्यों आए हो? मैंने जवाब दिया कि पानीपत के मुसलमान रहना नहीं चाहते और पाकिस्तान जाने का फैसला कर चुके हैं। मेरी ख़्वाहिश और दरख़्वास्त है कि आप उनको रूख़्सत कर (भेजना) दें। उन्होंने 4 दिसम्बर की तारीख मुकर्रर की। इसके बाद मैंने पल्ला पसार कर दरख़्वास्त की कि मैं आपसे एक भीख मांगता हूं। उन्होंने कहा कि फरमाइये तो मैंने मुसलमान मगूया (भूली भटकी) औरतों की बाज़याबी (स्वतंत्र कराना) और देहाती मुसलमानों के इन्ख़िले (खाली करने) का बंदोबस्त करने की दरख़्वास्त की। महात्मा जी ने कहा मगूया (भूली भटकी) औरतों की वापसी तो बहुत ही ज़रूरी है वो आप ले सकते हैं, लेकिन मुसलमानों का अपने घरों को छोड़ कर जाने का न मैं पहले हामी (समर्थक) था और न अब हूं। इसी तरह हिन्दुओं का पाकिस्तान से आने का न मैं पहले हामी (तैयार, समर्थक) और न अब हूं। ये सिलसिला दोनों मुल्कों के लिए तबाहकुन (मुसीबत भरा) है।

कांग्रेसी दोस्तों की गलत बयानी

पंडित माधो राम, लाला खेमचन्द रईस के साथ महात्मा गांधी के यहां मेरे दोस्त और अज़ीज देशबंधू गुप्ता भी मौजूद थे। महात्मा जी ने देशबंधु गुप्ता से पूछा कि तुम मुसलमानों को नहीं रख सकते। उसने जवाब दिया कि हमने बहुत कोशिश की, लेकिन मुसलमान नहीं माने और नहीं रुक सके। मैंने फौरन जवाब में कहा कि देशबंधु तुम गलत कहते हो। तुम देहली में हो, लाला खेमचंद, लाला रोशनलाल, सरदार गुरबचन सिंह वगैरा 8 नवम्बर को मेरे मकान पर मौजूद थे। मैंने उन लोगों से खुद कहा कि आप लोग अगर मुसलमानों को रोकना चाहते हैं तो एक आम जलसा (सभा) बुलाइए और उसमें खुले दिल से पिछले किरदार (भूमिका) की माज़रत (क्षमा) कीजिए और आईन्दा (भविष्य) के लिए उनको इत्मिनान (विश्वास) दिलाइये मुसलमान यकीनन रूक जाएंगे। मगर ऐसा इज्तिमा (सम्मेलन) आज तक नहीं हुआ। इस पर महात्मा जी को बहुत गुस्सा आया और उन्होंने देशबंधु गुप्ता के लिए बहुत सख्त शब्द इस्तेमाल किए।

चार दिसम्बर को महात्मा गांधी की तशरीफ आवरी

(4 दिसम्बर को महात्मा गांधी का आगमन)

महात्मा जी ने 4 दिसम्बर पानीपत के लिए मुकर्रर (निश्चित) की वो पानीपत तशरीफ लाए। दूसरे रोज हालात सुने मैंने बिल्कुल खुलकर वाज़ेह तौर (स्पष्ट रूप) पर हुक्काम (सरकारी अधिकारी) और मकामी (स्थानीय) लोगों के मुताल्लिक (संबंध में) जिसमें कांग्रेसी दोस्त भी शामिल थे, वो सबकुछ साफ-साफ कह दिया जो मैं कह सकता था। ये सब लोग उस वक्त मौजूद थे, उनके अलावा वज़ीरे आला पंजाब गोपी चंद भार्गव और दूसरे वुज़रा (वज़ीर का बहुवचन मंत्रीगण) पंजाब स्टेट असैम्बली मौजूद थे।

हथियार

मकामी (स्थानीय) हुक्काम (प्रशासनिक अधिकारी) ने कुछ हथियारों की भी नुमाईश (प्रदर्शनी) की और इल्ज़ाम (दोष) ये लगाया कि ये हथियार मुसलमानों के यहां से बरामद किए गए हैं। हालांकि ये हथियार खुद (स्वयं) शरणार्थियों के थे जो

इन हज़रात (व्यक्तियों) और पुलिस वालों ने कर्फ्यू के समय में कहीं बाहर जमा किए थे। अल्बता (लेकिन) मामूली चाकू और तरकारी (सब्जी) काटने वाली छुरियां जरूर मुसलमानों के यहां से बरामद हुई थीं। जिनको आलाते हर्ब (जंगी सामान) से ताबीर (जाना) किया गया। इस नुमाईश (प्रदर्शनी) पर तब्सरा (जिक्र) करते हुए मैंने कहा कि अगर आप इज़ाजत दें तो मैं इनसे ज्यादा सख्ततरीन (अधिक कठोर) हथियार हिन्दुओं के यहां से बरामद करा सकता हूं। ये हथियार इस तरह बरामद किए गए हैं कि कर्फ्यू लगा हुआ था, हुक्काम (प्रशासन) के पास हथियार मौजूद थे और मशहूर कर दिया कि ये मुसलमानों के मकानात (घरों) से निकले हैं। ये मेरा बयान तकरीबन (लगभग) एक घंटे जारी रहा, जिसको अज़ीज़ा (प्यारी) इंदिरा गांधी (बेटी पंडित जवाहर लाल नेहरू) ने पूरे तौर पर नोट किया।

स्पेशल ट्रेनों का इन्तिज़ाम

5 दिसम्बर को पहली स्पेशल ट्रेन रवाना हुई, उसमें मुसाफिर (यात्री) भुस (तुड़ा) की तरह भरे गए थे और सितम (अत्याचार) ये कि वो लीगी कारकुन (मुस्लिम लीग के कार्यकर्त्ता) जिनको टिकट दिए गए थे, कि जाने वालों को तकसीम (वितरित) कर दें। उन्होंने फी टिकट (प्रति टिकट) 1 रुपया नज़राना (भेंट) वसूल किया था। 7 दिसम्बर को डिप्टी कमीश्नर साहब करनाल तशरीफ लाए और उन्होंने फर्माया कि मुझे हिदायत (आदेश) की गई है कि मैं आपको ये इत्तिला (सूचना) कर दूं कि परसों वाली स्पेशल ट्रेन बख़ैरियत (शांतिपूर्वक) लाहौर पहुंच गई। मैंने मुस्कुराते हुए अर्ज़ किया कि वो पांच मुसलमान जो मरे हैं, उनके इंतिकाल (मृत्यु) की रिपोर्ट कहां है। इस पर वो बहुत सरासिम(व्याकुल) और परेशान हुए और कहा कि ठीक है फिर दरयाफ़्त (जांच-पड़ताल) किया कि मुसलमानों की रवानगी (प्रस्थान) में कोई तकलीफ (दुख) तो नहीं है। मैंने तवज्जो (ध्यान) दिलाई कि मुसलमानों को गाड़ी में भूस की तरह भरा जा रहा है। ये कोई इन्सानियत नहीं है। तो उन्होंने बेहतर इंतजाम (व्यवस्था) का वादा किया और मुझसे कहा कि चलकर देख लो कि गाड़ी में मुसाफिरों को आराम से जगह दी गई है। चुनांचे (अत:) मैं स्टेशन गया। स्टेशन से दूर फासले पर स्पेशल ट्रेन खड़ी की जाती थी।

मैंने डिप्टी कमीश्नर साहब को दिखलाया कि मुसाफिर ज्यादा हैं। चुनांचे फौरन दूसरी खाली गाड़ी स्टेशन मास्टर से तलब करके लगवाई गई और एक गाड़ी की बजाए दो गाड़ियों में वो मुसलमान सवार होकर जा सके। इसी तरीके से गाड़ियां रवाना होती रहीं। 9 दिसम्बर को आखिरी स्पेशल ट्रेन रवाना हुई। स्पेशल गाड़ियां इलाका मैजिस्ट्रेट और मेरे दस्तख़त (हस्ताक्षर) से लगाई और रवाना की जाती थीं। अब पानीपत में मेरे घर के सिवा कोई



मुसलमान नहीं था। दस-बारह मुसलमान और थे जो मेरे ही मकान पर मुकीम (थोड़े दिनों के लिए ठहरा हुआ) थे और बाद में या तो पाकिस्तान चले गए या देहली वगैरा में जाकर विभिन्न जगह आबाद हो गए।

पानीपत के मुसलमानों के इन्खिलाअ (खाली करना) में पाकिस्तान अफ्सरान कप्तान मोहम्मद असगर जनरल फखरूद्दीन साहब ने बहुत खुश अस्लोबी (खुशी से) और बहुत हमदर्दी के साथ इम्दाद (सहायता) फरमाई। मैं अपनी कमजोरी के वजह से बाहर देहात में तो नहीं जा सकता था, तो मेरे भाई वकाउल्लाह ने मगूया (भूली-भटकी) औरतों के बरामद (तलाश) करने और देहाती मुसलमानों को पाकिस्तान रवाना करने का काम बहुत मुस्तैदी (हिम्मत) से किया। एक मक़ामी (स्थानीय) सिख दोस्त ने भी बड़ी तनदेही (परिश्रम) और जानफ़िशानी (शारीरिक भाग-दौड़) और हमदर्दी से इस काम को अंजाम (पूरा करना) देने में अज़ीज़ (प्यारे) वकाउल्लाह की मदद की।

पानीपत और देहात में फ़साद का जिम्मेदार कौन था

पानीपत और उसके देहात में जो कुछ हुआ, मुझे यकीन है वो कांग्रेसी लोगों के मशवरे और ईमां से हुआ। डा. कपूर जो पानीपत कांग्रेस के सैक्रेट्री थे, उन्होंने तमाम देहात और कुर्बोजुवार (आसपास) के गांव में दौरा किया और तमाम जाटों और हिन्दुओं को मुसलमानों के खिलाफ बरगलाया (बहकाना) जब मृदुला साराभाई और दूसरे हज़रात (लोग) दरयाफ़्ते (पूछताछ) हाल के लिए पानीपत आए तो मुझसे पूछा, उस वक्त डा. कपूर मौजूद थे, मैंने उनकी तरफ इशारा कर दिया कि इन हज़रत (महोदय) से दरयाफ्त कीजिए जिनका ये सब किया धरा है। तो मृदुला साराभाई को बहुत गुस्सा और अफ़सोस (खेद) हुआ। इसका नतीजा ये जरूर हुआ कि डा. कपूर को वहां से हटा दिया गया, मगर अफ़सोस बाद अज़्वफ (वक्त निकल जाने पर खेद करना)।

एक लतीफा

अक्सर (अधिकतर) मुसलमान इन्ख़िला (खाली करना) के वक्त अपने मकानों पर लिख गए थे कि मालिक मकान लिकाउल्लाह है चुनांचे शरणार्थियों और रिफ्यूजियों का मेरे मकान पर तांता बंध गया कि फलां मकान हमको दे दो, ये सिलसिला (क्रम) बहुत दिनों तक जारी रहा।

इन्ख़िला (खाली करना)**मस्जिद व दरगाह हज़रत मख़्दूम शाह**

जब रमजान शरीफ़ करीब आया तो मैंने डिप्टी कमीश्नर साहब को दरख़्वास्त की कि मैं रमजान शरीफ में दरगाह में तरावीह और कुरान शरीफ पढ़ना चाहता हूं। दरगाह, मस्जिद खाली करा दी जाए। उस वक्त मस्जिद व दरगाह शरीफ और उसके सारे मकानात व जगह शरणार्थियों से भरी पड़ी थीं।

मस्जिद में नमाज और ग्रंथ साहब

मेरी दरख़्वास्त मंजूर हो गई। चूंकि मस्जिद में सिखों का ग्रंथ रखा हुआ था। इसके मुन्तकल (एक जगह से दूसरी जगह पहुंचाना) करने के लिए कोई जगह मुनासिब (उचित) नहीं मिली, तो इसको मदरसे (मुस्लिम स्कूल) में मुन्तकल कर दिया गया। रमज़ान शरीफ़ में खुदा के फज़्ल (कृपा) से इत्मिनान (शांति) से कुरान शरीफ़ और तरावीह अदा की गई। बरेली के एक हाफ़िज़ साहब जो देहली में मौजूद थे। मैं इनको जाकर ले आया था। उन्होंने कुरान शरीफ सुनाया। रमज़ान शरीफ़ के बाद ग्रंथ फिर मस्जिद में आ गया और हर साल ऐसा ही होता रहा। सन् 1956 ई0 में जब बिल्कुल ही इन्ख़िलाअ (खाली) हो गया तो उस वक्त से मस्जिद में नमाज व जमाअत और कुरान पाक व तरावीह बकायदा (उचित ढंग से) हो रही है। बहरहाल नागा (मना न होना) कभी नहीं हुआ वलिललाहिलहम्द (ईश्वर की प्रशंसा)।

उर्स कलंदर साहब

8/9 रमजान शरीफ जुलाई 1948 ई0 को मोहम्मद युनूस साहब मालिक जामिया होटल देहली कुछ खाना पकवाकर जिसमें बिरयानी और शीरमाल थे। 8/10 हमराईयों (साथियों) के साथ पानीपत आए उनको पुलिस ने रोक लिया और थाने ले गए। वहां उनसे पूछताछ की गई तो उन्होंने कहा कि हम पाकिस्तानी नहीं हैं, बल्कि देहली से दरगाह पर नियाज़ (भेंट) चढ़ाने आए हैं और हमारा कोई मकसद (उद्देश्य) नहीं है। मौलाना लिकाउल्लाह साहब के मकान पर ठहरेंगे। चुनांचे (अतः) उनको छोड़ दिया गया। रात को दरगाह कलंदर शाह में एक मामूली सा उर्स हुआ और खाना तक्सीम (बांटना) कर दिय गया। ये लोग रात को मेरे मकान पर आ गए तो मशहूर कर दिया गया कि पाकिस्तानी लोग आए हुए हैं, चुनांचे मेरे मकान पर शरणार्थियों की भीड़ लग गई। जब मैंने इनको समझाया कि ये लोग देहली से आए हैं, पाकिस्तानी नहीं है। तब वो लोग वापिस हुए और इस तरह उर्स हज़रत कलंदर साहब की सूरत निकली। इन दोनों बुजुर्गों का उर्स कभी नागा नहीं हुआ।

एक गलत ख़बर

14 फरवरी 1948 ई. को एक शख़्स मुसम्मा (नाम) ज़हूर पानीपती का पाकिस्तानी अख़बारात (समाचार पत्रों) में बयान शाय (प्रकाशित) हुआ कि पानीपत के कलंदर शाह की दरगाह के कसौटी के सुतून (स्तम्भ) निकाल लिए गए हैं और मौलाना ग़ौश अली शाह साहब के मज़ार का गुम्बद मिस्मार (ध्वस्त) करके साफ कर दिया गया है। इस बयान के शाय (प्रकाशित) होने के चार-पांच रोज बाद फरवरी के आखिर में कर्नल फ़ख़रूद्दीन साहब पानीपत तशरीफ़ लाए, उनके साथ कस्टोडियन अफसर पानीपत और जिला करनाल के कुछ अफसरान भी थे। उन्होंने दोनों जगह का मुआयना किया और बिल्कुल मुतमईन (संतुष्ट) हो गए। उन्होंने दरगाह ग़ौश अली शाह साहब पर एक कैंप कायम (स्थापित) कर दिया। वहीं देहाती मुसलमान जमा होते थे जहां से पाकिस्तान रवाना किए जाते थे। इसी तरह करनाल में मगुइया (भूली-भटकी) औरतों का एक कैंप बनाया गया था।

ख़्वातीन की बाज़याबी और मज़हबी आज़ादी

(महिलाओं को स्वतंत्र कराना और धार्मिक स्वतंत्रता)

इससे क़ब्ल (पहले) 18 जनवरी को एक मर्तबा (बार) फिर गांधी जी के पास देहली गया और उनको मगुइया (भूली-भटकी) मुसलमान औरतों को बाज़याबी (स्वतंत्र कराना), और देहाती मुसलमानों के इन्ख़िलाअ (खाली होना) के इत्मिनान बख़्श (संतुष्टि भरे) इंतजाम (प्रबंध) की तरफ तवज्जे (ध्यान) दिलाई। इसी वक्त मैंने महात्मा जी से एक मुतालबा (प्रार्थना) ये भी किया कि जो मुसलमान मुर्तद (धर्म-परिवर्तन) हो गए हैं, वो अगर बाहैसियत (प्रतिष्ठित) मुसलमान यहां रहना चाहें तो उनको आज़ादी दे दी जाए। महात्मा जी ने कहा कि मेरे पास गोपी चंद भार्गव (तत्कालीन मुख्यमंत्री पंजाब) आने वाले हैं। मैं उनको ये बातें समझा दूंगा वो आपसे पानीपत में मिलेंगे। गोपीचंद भार्गव मेरे हैं।

पंजाब के वजीरे आला (मुख्यमंत्री) जनाब गोपी चन्द भार्गव साहब पानीपत आए और उन्होंने मुसलमानों की पूरी-पूरी मदद करने और मुझसे तआवुन (सहयोग) का वादा किया। उर्सों का सिलसिला (क्रम) शुरू हो जाने से और हुकूमत (शासन) की ज़ाहिरी (उपस्थिति दिखाई देना) रविश (आचरण) से मुसलमानों ने ये समझ लिया कि अब हम पर कोई पाबंदी वगैरा नहीं है, तो वो भी अर्कान‌े इस्लाम (इस्लाम के प्रमुख) की अदायगी खुल्लम-खुल्ला करने लगे। खुसूसी (मुख्य) तौर पर हज़रत मख़दूम शाह साहब के 1949 ई0 वाले उर्स में साफ तौर पर मुसलमानों ने अपने मुसलमान होने का ऐलान भी किया। इस वक्त मकामी हुक्काम (स्थानीय प्रशासन) ने भी उनका हौसला बढ़ाया। एक मुसलमान फौजी अफसर ने मुझसे कहा कि इन मुसलमानों में जो मुसलमान रहना चाहते हैं या पाकिस्तान जा रहे हैं, इनकी चोटी कटवाइये। मैंने कहा कि ये काम मेरे बस का नहीं है। उसने कहा कि आप पुलिस को बाहर मशग़ूल (व्यस्त) रखें और अंदर जनाने मकान में हम ये काम करते हैं। चुनांचे जिन मुसलमानों ने अपने मुसलमान रहने का ऐलान किया उनकी चोटियां काटी गई, जिनसे दो कनस्तर (खाली पीपे) भर गए।

काम की नौईयत (प्रकार) और गांधी जी का हादसाए कत्ल

महात्मा जी ने मुझसे पूछा कि काम की नौईयत (प्रकार, किस्म) क्या होगी और उसके मुताल्लिक (संबंधित) मैंने एक खत (पत्र) लिखा जो 30 जनवरी 1948 ई. को 11 बजे दिन के वक्त महात्मा जी के पास पहुंचा। उन्होंने सरदार गुरबचन सिंह से कहा कि कल मौलवी साहब की चिट्ठी का जवाब लिखना मगर अभी कल नहीं आई थी कि शाम के वक्त महात्मा जी के कत्ल का वाक्या पेश आ गया। रात को जब इत्तिला (सूचना) मिली तो मेरे मकान के नीचे से लोग ये कहते हुए गुज़र रहे थे कि देहली में गांधी जी को कत्ल कर दिया गया है। यहां इसको (मुझको) भी खत्म कर दो, मगर खुदा का शुक्र है कि कोई वाक्या (घटना) नागवारी (अच्छा न लगना) पेश नहीं आया। मैं बदस्तूर (नियमानुसार) मगुईया (भूली-भटकी) औरतों के निकालने के काम में अमली तौर पर अर्कान (प्रमुख) जमीयत उलमा और सोशल वर्करों मसलन (जैसे) बहन मृदुला साराभाई के साथ मसरूफ (व्यस्त) रहा और ये कोशिश जारी रही कि जो मुसलमान हिन्दू इलाके में रह गए हैं, उनके बच्चों की तालीम का कोई न कोई प्रबंध जल्द होना चाहिए और जो औकाफ (वैक्फ का बहुवचन अर्थ जायदादें आदि जो समर्पित हैं) हैं उनका इंतिजाम (प्रबंध) भी अपने हाथ में होना चाहिए।

सम्पर्क-98966-71690

एक भारत से दूसरे भारत की ओर

अमृतलाल मदान

मेरे मन-पटल पर बचपन की जो सबसे पहली यात्रा अंकित है, वह बड़ी त्रासद और दुर्भाग्यपूर्ण है। वैसे तो बचपन की यात्राएं बाल-सुलभ उल्लास, उत्साह एवं उत्सुकता से भरी होती हैं, किन्तु इस यात्रा में असुरक्षा, आतंक व मृत्यु-बोध का अहसास पग-पग पर होता रहा। जब भारत-पाक विभाजन की गरम हवाएं चलनी शुरू हुईं, मैं छह वर्ष का था। तब कुछ बातें समझ में आती थीं, बहुत सी समझ नहीं भी आती थीं कि हमारा परिवार अचानक कहां जाने की तैयारी कर रहा है, कितने दिनों के लिए...वापिस लौटेंगे भी या नहीं। जहां एक ओर इस लंबी अनिश्चित काल की यात्रा को लेकर मन में रोमांच की लहरें उठती थीं। दूसरी ओर उस ओर से पहाड़ी कस्बे से उजड़ कर दूर कहीं और नयी जगह जाकर बसने का भय भी था।

मुझे याद है कि तौंसे (एक कस्बानुमा गांव, जिला डेरा गाजी खां) के मिडल या हाई-स्कूल में मैं पहली जमात में पढ़ता था। उर्दू के उस्ताद की मार भी खाया करता था और पड़ोस में रहते उस बुजुर्ग उस्ताद का हुक्का भी भरता था। कुएं के पास बैठ तख़्ती पर गाची के लेप एक खास अंदाज से दिया करता था तथा चौरस मोटे कपड़े का एक बस्ता हुआ करता था, जिसके चारों छोरों या पल्लों को गांठों से बांध स्कूल ले जाते थे। कई बार गांठें परस्पर उलझ जाती थीं, लेकिन राष्ट्रीय स्तर पर साम्प्रदायिक राजनीति की कौन-कौन सी गांठें कहां-कहां उलझी हुई है, इसकी समझ न थी। हां पं. नेहरू, गांधी, पटेल, जिन्ना जैसे नाम बार-बार कान में जरूर पड़ते थे। 'नहीं बनने देंगे पाकिस्तान' के नारे लगाता एक जुलूस भी मेरे ज़हन में आ कौंधता है जिसके पीछे-पीछे मैं भी मुट्ठियां उछाल उछाल कर चल रहा हूं। तभी जुलूस में पता नहीं क्यों भगदड़ सी मच जाती है। मेरे पिता जी मुझे पकड़ कर घर की ओर भाग जाते हैं। हां, कुछ दिन बाद घर में जब जरूरी सामान बांधा जाने लगा, मट्ठियों और मीठी रोटियां पकाने से घर महक उठा, तो मैंने पिता जी से पूछा, 'लाला जी हम कहां जा रहे हैं?' तो उदास सा उत्तर मिला, 'हिन्दुस्तान'। मैंने कहा, 'हम हिन्दुस्तान में तो रह रहे हैं' तो उत्तर मिला, 'नहीं, यहां पाकिस्तान बनने जा रहा है।' मुझे कुछ समझ नहीं आया। बस इतनी खुशी याद है कि रास्ते में खूब मीठी रोटियां खाएंगे, मटर भुजिया और मट्ठियां खाएंगे, साथ में अचार होगा, दूर का रोमांचकारी सफ़र होगा।

फिर याद है कि सेना के हरे-हरे ट्रक एक मैदान में खड़े हैं। हर ट्रक के पीछे लोग लादे जा रहे हैं, उनके सामान की तलाशी ली जा रही है, चाकू-छुरियां ढूंढ कर बाहर निकाल दी जा रही हैं। मैं उत्तेजित हूं, क्योंकि मुझे ड्राइवर के साथ बिठाया जा रहा है, जिसके ऊपर एक गोल गोल बड़ा सा सुराख है।

तभी एक बुजुर्ग से सफेद बालों वाले सज्जन आते हैं। यह उस दरगाह के ख़्वाजा साहिब हैं, जहां मेरे कुंदन मामा जी भी कर्मचारी हैं। कोई ट्रक के सैनिक-ड्राइवर को बताता है कि 'इन ख़्वाजा साहिब ने खूंखार बलवाइयों के हमलों से कस्बे के सब हिन्दुओं की जान बचाई है। वह उनके सामने सीना तान कर खड़े हो गए और गरज कर बोले खबरदार किसी हिन्दू बच्चे का भी बाल भी बांका हुआ तो....पहले मेरी लाश से गुजरना होगा।' वही बुजुर्ग ख़्वाजा साहिब मुझे आकर अपने हाथों से दूध पिलाते हैं साथ में खजूर भी खिलाते हैं और सिर पर हाथ फेर कर ढेर सारी आसीसें देते हैं। तभी 'भारतमाता की जय' के घोष के साथ ट्रकों का काफिला चल पड़ता है। पर यह क्या? जल्दी ही जयघोष का जोश ठंडा पड़ जाता है और ट्रक के पीछे से रोने व हिचकियों के स्वर सुनाई देने लगते हैं।

रास्ते में सिंध दरिया पड़ता है। उस पर बने एक किश्तियों के पुल पर से सभी यात्री पैदल चलकर उसे पार कर जाते हैं, जबकि सेना के ट्रक धीरे-धीरे चलते पीछे-पीछे आते हैं। इसी दरिया के चौड़े पाट पर मेरे दादा जी कभी पत्तन यानि बड़ी नावे या छोटे जहाज ठेके पर चलाया करते थे और माल, पशु और सवारियां इधर से उधर, उधर से इधर ढोकर लाते थे। मेरे पिता जी, चाचा तथा ताया जी कुछ पल खड़े हो दरिया को ऐसे देखते हैं, जैसे आखिरी बार देख रहे हों या जैसे अपने स्वर्गीय पिता की आत्मा को अब इधर से हिन्दू शरणार्थी और उधर से मुस्लिम शरणार्थी ढोते देख रहे हों। दरिया में कुछ आंसू भी टपके होंगे। ये आंसू दरिया में बहकर जाने कहां गए होंगे-मैं सोचता रहा। कुछ लोगों को मैंने किनारे बैठ चुल्लूभर पानी पीते और रोते हुए देखा।

सेना के ट्रक हमें मुजफ्फरगढ़ के शिविर में छोड़ गए। शाम को हम शहर के बाजार गए। शरणार्थियों की बहुत भीड़ थी वहां। मुझे बाजार में एक पैन पड़ा मिला जो मैंने जब पिता जी को उठा कर दिया तो खुश होकर बोले, 'वाह...यह तो पार्कर का पैन है।' यह पैन कई बरस हमारे पास रहा। हम दोनों ने प्रयोग किया उसे। यह मेरे वतन की आखिरी निशानी थी।

रात को हम तम्बुओं के शिविर में सोए हुए थे कि सहसा 'आग आग' का शोर सुन कर जाग गए, साथ ही गोलियों की आवाज। पिता जी मुझे अपनी कांख में और मां मेरी एक वर्षीय बहन को जैसे कोख में दबाए रेंगते हुए सेना की चौकी की ओर बढ़ने लगे। पीछे हमारे तम्बू धू धूकर जल रहे थे, सिरों पर से धां धां गोलियां गुजर रही थी। आखिर हम सुरक्षा चौकी पर रखी बोरियों के पीछे सकुशल पहुंचने में सफल हो गए। सेना के जवान अंधेरों की लपटों के पीछे से दनदनाती गोलियों का समुचित जवाब दे रहे थे...लपटों के पीछे शायद बलवाई थे। अरे यह यात्रा तो बड़ी खतरनाक और जोख़िम भरी है-मेरा बाल मन सोचता है और भारत माता की जय के नारों में शामिल हो जाता है। उधर से अल्लाहो अकबर के नारे लग रहे हैं।

अब यात्रा का अगला चरण रेल के द्वारा है। मुझे याद है रेल का वो खचाखच भरा डिब्बा....यहां तक कि शौचालय भी खचाखच भरे हुए-इन्सानी गठरियों से भी और सामानी गठरियों से भी। हमारी मीठी रोटियों वाली गठरी तो आग की भूखी लपटों में घिर गई थी....दूसरे यात्रियों ने हमारे साथ अपनी बासी रोटियां सांझी की। ज्यादा नहीं, कहीं शौच न जाना पड़ा। मूत्र का दबाव तो बच्चों ने खिड़की की राह से हल्का कर लिया। बड़े-बड़े नेताओं को कोसते मूत्र को रोके पता नहीं कैसे बैठे रहे।

आधी रात का समय है। अचानक ट्रेन खड़ी हो जाती है कहीं बीच जंगल में। खिड़कियां धड़ाधड़ बंद कर दी जाती हैं।

गोलियों की आवाजों के बीच इंसानी चीखों की आवाज भी सन्नाटे को तोड़ जाती है। 'हमारे साथ गोरखा फौजी है...कोई चिंता की बात नहीं' कोई पिता जी को बताता है। फिर भी कई हाथ डिब्बे की उस घुटन में प्रार्थना के लिए ऊपर उठ उठ जाते हैं।

थोड़ी देर में गोलीबारी शांत हो जाती है और गाड़ी फिर चल पड़ती है। खिड़कियां फिर उठा दी जाती हैं पर सहमते-सहमते। कोई बता रहा है कि गाड़ी का ड्राइवर मुसलमान था। उसने जान-बूझ कर पूर्व निर्धारित जगह पर गाड़ी रोकी ताकि हिन्दू शरणार्थियों को भून डाला जाए। लेकिन मेरे पिता जी कहते हैं कि कस्बे के सभी हिन्दुओं को बचाने वाला भी तो एक मुसलमान बुजुर्ग था, जो फरिश्ता बनकर बाहें फैलाकर खड़ा हो गया-पहले मेरी लाश से गुजरना होगा गरजते हुए। दरअसल इस पागलपन का किसी धर्म या मजहब से कोई लेना-देना नहीं। सुन कर जहरीली जबानें चुप हो जाती हैं और मैं पिता जी की इस बात को गांठ में बांध लेता हूं। इस यात्रा की एक और स्मृति उभरती है। हम रेल ट्रैक के किनारे कहीं खड़े हैं। मेरे जवान चाचा लोग और ताया जी एक ओर नजरें गड़ाए खड़े हैं कि कोई रेलगाड़ी आती नजर आए तो उस पर छलांग मारकर सवार हो जाएं। पहली वाली ट्रेन या तो हमीं ने छोड़ दी या फिर हमें उतार दिया गया-क्यों, यह याद नहीं। क्षितिज से कोई गाड़ी धुआं उड़ाती आती नजर आती है-तो सैंकड़ों प्रतीक्षारत खड़े यात्री अपनी गठरियां संदूकचियां उठा लेते हैं। आने वाली गाड़ी अगर माल गाड़ी है तो भी पचासों यात्री उसके खुले, अधखुले डिब्बों पर टूट पड़ते हैं और किसी न किसी तरह उस जमीन से दूर भाग जाना चाहते हैं, जिसे अपना वतन कहते थे वे। कोई सवारी गाड़ी आती है तो छुक-छुक कर निकल जाती है, क्योंकि पहले ही ठूंस ठूंस कर भरी गई है।

आखिर एक ऐसी गाड़ी भी आकर रुकती है जिस पर चढ़कर लटका जा सकता है या छतों पर बैठा जा सकता है। चढ़कर हम धीरे-धीरे डिब्बे में रेंगने-घुसने में कामयाब हो जाते हैं। यहां पहले से बैठी-लटकी सवारियों से पता चलता है कि पीछे बहुत खून-खराबा हुआ है....दोनों तरफ कई गाड़ियों को काट डाल गया है। कई गाड़ियां तो लाशों से अटी पड़ी हैं और चलती हुई भुतही लगती हैं।

रक्तिम पौ फट रही है। यह गाड़ी भी अचानक कहीं खड़ी हो जाती है। सामने सुनसान जंगल है, झाड़ियां जैसे न्यौता दे रही हैं। मैं खिड़की से बाहर झांक कर देखता हूं कि कुछ बूढ़ी, अधेड़ और जवान औरतें फटाफट उतर कर झाड़ियों के पीछे चली गई हैं। आखिर कुदरत का बुलावा कब तक रोके रहतीं। देह की अपनी प्रकृति भी तो होती है। अचानक गाड़ी चल पड़ी। बेचारी औरतें सलवारों के नाड़े बांधती, गिरती-पड़ती अपने-अपने डिब्बों की ओर भागीं। कुछ जवान और अंधेड़ औरतें तो चढ़ पायीं या चिल्लाते रिश्तेदारों द्वारा हाथ पकड़ कर ऊपर खींच ली गईं लेकिन कई बूढ़ी अधनंगी औरतें तेज होती गाड़ी के पीछे भागती-भागती पीछे ही छूटती गयीं, जबकि रिश्तेदार चिल्लाते ही रह गए। इन छूट गयी औरतों के चेहरों का भाव ऐसा था जैसे किसी कसाई के एक हाथ में बकरी या भेड़ का गला हो, दूसरे में छुरा। मुझे यह खौफनाक नजारा भूले नहीं भूलता। पता नहीं क्या हुआ होगा उन औरतों का जिनकी यात्रा बीच में ही समाप्त हो गयी। इस गाड़ी का ड्राइवर तो हिन्दू था, फिर भी...।

मनोज छाबड़ा की कविता



हमारी इस अभागी ट्रेन ने कुरुक्षेत्र आकर दम तोड़ दिया जहां एक बहुत बड़े शरणार्थी शिविर में कुछ दिन रहे, लाइनों में खड़े राशन लिया, कपड़े लिए। फिर कुछ दिनों बाद पता लगा कि शिविर में तेजी से हैजा फैल रहा है। सरकार ने हमें वहां से अलग-अलग जगहों पर भेजने का फैसला लिया। हम एक बार फिर रेल पटरी पर पड़े थे।

एक गाड़ी आई। पता नहीं किधर जा रही थी। कोई डेढ़ घंटे की यात्रा के बाद हमें कहा गया कि यहीं उतर जाओ, यही आपकी मंजिल है। यहां आकर पहली बार कैथल का नाम सुना मैंने। तब पता नहीं था इसी कैथल में ही मेरे जीवन का प्रमुख भाग बीतेगा और यह मेरे पिता जी की तथा मेरी कर्मस्थली बनेगी। यहां आकर फिर शरणार्थी शिविर....एक छोटे से कमरे में या तंबू में परिवार के 18-20 सदस्य, कभी परस्पर लड़ते-झगड़ते तो कभी बिछुड़े हुए वतन की याद में बैठे आंसू बहाते, हर रोज आजीविका की तलाश में बाहर निकलते, पीछे छूट गए रिश्तेदारों की खोज-खबर में छोटी मोटी यात्राएं करते। मेरे एक चाचा टेक चंद का अभी तक पता नहीं लग पाया। किसी ने बताया कि वह तो मुसलमान बनकर पाकिस्तान में रह गया, किसी ने बताया कि नहीं वह मारा गया है। मेरे पिता जी तथा चाचा जी उन्हें ढूंढने कई बार निकले पर हर बार निराश लौटे। उर्दू अखबारों में कहीं उसका नाम भूले से ही मिल जाए-यह नित देखते। कई बार इसी नाम के किसी दूसरे आदमी से जा मिलते और रो कर लौटते।

यात्राएं केवल रेल मार्गों या सड़क मार्गों या पुलों पर से गुजर कर ही नहीं होती, जीवन के कितने ही कठिन व दुष्कर मार्गों पर भी होती है। इन यात्राओं के अपने किस्से

अपने रोमांच हैं–अपने अपने संस्मरण हैं। हम लोगों के लिए नयी–नयी जगहों पर बस कर दैनिक जीवन की भीषण संघर्ष–यात्राएं शुरू हो गई। इस संघर्ष के दौरान हमें एक नया नफरत भरा नाम भी मिला जो कई बरस–लगभग पच्चीस तीस बरस तक हमारी पहचान बना रहा। यह नाम था–'रिफ्यूजी'। इस दाग को मिटाने के लिए तथा स्वाभिमान का जीवन जीने के लिए हम लोगों को कड़ी मेहनत करनी पड़ी। स्कूल में जब मैं पढ़ता था तो कई बार 'रिफ्यूजी' का शब्द गाली या गोली सा लगता था। यहां तक कि कालेज में भी नियुक्ति (सन् 1967 में) के समय जब मुझ से पहचान पूछी गई तो मेरा सच जानकर सहसा लोकल प्रबंधकों को जैसे झटका लगा। तो क्या आप 'रिफ्यूजी' हैं? मैनेजर साहब ने प्रश्न दागा, लेकिन तब तक मुझे नियुक्ति पत्र मिल चुका था। लेकिन बाद में इसी नगर ने, इसी आरकेएसडी कालेज ने मुझे सम्मान और स्नेह भी खूब दिया। हमने अपनी मेहनत से अपना स्थान बनाया।

जब मैं पांचवीं या छटी कक्षा में पढ़ता था तो एक दिन पता चला कि पाकिस्तान से यात्रियों का एक जत्था आ रहा है, जिसके मुखिया तौंसे के ख़्वाजा साहब हैं। उन लोगों ने दिल्ली पहुंच कर अजमेर शरीफ़ की गाड़ी पकड़नी थी। बीच का समय वे डेरा गाज़ी खां के लोगों से मिलकर बिताना चाहते थे। मेरे मामा कुंदन लाल जी ने (जो दरगाह में खजांची थे तथा वहां एक मात्र हिन्दू कर्मचारी थे और अब रेवाड़ी में कपड़े की दुकान करते थे) सबको ख़त लिख सूचित किया। वे ख़्वाजा साहब के साथ निरंतर डाक–चिट्ठी द्वारा सम्पर्क में थे।

पिता जी मुझे साथ लिए दिल्ली पहुंचे। लाहौर से गाड़ी आई तो डीजी खां, मुल्तान के इलाके के सैंकड़ों शराणार्थी जत्थे के स्वागत के लिए आगे बढ़े। ख़्वाजा साहब ने कितने ही लोगों का नाम ले लेकर उन्हें सीने से लगाया, मुझे भी उन्होंने 'अमरू' कहकर छाती से लगाया। विश्रामालय के अंदर बैठे या बाहर खड़े लोगों ने फिर अपने वतन की याद में आंसू बहाये, फिर एक बार हिचकियां सुनी गयीं। ख़्वाजा साहब ने अपनी कलाई से उतार कर एक घड़ी मुझे उपहार स्वरूप दी। यह घड़ी कई साल हमारे पास रही तथा अपनी टिक–टिक से याद कराती रही कि इंसानियत का धर्म सब धर्मों–मजहबों से ऊपर है। राजनीति जमीन को बांट सकती है। आसमान को भी बांट सकती है, लेकिन सांझी भाषा, विरासत व संस्कृति और इंसानियत को नहीं।

सम्पर्क–94662-39164

(पाकिस्तान की यात्रा के कुछ अविस्मरणीय अनुभव)

मुझे सब है याद ज़रा ज़रा...

❑महेन्द्र प्रताप 'चांद'

पाकिस्तान की इस संक्षिप्त-सी यात्रा के दौरान जहां–जहां भी हम लोग गए, हमारे अनदेखे मित्रों के अतिरिक्त अन्य सभी लोगों ने भी बहुत ही गर्मजोशी से हमारा स्वागत किया। इन सबने हमें अथाह प्रेम, स्नेह और मेहमाननवाज़ी से इतना अभिभूत था कि मैं हैरान होता हूं कि देश विभाजन के समय दोनों देशों में वे ऐसे कौन से निर्दयी और क्रूर लोग थे, जो एक–दूसरे के रक्त के प्यासे हो रहे थे। वे कौन दरिंदे थे, जिन्होंने बहुत ही निर्दयता से लाखों लोगों को मौत के घाट उतार दिया, औरतों का अपमान किया और मासूम बच्चों को नेज़ों में उछाला।

मेरा जन्म करोड़–लाल–ईसन में हुआ था। यह कस्बा देश विभाजन के समय जिला मुज्जफरगढ़ में था। करोड़ के प्राइमरी स्कूल में हमारी कक्षा के कमरे की दीवार पर मुज्जफरगढ़ के विषय में एक चाट लगा हुआ था, जिस पर लिखी हुई नज़म का यह पहला शे'र आज भी मेरे मनोमस्तिष्क में अंकित है–

चार तसीलां विच ज़िले दे, सुन ले मेरे भैय्या
अल्लीपुर, मुज्जफरगढ़, कोट अद्‌दू ते लैय्या।

पाकिस्तान बनने के कुछ वर्षों बाद लैय्या को तहसील से जिला बना दिया गया था और अब मेरी जन्मभूमि अर्थात् करोड़–लाल–ईसान इसी जिले के अंतर्गत आती है।

•

अक्तूबर, 2010 के शुरू में सहसा एक दिन मेरे परम हितैषी व प्रिय मित्र प्रो. उदयभानु हंस जोकि हरियाणा प्रदेश के राज्य कवि एवं हिन्दी के प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय साहित्यकार हैं, का टैलीफोन आया कि वे मुझे अपने साथ लेकर पाकिस्तान जाना चाहते हैं। उसी दिन ही हमने वीज़ा के लिए आवश्यक कागज पत्र तैयार करने शुरू कर दिए और दो–तीन दिनों के भीतर ही पाकिस्तान हाई कमिश्न (दिल्ली) के कार्यालय में जमा भी करवा दिए।

•

हंस जी का सम्बन्ध मुज्जफरगढ़ जिले के 'दायरा दीन पनाह' कस्बे से है। वे इससे पूर्व भी सन् 2006 में अपनी मातृभूमि के दर्शन करने गए थे। वहां उनके पैतृक मकान में शुरू ही से हाजी राणा जमशेद अली खान रहते हैं। प्रो. हंस पहली बार जब वहां अपना मकान देखेने गए तो राणा साहिब ने उनका हार्दिक स्वागत किया था और यह भेंट उनके बीच एक गहरी मित्रता में बदल गई थी। अब 24 अक्तूबर 2010 को जमशेद अली खां साहिब की बेटी का विवाह था तथा इन मधुर संबंधों को और सुदृढ़ करने के लिए हंस जी इस खुशी के अवसर पर वहां उपस्थित होकर विवाह के सारे रीति–रिवाजों में शामिल होना चाहते थे और मुझे भी इनमें सम्मिलित करना चाहते थे।

•

20 अक्तूबर तक जब वीज़ा के बारे में कोई सूचना प्राप्त न हुई, तो हमें थोड़ी निराशा भी हुई, लेकिन 21 अक्तूबर दोपहर से पहले 'कुफ्र टूटा खुदा–खुदा करके'। हंस जी का फोन आया कि वीज़ा लग गया है। हम समय गंवाना नहीं चाहते थे। हालांकि मैं जानता था कि आज का दिन मुझे बुरी तरह से थका देगा, लेकिन एक चीनी कहावत है कि हजारों मील की यात्रा एक कदम ही से शुरू होती है। इसीलिए मैंने समय रहते ही अपना सामान बांध लिया और उसी रात को अम्बाला से बस द्वारा अमृतसर के लिए रवाना हो गया।

•

दरअसल 2007 में मैंने हरियाणा उर्दू अकादमी (पंचकूला) के लिए एक

शोध प्रोजेक्ट पर कार्य किया था। इस प्रोजेक्ट के लिए मुझे भारत के अतिरिक्त पाकिस्तान के भी उन सभी शायरों, साहित्यकारों तथा पत्रकारों के जीवन वृत एवं पद्य तथा गद्य लेखन के नमूने चाहिए थे जो देश के विभाजन के समय हरियाणा से निर्वासित होकर पाकिस्तान चले गए थे। इस सिलसिले में मेरे हितैषी जनाब इक़बाल 'सहर अम्बालवी' (सम्पादक मासिक 'रुशहात') जो लाहौर में रहते थे तथा मेरे सुपरिचित मगर अनदेखे मित्र प्रो. जाफर बलोच (जो लैय्या ही के रहने वाले थे और वहां गवर्नमेंट साईंस कालेज में उर्दू के लेक्चरर थे तथा एक जाने-माने शायर व अन्वेषक भी थे) ने विशेष रूप से मेरी बहुत सहायता की थी। इन्हीं दोनों मित्रों की सहायता से मैं हसन असकरी 'काजमी', सुरूर 'अम्बालवी', मशकूर हुसैन 'याद' और अनवार फ़ीरोज जैसे कई महानुभावों से परिचित हुआ था। अफसोस कि अब इक़बाल सहर अम्बालवी और प्रो. जाफ़र बलोच दोनों ही इस दुनिया में नहीं हैं।

•

बाघा बॉर्डर से लाहौर 25-30 किलोमीटर दूर है। प्रिय शुएब को हमारे कारण लाहौर से बाघा बॉर्डर पर दो बार आना-जाना पड़ा। इस विचार से ही मुझे बहुत वहशत हो रही थी। जैसे-तैसे बाद दोपहर दो बजे हम टैक्सी लेकर बाघा बार्डर पहुंचे। (अमृतसर से भी बाघा बॉर्डर लगभग तीस किलोमीटर दूर है) बिना और देरी किए हम अपनी ओर के कस्टम चेकिंग ऑफिस के अंदर प्रविष्ट हो गए। इस कार्यालय के सभी कर्मचारी शिष्ट, मधुरभाषी व तत्पर हैं। करीब आध-पौन घंटे में औपचारिकताएं पूरी करने के बाद हम वहां से बाहर आए तो थोड़ी ही दूरी पर सामने पाकिस्तान बॉर्डर का गेट था। उसे पार किया तो वर्षों बाद अपनी उस मातृभूमि पर कदम रखते ही मन अभिभूत हो उठा। अनूठी प्रसन्नता की अनुभूति हुई जो आत्मा को तृप्त कर गई। वर्षों से मुझे इसी क्षण का इंतजार था। एक पल के लिए तो मैं किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया। भावावेश में मेरी आंखें नम हो गईं और अधरों पर बच्चों-सी मुस्कान तैरने लगी। वहां के कस्टम ऑफिस के परिसर में दाखिल हुए तो सईद साहिब पहले से ही हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। बहुत गर्मजोशी के साथ उन्होंने हमारा स्वागत किया। हमारा सामान, कैमरा आदि सभी वस्तुएं चेकिंग के लिए संबंधित विभाग में भिजवा दीं और हमें अपने साथ भीतर ले गए तथा चाय आदि से हमारी आवभगत की। वहां से फारिग होकर बाहर निकले, तो देखा कि शुएब भी वहां पहुंचे हुए हैं। गले मिलने के बाद उन्होंने हमारा सामान अपनी गाड़ी में रखवाया और हम लाहौर के लिए चल पड़े।

•

मैं कार की अगली सीट पर बैठा हुआ था। अंततः अपनी प्रिय मातृभूमि को सजदा करने का मेरा स्वप्न साकार होने वाला था। मैंने बाहर झांका। सड़क के दोनों ओर वृक्षों की कतारें, खेत-खलिहान, उनमें काम करते किसान, चरागाहों में जानवरों के झुंड, सड़कों पर टहलते लोग, स्कूटर सवार...। सब कुछ वैसा ही था जैसे मेरे देश भारत में था। एक पल के लिए भी मुझे अजनबी होने का अहसास नहीं हुआ। सब कुछ परिचित और अपना सा लग रहा था। मैंने परिन्दों को बिना किसी भय के सीमाओं को लांघते देखा। वे स्वच्छंद थे। सरहद के इस पार वे घरौंदा बनाते होंगे और दूसरी ओर दाना चुगने जाते होंगे। उनकी स्वच्छंदता और निर्भयता मानो इंसान का उपहास कर रही थी। मन में इच्छा जागृत हुई कि काश मैं भी एक कपोत होता और शांति दूत बनकर सरहद के दोनों ओर शांति और भाईचारे का पैगाम देता...। लाहौर पहुंचने में हमें 45 मिनट का समय लगा।

•

देश विभाजन के समय मेरी आयु सिर्फ बारह वर्ष थी। निर्वासन के समय रेल की यात्रा के दौरान मैंने लाहौर का सिर्फ रेलवे स्टेशन ही देखा था, इसलिए उस रात मुझे बहुत गर्व का अनुभव हो रहा था कि आज मैं उस शहर में दाखिल हुआ हूं जिसके विषय में यह कहा जाता है कि 'जिहने लाहोर नईं वेख्या ओह जम्मया ही नईं' अर्थात् जिसने लाहौर नहीं देखा, वह पैदा ही नहीं हुआ। लेकिन इस हसीन शहर की बाकायदा सैर करने के लिए हमें अभी कुछ दिन और इंतजार करना था, क्योंकि अगले ही दिन हमें किसी भी स्थिति में शाम तक दायरा दीन पनाह पहुंचना था। लाहौर देखने की हमारी यह इच्छा तब पूरी हो सकी, जब हम पुनः 30 अक्तूबर की सुबह फिर यहां आए थे।

•

दोपहर के बाद, मख़दूम साहिब हमें दायरा दीन पनाह के गवर्नमेंट हाई स्कूल में ले गए, जहां वर्षों पहले हंस जी ने अपनी स्कूली शिक्षा प्राप्त की थी। स्कूल के हेडमास्टर मलिक तवक्कुल हुसैन और उनके अन्य स्टाफ सदस्यों से मिलने के बाद हम स्कूल के बच्चों से मिले जो हेडमास्टर साहिब ने अपने कार्यालय के बाहर कम्पाउंड में एकत्रित कर लिए थे। हम तीनों ने बारी-बारी से छात्रों को संबोधित किया और उन्हें गर्व के साथ यह बताया कि हमारा संबंध भी इसी पवित्र धरती से है। इसके बाद कुछ बच्चे मेरे पास आ गए और प्रश्न पूछने लगे। एक बच्चे ने मुझसे कहा कि आप इतनी अच्छी उर्दू और सिरायकी बोलते हैं तो आप इस्लाम क्यों नहीं कुबूल कर लेते। मुझे उसके भोलेपन पर बहुत प्यार आया और मैंने उससे कहा कि 'बेटे! उर्दू और सिरायकी सिर्फ मुसलमानों की जुबानें नहीं हैं और मैं इस्लाम कुबूल भी कर लूं तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। ज्यादा महत्व इस बात का है कि ईश्वर ने हमें जिस धर्म में पैदा किया है, उसी में रहकर हम अन्य सभी धर्मों का आदर करें और प्रत्येक धर्म की अच्छी शिक्षाओं पर अमल करने की कोशिश करें। वह बहुत ही प्रसन्न हुआ और उसने क्षमा मांगी। हालांकि मुझे उसके मासूम प्रश्न पर तनिक भी दुःख नहीं हुआ था, क्योंकि बच्चे तो ईश्वर का रूप होते हैं।

•

27 अक्तूबर 2010

हम लोगों ने प्रिय मुनव्वर बलोच के साथ उन्हीं की कार में मेरी प्रिय मातृभूमि यानी करोड़ लाल ईसन के लिए प्रस्थान किया। यही वह धरती है जहां आज से लगभग पचहतर वर्ष पूर्व मैंने जन्म लिया था, लेकिन सन् 1947 में विवश होकर इसे अलविदा कहकर मुझे भारत आना पड़ा था। देश विभाजन के रक्तरंजित दृश्य आज भी जब कभी याद आ जाते हैं तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं और दिल रो उठता है, लेकिन आज 63 वर्षों के बाद अपनी मातृभूमि के दर्शन करने और यहां की पवित्र माटी को अपने माथे से लगाने की जो वर्षों पुरानी अभिलाषा थी, पूरी होने जा रही थी। उसकी अनुभूति मात्र से ही मन और आत्मा आह्लादित हुए जा रहे थे। लैय्या से करोड़ लगभग पच्चीस-तीस किलोमीटर की दूरी पर है। वहां जाने के लिए दो मार्ग हैं। मेरे आग्रह पर मुनव्वर बलोच में उस रास्ते से लेकर गए जिस पर सिरी गाढू लाल जी का मंदिर और हज़रत

राजन शाह बुख़ारी का मज़ार है। ये दोनों समाधि-स्थल एक-दूसरे के बहुत समीप हैं।

श्री गाढू लाल जी के मंदिर का निर्माण कार्य सोलहवीं सदी के पहले दशक में प्रारंभ हुआ था। जनश्रुति के अनुसार अठारहवीं सदी में इसका निर्माण कार्य समाप्त हुआ और ब्राह्मण पुत्र श्री गाढू लाल जी ही की देखरेख में यह सम्पन्न हुआ था। उनके देहावसान के बाद उनकी संतान भी इसी नाम से जानी जाती है। पाकिस्तान बनने के बद यह मंदिर वक़्फ़ विभाग के अधीन आ गया है और यह स्थल फ़िदा हुसैन नामक एक व्यक्ति ने पट्टे पर ले लिया था। मंदिर का भवन और चारदीवारी इस समय काफी जर्जर स्थिति में है। हालांकि मंदिर के द्वार पर गाढू लाल जी के नाम का पत्थर अभी तक मौजूद है। मंदिर के भीतर निर्माण के अन्य चिन्हों के अतिरिक्त हिन्दुओं के पवित्र देवी-देवताओं की कुछ मूर्तियां भी मौजूद हैं।

हम लोग अभी इस मंदिर के बाहर ही देख रहे थे कि मुनव्वर बलोच साहिब मंदिर के अंदर पालथी मारकर ध्यान में लीन हो गए। हम भीतर प्रविष्ट हुए तो उन्हें इस स्थिति में देखकर सुखद आश्चर्य हुआ। बाद में उन्होंने हमें बताया कि वो हर महीने कम से कम दो बार यहां अवश्य दर्शनार्थ आते हैं और उन्हें यहां बैठकर आत्मिक शांति मिलती है।

यहां सर झुकाने के बाद हम आगे बढ़े तो थोड़ी दूरी पर स्थित महान फ़कीर हज़रत अली राजन शाह बुख़ारी उपनाम 'सदाबाग' के मज़ार पर हाज़िर हुए।

मज़ार पर सर झुकाने के बाद हमने करोड़ लाल ईसन की ओर प्रस्थान किया। लगभग आधे घंटे के बाद हम उस पावन धरती पर पहुंच गए, जिसे देखने और जिसकी पवित्र माटी को चुमने के लिए आंखें बरसों से तरस रही थीं।

जैसे ही मैंने करोड़ की पावन धरती पर कदम रखे, एक क्षण के लिए मुझे अपनी आंखों पर विश्वास ही न हुआ और यूं लगा कि मैं कोई स्वप्न देख रहा हूं। मेरे दिल की धड़कनें तेज हो गईं। मैंने झुककर अपनी मातृभूमि की पवित्र मिट्टी को अपने माथे पर लगाया।

करोड़ में डा. गुल अब्बास के कई मित्र व परिचित हैं। इसलिए डा.

अपनी जन्मभूमि को संबोधित करते हुए मैंने जब अपनी यह नज़्म प्रस्तुत की तो पढ़ते-पढ़ते कई बार मन भर आया और सभा में उपस्थित लोग भी भावविभोर हो गए। अपनी मातृभूमि को प्रणाम करने की वर्षों पुरानी अभिलाषा की अभिव्यक्ति करते हुए जब मैंने आख़िरी पंक्तियां पढ़ीं तो भावावेग से गला रुंध गया और आंखों से बरबस खुशी के आंसू छलक पड़े क्योंकि आज बरसों से संजोई उन इच्छाओं की पूर्ति हो रही थी-

नज़्र-करोड़

मिरे करोड़ की पाकीज़ा सरज़मीं! तुझको।
तिरे दयार का शायर सलाम करता है।
झुका के अपनी जबीने-ए-नियाज़ तेरे हुज़ूर।
ज़बान-ए-शे'र में तुझसे कलाम करता है।

तिरी ज़मीं पे विलादत का है शरफ़ मुझको।
तिरी फ़ज़ाओं से रिश्ता है मेरे बचपन का।
अभी तो बारह बहारें ही मैंने देखी थीं।
कि झेलना पड़ा मुझको वतन का बंटवारा।
खुदाई क़हर था या खेल था सियासत का।
ये मेरी कमसिनी उस वक़्त कुछ समझ न सकी।
बड़ा हुआ तो नया वक़्त था, नए हालात।
मिरी निगाह तिरी दीद को तरसती रही।

नए दयार में जब-जब तिरा ख़याल आया।
तो एक बर्क़-सी क़ल्बे-हज़ीं पे लहराई।
मैं तुझसे पूछता हूं, ऐ मिरे अज़ीज़ वतन!
तुझे भी क्या कभी बिछड़े हुओं की याद आई?

नहीं, नहीं, नहीं, तू भी मलूल है अब तक
है तेरे दिल में भी क़ायम अभी मिरी तस्वीर
ये तेरी दीद की हसरत जो आज तक है जवां।
तिरी फ़ज़ाओं की ज़ज्बे-कशिश की है तासीर।

वो घर, वो कूचे, वो गलियां, वो रहगुज़ार तिरे।
हैं दिल पे नक़्श इन्हें किस तरह भुलाऊं मैं!
नसीब हो तिरा दीदार, बस दुआ है यही।
जबीं पे ख़ाके-मुक़द्दस तिरी सजाऊं मैं।

मिरे करोड़ की पाकीज़ा सरज़मीं! तुझको।
तिरे दयार का शायर सलाम करता है।
झुका के अपनी जबीने-ए-नियाज़ तेरे हुज़ूर।
ज़बान-ए-शे'र में तुझसे कलाम करता है।

अब्बास वां अपने एक मित्र जनाब ईसा ख़ां जरगर (भूतपूर्व काउंसलर) को पहले से ही हमारे वहां पहुंचने की सूचना दे चुके थे। करोड़ के हमारे पैतृक मकान में सबसे पहले ईसा खां साहिब ही रहते थे। कुछ वर्ष पश्चात् मकान के एक हिस्से में आग लग गई थी और उन्होंने यह मकान किसी और को बेच दिया था। ईसा खां साहिब ने पहले चाय-नाश्ते से हमारा स्वागत किया और फिर दोपहर का भोजन भी खिलाया। भोजन से पहले वहीं उनके घर पर एक छोटी-सी महफिल का आयोजन भी हो गया।

तत्पश्चात वे मुझसे पूछने लगे कि क्या आपको यहां के अपने मकान के विषय में कुछ याद भी है? मैंने मुस्कराकर उत्तर दिया कि वह सब कुछ तो अभी तक मेरी स्मृतियों में अंकित है और मैं किसी की सहायता के लिए बिना स्वयं ही इसको ढूंढकर दिखाऊंगा। मैंने उन्हें बताया कि यहां सदर रोड पर एक अस्पताल था और उसके बगल में ही सदर थाना था। वहां से थोड़ा इस ओर एक सरकारी स्कूल था जिसके सामने वाली गली में बायीं ओर दो आखिरी घर छोड़ कर हमारा तीन मंजिला मकान था। वहां उपस्थित सभी लोग यह सुनकर आश्चर्यचकित भी हुए और प्रसन्न भी। वे कहने लगे कि वह गली तो यहां से बिल्कुल करीब है। हम आपको वहां ले जाएं तो क्या आप अपना घर ढूंढ लेंगे? मैंने पूरे आत्मविश्वास के साथ 'हां' में जवाब दिया तो वे सब हमें उस गली में ले गए और मैं सीधा अपने मकान के सामने खड़ा हो गया। दिल की धड़कन तेज हो गई। आंखों से बेतहाशा खुशी के आंसू बहने लगे। श्रद्धा के साथ मेरा सर झुक गया।

आज भी हमारे घर के मुख्य द्वार के ऊपर वह पत्थर लगा हुआ है, जो मेरे स्वर्गवासी पिताजी ने सन् 1934 में मकान के निर्माण के समय लगवाया था और जिस पर मेरी बड़ी बहन के नाम पर उर्दू और हिन्दी में 'प्रेम निवास' लिखा हुआ है। दरवाजे पर ताला लटका हुआ था, क्योंकि नए मालिक मकान पास के किसी कस्बे में रहते थे। खैर, ईसा खां साहब ने

उनसे चाबी मंगवाकर अपने पास रख ली थी। वे ताला खोलने लगे तो मैंने उन्हें रोकते हुए बताया कि इस घर के अंदर का नक्शा भी पूर्णत: मेरी स्मृतियों में कैद है, भीतर प्रवेश करते ही बाईं और गुसलखाना था, जिसमें एक हैंडपम्प भी लगा हुआ था तथा दाईं हमारी बैठक थी। अंदर तक अहाता था जिसके एक ओर किचन और स्टोर थे तथा इसके पीछे एक बड़ा हाल था। इसके ठीक पीछे दो कमरे थे। अहाते में बाईं और गुसलखाने के पीछे ऊपर जाने के लिए सीढ़ियां थीं। पहली मंजिल पर हमारी 'माड़ी' थी और बाहर काफी खुली छत थी। जिसके बाईं और एक सीढ़ी थी और बाहर की तरफ की दीवार पर चीनी के बने हुए काले रंग के कुछ गमले लगे हुए थे। ईसा खां साहब और उनके साथ आए लोगों को बहुत हैरत हुई। जब उन्होंने घर का ताला खोला और हम लोग अंदर प्रविष्ट हुए तो हुबहू वही नक्शा था। हालांकि लगभग सारी छतें गिराई जा चुकी थीं, क्योंकि मकान के नए मालिक अब इसका पुनर्निर्माण करवा रहे हैं।

एक लंबे अंतराल के पश्चात यह क्षण निश्चित रूप से मुझे घर लौट आने की सुखद अनुभूति दे रहा था। मैं आज अपनी जन्मभूमि को सजदा करने आया था। वर्षों की आकांक्षा को पूरा होते देख मेरी प्रसन्नता की कोई सीमा न थी। घर में प्रवेश करते ही बचपन की स्मृतियों ने मुझे जकड़ लिया। बैठक के भीतर प्रवेश किया तो देखा कि छत और दीवारें तो अत्यंत जर्जर स्थिति में हैं, लेकिन सामने लकड़ी की अलमारी पर लगे आदकमद आईने में मेरा प्रतिबिम्ब बहुत साफ नज़र आ रहा था। यूं लगा कि जैसे इन बीच के 63 वर्षों की धूलि झाड़कर मेरे बचपन की स्मृतियों को उसने खुद में कैद कर लिया हो...जैसे यह इतने वर्षों से मेरे लौटने की प्रतीक्षा कर रहा हो और आज मेरे स्वागत में चलचित्र की भांति वह इन चित्रों को एक-एक करके मेरे सामने अंकित कर रहा हो। मेरी आंखों से बरबस आंसू छलक पड़े। मैं बहुत देर तक उसे चूमता रहा और अपने बचपन की यादों के समंदर में उतरता रहा...आंसू थे कि बहते ही चले जा रहे थे। एक बार फिर...शायद हमेशा के लिए इसे अलविदा जो कहना था...। मैं घर के कोने-कोने को छूना चाहता था, उन दीवारों से लिपटना चाहता था। यह घड़ी सुखद भी थी और विषादपूर्ण थी। सुखद इसलिए कि मैं घर के कण-कण को स्पर्श कर सकता था और विषादपूर्ण इसलिए कि ये पल जल्दी ही मुझसे छिन जाने वाले थे। कौन जाने इन अनुभूतियों को इस जीवन में पुन: जी पाऊंगा या नहीं? शायद हां ...शायद नहीं। मेरा हृदय जहां इन मधुर अनुभूतियों से सराबोर हो रहा था, वहीं मेरा मस्तिष्क आसन्न वियोग की कसक से जूझ रहा था। मैं मन ही मन सोच रहा था ओह मां! मेरी मां। मैं कैसे फिर तुमसे बिछुड़ सकता हूं? लेकिन जल्दी ही विदा लेने का समय आ गया। मानो समय पंख लगाकर उड़ गया हो। नम आंखों से मैंने एक लिफ़ाफ़े में अपनी पुश्तैनी मकान की कुछ मिट्टी संभाल ली, जिसे वापिस भारत आने के बाद मैंने अपने पूजाघर में सजा दिया है।

बोझिल मन से हम वहां से बाहर निकले तो कई और लोग हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। जिनमें विशेष रूप से डा. आशूलाल 'फ़क़ीर' का उल्लेख करना आवश्यक है। आशूलाल जी का जन्म भी यहीं करोड़ ही में हुआ था। इनका असली नाम मोहम्मद अशरफ़ है। इनकी मां श्रीमती बख़्त बीबी बचपन में प्यार से इन्हें 'मेरा लाल आशू' कहकर पुकराती थीं। बाद में यही नाम इनकी पहचान बन गया। आशूलाल बहुत ही योग्य और विलक्षण प्रतिभा के मालिक हैं। एमबीबीएस करने के बाद वे सरकारी नौकरी में आ गए और तहसील करोड़ में डिप्टी डिस्ट्रिक्ट आफिसर (हैल्थ) तैनात हो गए। सिरायकी में इनकी बहुत सी लोहड़ियां, काफ़ियां और लोकगीत लोगों की ज़बान पर हैं। मुलाक़ात के दौरान उन्होंने मुझे अपने दो सिरायकी काव्य संग्रह भी उपहारस्वरूप दिए। सिंध दरिया से इन्हें विशेष प्रेम है और इसका उल्लेख इन्होंने अपने शे'रों में कई स्थानों पर बहुत ही प्रेम और श्रद्धा किया है।

अपने पैतृक मकान को एक बार फिर अलविदा कहते हुए मैंने उपस्थित लोगों को बताया कि यहां हमारे घर के सामने मास्टर भोजाराम 'हैरत' रहा करते थे, जो पंजाबी और सिरायकी मिली-जुली भाषा में बहुत ही बढ़िया शे'र कहते थे। वहां से थोड़ी ही दूरी पर एक कुआं था, जिसे 'हौंसला खूह' कहा जाता था। (सिरायकी में हौसला को हौंसला और कुएं को पंजाबी और सिरायकी में खूह कहते हैं।) इस कुएं के पास ही एक मंदिर भी था और उस गली का नाम 'हौंसला गली' था। मुझे मालूम नहीं कि उस कुएं का नाम 'हौंसला खूह' और उस गली का नाम 'हौंसला गली' कब और क्यों पड़ा, लेकिन उन सभी लोगों के लिए ये नाम नए थे। वहां ले जाकर उन्होंने मुझे वह कुआं और वह मंदिर भी दिखाया। वहीं से थोड़ी दूर बाज़ार था। वहां पहुंचे तो मैंने उन्हें बताया कि वहां सामने ही सोडा वाटर की एक दुकान हुआ करती थी। जिसके बगल में मुरला नाम का एक हलवाई था जो हर शाम पकौड़े बनाता था। वे सभी लोग मेरी स्मरण शक्ति पर एक बार फिर हैरान हुए हालांकि मेरी इन बातों की पुष्टि करने वाला उनमें से कोई नहीं था।

तदुपरांत हमने डा. आशूलाल, ईसा खां व अन्य सभी बंधुओं का आभार प्रकट करते हुए उनसे जाने की अनुमति मांगी और वहां से सीधा हज़रत मख़दूम शैख़ लाल ईसन के पवित्र मज़ार पर हाज़िरी देने के लिए पहुंचे। यह मज़ार अस्पताल और सदर थाना से थोड़ी ही आगे दाईं और स्थित है। इस पवित्र मज़ार की इमारत और नाम आज भी मेरे मन:मस्तिष्क पर अंकित हैं और मुझे यह भी याद है कि यहां हर साल (भादों की चौदह तारीख़ को) चौदहवीं का मेला लगता था, जिसमें दूर-दूर से लोग आते थे।

शाम हो गई थी और मुनव्वर बलोच साहिब भी हमारी इच्छाओं का सम्मान करते हुए सुबह से ही हमें अपनी कार में लिए जहां-तहां घूम रहे थे अत: अब हम वापिस लैय्या जाने के लिए रवाना हुए। रास्ते में किसी तकनीकी खराबी के कारण कार खड़ी हो गई, लेकिन दो-तीन कार और बाइक से जाने वाले मुसाफिरों की तत्परता से हम निकट के एक कस्बे में पहुंच गए, जहां से गाड़ी ठीक करवाकर करीब 9 बजे लैय्या पहुंचे। रात का खाना खाया। जिसके बाद कई मित्र मिलने के लिए आ गए और देर रात तक उनके साथ चर्चा-परिचर्चा होती रही। तत्पश्चात् हमने अपना सामान बांधना शुरू किया, क्योंकि अगले दिन हमें वापसी के लिए लैय्या से रवाना होना था। यह सफर हमने रेल द्वारा तय करने का फैसला किया, क्योंकि मैं और हंस जी अपने बचपन की कुछ और हसीन यादों को ताजा करना चाहते थे। देश विभाजन से पहले अपनी किशोरावस्था में गर्मी की छुट्टियों में हम कलूरकोट, जिला मियांवाली (जहां मेरे पिताजी हाई स्कूल के हेडमास्टर थे) से अपने शहर करोड़

लाल ईसन के लिए इसी रेल द्वारा ही आया-जाया करते थे।

29 अक्तूबर 2010

सुबह होते ही मख़दूम साहिब मुलतान से हमारी ख़ातिर फिर मुज्फरगढ़ लौट आए। यकीन साहिब के घर नाश्ता करने के बाद हमने उनके साथ मुलतान के लिए प्रस्थान किया। वहीं से रात के 11 बजे की बस द्वारा हमें लाहौर के लिए वापिसी का सफर तय करना था।

मुलतान पहुंचते ही मख़दूम साहिब हमें सीधा सिरायकी दैनिक पत्रिका 'झोक' के कार्यालय ले गए, जहां इस अख़बार के मालिक व मुख्य संपादक जनाब ज़हूर अहमद धरेजा अपने 30-40 साहित्यिक मित्रों के साथ हमारी राह देख रहे थे। चाय-पानी के बाद वहां एक महफिल का आयोजन किया गया, जिसमें हमारे अतिरिक्त वहां के कुछ स्थानीय शायरों ने भी श्रोताओं को मंत्र मुग्ध किया। इसी बीच थोड़ी देर के लिए मैं वहां से उठकर धरेजा साहिब के कार्यालय में जा बैठा। मेरे पीछे-पीछे एक और सज्जन भी पास आकर बैठ गए और मुझसे बातचीत करने लगे। मेरे पूछने पर उन्होंने बताया कि उनका नाम चौधरी गुलाम सरवर अराई है। देश विभाजन से पहले उनके पिताजी अब्दुल गफ़ूर जिला अम्बाला के एक गांव उदयपुर में नंबरदार थे। आजकल वे लोग मुलतान के एक करीबी कस्बे रंगीलपुर में रहते हैं।

मेरी यादों में मुलतान के सोहन हलवे की मिठास अभी भी रस घोल रही थी। मैंने गुलाम सरवर साहिब से सरसरी तौर पर पूछ लिया कि क्या यहां पास में इस मिठाई की कोई अच्छी-सी दुकान है? तभी मेरे पास कोई और साहिब आकर बैठ गए और इस बीच चौधरी गुलाम सरवर कहीं गायब हो गए। लगभग पंद्रह मिनट बाद वे फिर आए तो उनके हाथ में सोहन हलवे के तीन-चार डिब्बे थे जो उन्होंने मुझे सप्रेम भेंट किए। मैंने उन्हें उनकी कीमत देनी चाही लेकिन वे तैयार न हुए और कहने लगे कि यह मेरी तरफ से आपके लिए एक तुच्छ-सी भेंट है। मुझे बाद में बहुत बुरा भी लगा कि उन्हें मेरे कारण नाहक इतनी तकलीफ़ उठानी पड़ी। लेकिन यह तो पाकिस्तान के लोगों के अथाह प्रेम और स्नेह का एक और प्रमाण था, जिसमें हम लगभग एक सप्ताह से आकंठ डूबे हुए थे।

लगभग दो सप्ताह की असंख्य, स्मृतियां, अत्यंत मधुर व सुखद अनुभवों तथा प्रेम को दामन में समेटे हुए हम अपने-अपने घरों को लौट आए।

पाकिस्तान की इस संक्षिप्त-सी यात्रा के दौरान जहां-जहां भी हम लोग गए, हमारे अनदेखे मित्रों के अतिरिक्त अन्य सभी लोगों ने भी बहुत ही गर्मजोशी से हमारा स्वागत किया। इन सबने हमें अथाह प्रेम, स्नेह और मेहमाननवाज़ी से इतना अभिभूत था कि मैं हैरान होता हूं कि देश विभाजन के समय दोनों देशों में वे ऐसे कौन से निर्दयी और क्रूर लोग थे, जो एक-दूसरे के रक्त के प्यासे हो रहे थे। वे कौन दरिंदे थे, जिन्होंने बहुत ही निर्दयता से लाखों लोगों को मौत के घाट उतार दिया, औरतों का अपमान किया और मासूम बच्चों को नेज़ों में उछाला।

लेकिन नहीं, उस समय भी कुछ ऐसे फरिश्ते मौजूद थे, जिनका अन्तःकरण जीवित था। मुझे आज भी स्मरण है कि हमारे शहर करोड़ लाल ईसन को एक मुसलमान थानेदार ने बचाया था। उसने सभी हिन्दुओं को यकीन दिलाया था कि जब तक मैं जीवित हूं, आप लोगों में से किसी पर भी आंच नहीं आने दूंगा और उसने अपना यह वचन निभाया भी।

इसी प्रकार जब हमारे शहर के गैर मुस्लिम लोगों को वहां से भारत ले जान के लिए करोड़ रेलवे स्टेशन पर रेलगाड़ी आई थी तो उस रहमदिल थानेदार ने सबको कह दिया था कि रात ही रात में गाड़ी में अपना जितना सामान लाद सकते हो, लाद लो। गाड़ी सुबह रवाना होगी। हमारे घर का सामान भी उसी रात के पिछले पहर पांच-छह मुसलमान धोबियों ने ही अपने-अपने गधों पर लादकर रेलवे स्टेशन तक पहुंचाया था और उसके लिए कोई पैसा आदि लेने से इन्कार कर दिया था। बल्कि वे सभी बिलख-बिलख कर रोने लग गए थे।

वहां से हिजरत करके हम लोगों ने पहले जालंधर के एक कैंप (संभवतः गढ़ा कैंप) में शरण ली थी। कुछ दिनों के बाद मेरे पिता जी की तैनाती ज़ीरा (जिला फ़िरोजपुर, पंजाब) के जीवनमल डिस्ट्रिक्ट बोर्ड हाई स्कूल में हैडमास्टर के पद ही हो गई तो हम जालंधर छोड़कर वहां जाकर रहने लगे। कुछ महीने बाद मैंने अपने स्कूल में आने वाली एक उर्दू पत्रिका में 'साकिब ज़ीरवी' साहिब का एक मर्मस्पर्शी लेख पढ़ा था। जिसमें उन्होंने लिखा था कि किस तरह ज़ीरा में उनके एक सिक्ख दोस्त (सरदार गुरमुख सिंह दर्जी) ने उनकी जान बचाई थी। दंगों के दौरान साक़िब अपने इसी दोस्त के घर में छिपे हुए थे। बलवाईयों को मालूम हुआ तो उन्हें कत्ल करने के लिए वहां पहुंच गए। गुरमुख सिंह को जब और कुछ न सूझा तो उन्होंने अपने दोस्त साक़िब को चारपाई पर लेटी हुई अपनी बीमार पत्नी की बग़ल में ही सुला दिया था और ऊपर से उसी कम्बल से 'साक़िब' को भी ढंक दिया था, जो उनकी पत्नी ने सर्दी लग जाने की वजह से ओढ़ रखा था। हमलावरों ने सारे घर की तलाशी ली। जब दंगाई उस कमरे में पहुंचे तो गुरमुख सिंह ने कहा कि यहां मेरी बीमार पत्नी लेटी हुई है। उनकी पत्नी का मुंह कम्बल से बाहर नज़र आ रहा था। उन दरिंदों ने कभी सपने में भी नहीं सोचा होगा कि कोई गैर मुसलिम (सिक्ख) अपने मुसलमान दोस्त की ख़ातिर इतनी बड़ी कुर्बानी भी दे सकता है। लिहाजा वे लोग चले गए और इस तरह 'साक़िब ज़ीरवी' की जान बच गई। हालात सुधरने के बाद वे हिजरत करके पाकिस्तान चले गए।

यह लेख पढ़कर मुझे सरदार गुरमुख सिंह जैसे महान इंसान को देखने और उन्हें सलाम करने की इच्छा हुई। मैं उसी शाम बाज़ार गया और उनकी दुकान का पता लगाया। वहां पहुंच कर श्रद्धा से उनके सामने सर झुकाया। इसके बाद भी जब कभी मैं बाज़ार से गुज़रता तो जरूर उनकी दुकान पर जाकर उनके पांव छूता था और उनका आशीर्वाद लिया करता था।

मेरी आज भी यही धारणा है कि हर देश और हर समुदाय में गुरमुख सिंह जैसे मसीहा होते हैं जो सिर्फ प्यार और मोहब्बत ही की भाषा जानते हैं। प्रेम की भाषा ही ईश्वर की भाषा है। जो समस्त संकीर्णताओं से परे, समस्त प्रतिबंधों से दूर संवेदनाओं और अनुभूतियों की भाषा है। जब तक गुरमुख सिंह देवता सरीखे इन्सान इस धरती पर जिंदा हैं, इंसानियत कभी मर नहीं सकती। प्रेम का बंधन ही ऐसा बंधन है, जो घृणा और संकीर्णता के अंधेरे को दूर कर सद्भावना और बंधुत्व की लौ जगा सकता है। आमीन!

सम्पर्क : 94161-55918

•

सपने में भी नहीं सोचा था

हरिचंद गणहोत्रा से अरुण कुमार कैहरबा की बातचीत

कोई भी चीज खाते और पहनते हुए वे पाकिस्तान के खान-पान के बारे में बताने लगते हैं। वहां की मिट्टी, वहां की खेती, वहां के लोग, उनकी बोली की मिठास उन्हें हमेशा याद रहती है और उसका जिक्र करने से नहीं चूकते। भारत और पाकिस्तान के बीच में चलने वाली खींचतान और दोनों तरफ के नेताओं की बयानबाजी के प्रति उनमें खासा रोष है।

आजादी के साथ ही भारत और पाकिस्तान के रूप में विभाजन की प्रक्रिया बड़े पैमाने पर मार-काट के दौर से गुजरी। लोगों के जीवन में भी कोहराम मचा दिया था। उपद्रव का फायदा उठाकर दोनों ही तरफ लुटेरा प्रवृत्ति ने सिर उठा लिए। दंगाइयों की जुबान पर धर्म का नाम था, लेकिन उनकी कार्रवाईयां मानवता को कुचलती जा रही थी। धर्म के नाम पर बड़े स्तर पर हत्याएं, लूटपाट, शोषण और आगजनी की घटनाएं हुईं। कितने ही लोगों को अपनी जान से हाथ धोना पड़ा। घर-बार से उजड़ना पड़ा। दर-दर की ठोकरें खानी पड़ीं। ना जाने क्या-क्या पापड़ बेलने पड़े। यह त्रासदी अकल्पनीय थी। अपने घर से मजबूरी में उजड़ने की ना जाने कितनी कहानियां आज भी सुनी जा सकती हैं। ऐसी ही एक कहानी ज़िला करनाल के कस्बा इन्द्री निवासी हरिचंद गणहोत्रा से सुनने को मिली।

1947 में बदअमनी के उस दौर में वे करीब नौ साल के थे। मारकाट के दौरान उन्मादियों ने उनके पिता, तीन ताऊ व दो चचेरे भाईयों की निर्मम हत्या कर दी और उन्हें अपने बड़े परिवार के साथ अपनी जन्मभूमि को छोड़ कर भारत आना पड़ा। सम्पन्नता व खुशहाली का जीवन व्यतीत कर रहे बालक हरिचंद व उनके परिवार ने सपने में भी नहीं सोचा था कि उन्हें इस प्रकार अपनी जान बचाकर भागना पड़ेगा और रोजी-रोटी के लिए इतना कड़ा संघर्ष करना पड़ेगा।

हरिचंद का जन्म पाकिस्तान के पंजाब राज्य के जिला मुजफ्फरगढ़ में खानगढ़ तहसील के गांव 'चकमौलीं दी वस्ती' में हुआ था। वहां के बड़े किसान व देसी घी के व्यापारी नेबा राम उर्फ नेभ राज व मोहन बाई के घर में 28अगस्त, 1938 को पैदा हुए नन्हें बच्चे को होवणा राम के नाम से पुकारा गया। परिवार की आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक स्थिति बेहद मजबूत थी। उनका परिवार स्वतंत्रता सेनानियों की दिल खोल कर आर्थिक मदद करता था। सामाजिक कामों में परिवार बढ़-चढ़ कर योगदान करता था। गांव में हिन्दू-मुस्लिम सभी अमन-चैन और सहयोग की भावना के साथ रहते थे।

धीरे-धीरे धर्मोन्माद व बंटवारे की चिंगारी पूरे मुल्क में फैलने लगी। अफवाहों और आशंकाओं के साथ धीरे-धीरे लोगों के दिलों में जहर घुलने लगा। छोटे-छोटे झगड़ों ने दंगों का रूप लेना शुरू कर दिया। जून1947 में नेबाराम के भरे-पूरे एवं सम्पन्न परिवार पर उन्मादियों ने हमला बोल दिया। लूटने के लिए आए लोगों ने कहने को तो परिवार के सामने धर्म परिवर्तन का प्रस्ताव रखा, लेकिन उनकी नजर तो धन-दौलत पर ही थी। इस प्रस्ताव को नेबाराम व उनके बड़े भाई पोखर दास ने सिरे से नकार दिया। हाथों में कुल्हाड़ियां, बरछे व भाले से उपद्रवियों ने छुपी हुई महिलाओं और बच्चों के सामने हरिचंद के पिता नेबाराम, ताऊ पोखर दास, थारया राम, शाम दास, चचेरे भाई निर्मल दास व लाहौर विश्वविद्यालय के विद्यार्थी मूलराज की निर्मम हत्या कर दी। उसके बाद हत्यारों ने कुछ लाशों को नज़दीक से बहने वाली नहर में बहा दिया, जिससे नहर का पानी लाल हो गया था। हमले के समय पुरूषों ने हरिचंद की मां मोहन बाई व ताई तेजा बाई सहित आठ महिलाओं व नौ बच्चों को छुपा दिया था। पुरुषों की मृत्यु के बाद नज़दीकी गांव काहंड के मदरसे में तीसरी कक्षा में पढ़ने वाले करीब आठ वर्षीय हरिचंद परिवार के पुरुषों में सबसे बड़े थे। अपनी तीन बहनों सहित अन्य बच्चों की रक्षा का दायित्व भी उन पर था, जिनमें एक बहन तो छह महीने की थी।

परिवार के मुखियाओं की मौत के बाद महिलाओं और बच्चों की आंखों में आंसुओं का सैलाब था, लेकिन मातम मनाने का वक्त नहीं था। महिलाओं के सिर पर बच्चों को बचाने की जिम्मेदारी थी। पहले ही आस-पास के गांवों से लोगों के उजड़ने का सिलसिला शुरू हो गया था। उन्हें भी वहां से किसी सुरक्षित स्थान पर जाने के अलावा कोई विकल्प नहीं मिला। कुछ शुभचिंतकों ने इस कार्य में उनकी मदद की। परिवार मुजफ्फरगढ़ पहुंचा। यहां पर बुजुर्गों द्वारा बनाए घर में पूरा परिवार दो महीने रहा। लेकिन हरिचंद व उनके परिवार के लोगों के पास कोई साधन व सुविधा नहीं थी। कुछ लोगों ने कपड़ों व भोजन की मदद की। इसी प्रकार अन्य अनेक रिश्तेदारों व जानकारों के परिवार भी इसी प्रकार अपने घर-बार से उजड़ कर मुजफ्फरगढ़ पहुंच गए थे। यहां हर समय जान का खतरा बना रहता था। यहां रहते हुए गांव के पुश्तैनी घर में रखा सोना-चांदी व धन-दौलत लेने के लिए तीन बार बालक हरिचंद ने वहां का दौरा किया। कड़ी मेहनत से कमाया गया सब कुछ धर्म के नारे लगाने वाले लुटेरों द्वारा लूटा जा चुका था। गांव में रहने वाले मुसलमानों ने भी देवता के समान लोगों की मौत पर गहरा शोक प्रकट किया और लूटपाट की घटनाओं पर चिंता जताई। लेकिन चारों ओर हो रही साम्प्रदायिक घटनाओं के कारण वे चाहकर भी उन्हें गांव में ही रूकने के लिए नहीं कह सकते थे। कुछ समय पहले तक सम्पन्न परिवार अब सड़कों पर था।

अपनी जन्मभूमि पर अपना सब कुछ लुटा कर भारत के लिए रवाना होते हुए जब मुजफ्फरगढ़ के रेलवे स्टेशन पर परिवार के सदस्य पहुंचे तो हरिचंद जी के मन पर आज भी उस समय की दुःख व विषाद से भरी स्मृतियां अंकित हैं। कभी नहीं भुलाए जा सकने वाले दृश्य के बारे में उन्होंने कुछ यूं बयां किया-चारों तरफ मातम का माहौल था। पाकिस्तान में अपने सगे-संबंधी, जमीन-जायदाद, धन-दौलत गंवाकर जा रहे लोग पीड़ा से भरे थे। कुछ

लोग उपद्रव में मारे तो नहीं गए थे, लेकिन विकलांग हो गए थे। भारत से आने वाली रेलगाड़ियों से भी मारकाट में जख्मी शरीर व हृदयों के साथ लोग दहशत भरे माहौल में उतर रहे थे।

बहुत से लोग अपना वतन छोड़ कर जाते हुए भी आशान्वित थे कि शायद कभी माहौल ठीक होगा और वे पुन: अपने देश में लौट आएंगे। परिवार के बड़े बच्चों को व एक-दूसरे को इस प्रकार का दिलासा दे रहे थे। रेलगाड़ी में सफर करते हुए हरिचंद के परिवार के लिए छह महीने की सबसे छोटी सदस्य गेली बाई की बीमारी थी। गेली को दस्त लगे हुए थे। इलाज नहीं मिलने के कारण नन्हीं गेली की करनाल के शरणार्थी शिविर में मौत हो गई थी। पहले-पहल हरिचंद का परिवार होशियारपुर पहुंचा। यहां पर सरकार द्वारा बनाए गए शिविर में महीने भर का ठहराव रहा। शिविर में जो मिल जाता था खा-पी लेते थे। यहां पर एक सेवानिवृत्त फौजी व उनकी पत्नी की बालक हरिचंद से प्रेम करने लगे। एक दिन उन्होंने हरिचंद की मां के सामने उसे गोद लेने की इच्छा जता दी और फिर धीरे-धीरे वे दबाव बनाने लगे। उन्होंने इसके लिए मोहन बाई को प्रलोभन भी दिए। मोहन बाई के लिए उनका बालक आंखों का तारा था। उसके बिना वे अपने जीवन की कल्पना भी नहीं कर पाती थी। आखिर होशियारपुर से भी परिवार को आगे चलना पड़ा।

होशियारपुर से चलकर करनाल आए। यहां पर शिविर में बने तंबू में ठहरे। स्थितियां बेहद विपरीत थी। हर जगह बिमारियों, प्रियजनों की हत्या, जन्मभूमि से उजड़ कर बेहद दरिद्रता का जीवन जीने की विवशता का साया था। शिविर के दौरान ही चार पैसे कमाने के लिए मोहन बाई ने लोगों के घरों में सफाई करना और बर्तन मांजना शुरू कर दिया। शिविर में कुछ समय के बाद शरणार्थियों के लिए कच्ची मिट्टी के मकान बनाने शुरू हुए। निर्माण कार्य की देखरेख कर रहे इंजीनियर ने बाल हरिचंद को सहायक का काम दिया। काम करते हुए मज़दूरों की कसी, कुल्हाड़ी का बिंडा टूट जाता था, तो वे उसे बनाकर डाल देते थे। छोटे-छोटे काम करते हुए हरिचंद बढ़ईगिरी का हुनर सीख रहे थे। मकान बनने के बाद जब कमरों की चौखटें व दरवाजे बनाए जाने लगे तो वे मिस्त्रियों की मदद करते थे। कुछ जमीन अलग-अलग स्थानों पर टुकड़ों में मिली। कुछ जमीन इन्द्री के गांव कलरी खालसा में मिली तो परिवार यहां आग गया। जो कुछ जमीन मिली थी, उस पर लोगों के कब्जे थे। बालक के लिए उसे संभालना संभव नहीं था। वहां से इन्द्री में आए तो अपना मिट्टी, ईंटें लकड़ी इकट्ठा करके अपना घर बनाया। मां-बेटे दोनों के लिए मजदूरी करते हुए गुजर-बसर करने के अलावा कोई चारा नहीं था। मजदूर के रूप में काम करते-सीखते हुए हरिचंद ने इन्द्री के सरकारी स्कूल से सातवीं की परीक्षा पास की। पानीपत में व्यावसासिक ट्रेनिंग सेंटर से वैल्डिंग का डिप्लोमा किया। फैक्ट्रियों में काम किया। बाद में उन्होंने एक राजमिस्त्री के रूप अपनी पहचान बनाई। क्षेत्र के लोग आज भी उनकी मेहनत व सामाजिक कार्यो को सम्मान के साथ याद करते हैं।

78वर्षीय हरिचंद जी अपनी जन्मभूमि को बहुत याद करते हैं। कोई भी चीज खाते और पहनते हुए वे पाकिस्तान के खान-पान के बारे में बताने लगते हैं। वहां की मिट्टी, वहां की खेती, वहां के लोग, उनकी बोली की मिठास उन्हें हमेशा याद रहती है और उसका जिक्र करने से नहीं चूकते। आखिर अपनी जन्मभूमि, जहां पर किसी ने बचपन के खेल-खेले हों, को कोई कैसे भुला सकता है। भारत और पाकिस्तान के बीच में चलने वाली खींचतान और दोनों तरफ के नेताओं की बयानबाजी के प्रति उनमें खासा रोष है। वे कहते हैं कि विभाजन और भारत, पाकिस्तान व बांग्लादेश के अस्तित्व को तो स्वीकारना ही चाहिए। लेकिन भारत और पाकिस्तान दोनों देश मिलजुल कर और बेहतर संबंधों के साथ आगे बढ़ सकते हैं।

दोनों देशों में आज भी कितने ही लोग हैं, जिनका जन्म एक-दूसरे देशों में हुआ है। यदि वे सभी अपनी-अपनी जन्मभूमि को देखने के लिए बिना किसी परेशानी के आ-जा सकें तो इससे बेहतर बात कोई नहीं हो सकती। उन्होंने साम्प्रदायिक आधार पर लोगों को बांट कर अपने राजनैतिक स्वार्थ सिद्ध करने वालों की निंदा की। वे दोनों देशों में बेहतर माहौल, आतंकवाद, गरीबी और बदहाली से मुक्ति की कामना करते हैं।

सम्पर्क -09466220145

शोकगीत

1947 में कुरुक्षेत्र के शरणार्थी कैम्प में लिखा गया सरायकी शोकगीत

संदर्भ: दंगों के शुरुआती दौर में 5 मार्च, 1947 को मुल्तान शहर के मशहूर एवं प्रतिष्ठित वकील मेहता वीरभान का कत्ल कर दिया गया। उस क़त्ल के बाद क्षेत्र में व्यापक स्तर पर दंगे शुरू हो गए। कुरुक्षेत्र के शरणार्थी कैम्प में यह गीत बना। रचयिता का नाम ज्ञात नहीं। वैसे भी यह सामूहिक शोक का समय था, सबका दर्द सामूहिक था। यह गीत सामूहिक दर्द की अभिव्यक्ति मात्र है, रचना का श्रेय लेने की आकांक्षा कहां थी ?

सन संताली ते मारच दी पंज हे
बोधवार दिहाड़े पुचाई चा रंज हे
मारा गिया हाय मेहता वीरभान हे
जैंदे मरणे दा बहूँ बहूँ अरमान हे

अरजनदेव कू ता रब चा बचाया हाई
हेक चढ़ोया थिया रब हमसाया हाई

चवी घंटे हूँकू अंदर बिल्हाया हाई
कीतोस माते दा बहोत अरमान हे

अरजनदेव हाई घर तार पुचवाई
माता मुल्के अदम दा हो गिया राही
डिठी रब दी डाढी क़हर बेपरवाही
देखो लोको ए मशहूर ज़िला मुल्तान हे

अनुवाद: सन सैंतालीस था, मार्च महीने की पाँच तारीख़। बुधवार के इस दिन ने बहुत ग़म दे दिया। मेहता वीरभान मारा गया, उसके मरने का बहुत अफ़सोस है। उसके बेटे अरजनदेव को तो जैसे परमात्मा बनकर आए पड़ोसी मुसलमान छिम्पे ने बचा लिया। चौबीस घंटे उसने अपने घर में छुपाकर रखा और मेहता वीरभान की मौत का मातम मनाता रहा। अरजनदेव ने तार के ज़रिये घर सूचना भेजी कि मेहता जी तो मौत के देस के राही हो गए हैं। ईश्वर की क्रूर बेपरवाही देखी है। देखो लोगो, यह है मशहूर ज़िला मुल्तान!

प्रस्तुति: हरभगवान चावला

स्रोत: मेहता रामकिशन, गाँव बिज्जुवाली ज़िला सिरसा

वो कहर की रात

जट्टूराम से हरभगवान चावला की बातचीत

(श्री जट्टूराम (गाँव-लद्धा, तहसील-मैलसी, ज़िला मुल्तान) अब 95 वर्ष के हैं और फतेहाबाद में रहते हैं। इस हादसे को बताने के दौरान वे अपने अतीत में खो गए। उनकी आँखें लगातार भर-भर आती रहीं। उनका हाथ ज़रा टेढ़ा जुड़ा है। मैंने उनके सिर के उस हिस्से में हाथ रखकर देखा, जहाँ कुल्हाड़ी मारी गई थी। वह घाव इतना गहरा था, मानो समतल ज़मीन पर कोई नदी खोद दी गई हो। इतने गहरे घाव खाकर भी कोई बच सकता है ? जिजीविषा को सलाम!)

मेरी उम्र क़रीब पच्चीस बरस रही होगी। शादी हो चुकी थी। वे ख़ौफ़ के दिन थे, हर समय मौत की आहट सुनाई देती थी। बाहरी हमले के ख़तरे को देखते हुए गाँव के मुसलमानों ने सारे हिंदुओं को एक बहुत बड़े नोहरे में रख दिया था। नोहरे के एक हिस्से में तमाम औरतें थीं, दूसरे में मर्द। हमें वहाँ पूरी सुरक्षा में रखा गया था, नोहरे के बाहर मुस्लिम युवक पहरे पर रहते थे। नोहरे के अंदर भी दोनों हिस्सों के बीच पहरा रहता था ; पर मेरा मन उन पहरेदारों पर विश्वास नहीं करता था। कारण, उन युवकों में से कइयों के तेवर बहुत उग्र तथा उद्दंड थे, व्यंग्य के तीर उनकी ज़बानों की कमान से निकलते ही रहते थे। कहने को हम उनके सुरक्षा घेरे में थे पर वास्तव में हम उनकी क़ैद में तथा उनके रहमो-करम पर थे। जो सामान हम अपने घरों से उठाकर लाए थे, उस सामान में दराँतियाँ भी छुपी हुई थीं, चाकू भी, सुए भी। औरतों वाले हिस्से में मिट्टी के तेल के पीपे भी थे कि इज़्ज़त पर हमला होने की स्थिति में ख़ुद को आग लगाई जा सके।

वो शाम मैं कैसे भूलूँ ? हमने ज़नाने हिस्से में भयानक हाहाकार के साथ अचानक आग की लपटें उठती देखीं। जैसी कि आशंका थी, उन युवकों ने ज़रूर बदतमीज़ी की होगी। हम कुछ देख या सोच पाते, उससे पहले ही मर्दाने हिस्से पर भी हमला बोल दिया गया। औरतें, मर्द सब मुक़ाबला करने के लिए जो मिला, वही हाथ में थामे नोहरे के बाहर भाग रहे थे। औरतें हाथों में थमी दराँतियाँ या डण्डे आदि लहराती ध्रूवैण नहर की ओर भागी जा रही थीं, मर्द अलग-अलग दिशाओं में भाग रहे थे। हमलावरों के हाथों में गंडासे, कुल्हाड़ियाँ, लाठियाँ आदि हथियार लहरा रहे थे। वे गालियाँ देते हुए भयानक तरीक़े से वार कर रहे थे। मेरे सामने ही कितने लोगों की गर्दनें काट दी गईं। मैं चीखता, रोता और दौड़ता। मुझे लगता, अगले ही पल मेरा मर जाना तय है। थोड़ी गर्दन टेढ़ी करके देखना चाहा कि मेरे परिवार का कोई सदस्य दिख जाए पर कोई मेरे आसपास नहीं था। मैं बेतहाशा भाग रहा था, मेरा रुख़ झंडीराँ की ओर था। वहाँ हमारे कुछ रिश्तेदार थे। सुना था, वहाँ शांति है, हिंदू, मुसलमान सब मिलकर रहते हैं। वहाँ से कई संदेशे भी आए थे कि यहाँ आ जाओ, पर क़ैद से निकलने का मौक़ा ही नहीं लगा था। अचानक कुल्हाड़ी का एक वार मेरे सिर पर किया गया। मैं लड़खड़ा कर गिर पड़ा, हमलावर किसी दूसरे शिकार पर झपटा। मेरे सिर से लहू की नदी सी बह रही थी, पर ज़िंदगी का मोह बहुत ताक़त देता है। मैंने अपने घाव को अंगोछे से दबाया और उठकर दौड़ पड़ा। अँधेरा घिर आया था। मेरे पीछे प्रत्यक्ष में कोई नहीं था, पर कुछ दूरी पर हिंसक आवाज़ें सुनाई पड़ रही थीं। मेरी हिम्मत जवाब दे रही थी। मैं आगे चल सकने में अपने को असमर्थ पा रहा था। यह एक खेत था। बरसात का मौसम शुरू हो चुका था, साँप-बिच्छू का ख़तरा इस आ पड़ी मुसीबत के सामने कुछ भी नहीं लगता था। मैं जैसे-तैसे एक जांटी के पेड़ पर चढ़ गया। पेड़ पर चढ़ने के दौरान मैंने महसूस किया कि लाठी के वार से मेरा एक हाथ भी टूट गया है। मैं पेड़ की एक टहनी से चिपका अपने सिर के घाव को अंगोछे से कसकर दबाए बैठा था, मेरी कराहें निकल रही थीं। तभी मैंने देखा, कुछ लोग लैम्प उठाए, हाथों में गंडासे, लाठियाँ थामे इधर ही चले आ रहे थे। मैं टहनी से और चिपक गया, साँस चलनी जैसे बंद हो गई। वे लोग पेड़ से थोड़ी दूर खड़े होकर इधर-उधर देखते रहे। मुझे लगा, वे अगर इधर आ गए तो टपकते लहू के कारण मेरा तुरंत पता लग जाएगा। मौत निश्चित है, यह सोचकर मैं निश्चिंत होने की कोशिश करने लगा। थोड़ी देर बाद वे वहीं से लौट गए।

मुझे याद नहीं कि मैं कुछ देर सो पाया था या नहीं, पर रात के किसी हिस्से में, जब सब तरफ़ ख़ामोशी पसरी थी, मैं पेड़ से नीचे उतरा और दौड़ना शुरू कर दिया। सूरज निकला ही था कि मैं झंडीराँ में अपनी रिश्तेदार एक बुज़ुर्ग औरत की गोद में जा गिरा और बेहोश हो गया। चार दिन बाद मुझे होश आया। मैंने देखा, उसी घर में मेरी माँ और पत्नी भी मौजूद थीं। मेरे होश में आने के बाद गुड़ बँटा। फिर मुझे कई बातों का पता चला।

पिछले चार दिनों से एक मुसलमान हक़ीम मेरी पट्टी कर रहा था। मेरे ज़ख़्म में कोई राख भरी गई थी। उस राख ने जादू का-सा असर किया था और अब मैं तेज़ी से ठीक हो रहा था। मुझे पता चला कि उस दिन ज़नानख़ाने में चोरी-छुपे एक मुस्लिम औरत आई थी। वह बदहवास थी। उसने अपने घर के मर्दों से सुना था कि आज रात को हिंदू औरतों की इज़्ज़त लूटी जाएगी और मर्दों को क़त्ल कर दिया जाएगा। उसने औरतों को फुसफुसाते हुए कहा था,''आजकल मर्दों पर पागलपन सवार है। अपनी इज़्ज़त बचा सकती हो तो बचा लो, हम तुम्हें बचाना चाहती हैं, पर कुछ कर नहीं सकती।'' वह औरत उनके सामने रोती रही थी, चीख़ें जैसे उसके कण्ठ में घुटकर रह गई थीं। जाते हुए वो सबके गले लगकर मिली थी और उनकी सलामती की दुआ माँगी थी। उसके जाते ही ज़नानख़ाने में कोहराम मच गया था। सभी 55-60 औरतें ध्रूवैण नहर में कूद गई थीं, कई हमले में घायल भी हुई थीं। नहर में बहती औरतों को किसी अगले गाँव में किन्हीं रहमदिल मुसलमानों ने निकाला था, पर 8-10 औरतें ही बच पाई थीं। क्या मुझे अपने आप को ख़ुशक़िस्मत समझना चाहिए था कि बचने वाली औरतों में मेरी माँ और मेरी पत्नी भी शामिल थीं जबकि मेरे पिता, चाचा, ताए, भतीजे, भतीजियाँ और सैंकड़ों रिश्तेदार कभी नही मिल सके ?

एक अफ़साना मुहब्बत का

हरभगवान चावला

कोटला अलीदस्ती गाँव का नूर मुहम्मद ख़ान बलोच एक बहुत बड़ा ज़मींदार था, इलाक़े का जाना-माना दबंग, पर एक दुखती रग बार-बार टीसती थी। लोग पीठ पीछे उस पर हँसते हैं-वह जानता था। उसी के गाँव के हिंदू ज़मींदार ने उसकी साली को दस साल से रखा हुआ था। शासन और बंदूक की संयुक्त ताक़त भी प्रभदयाल नाम के उस ज़मींदार से फ़ातिमा को छुड़ा नहीं पाई थी। प्रभदयाल फ़ातिमा को अपनी मुहब्बत कहता था और उसके लिए किसी से भी भिड़ जाने को तैयार था। दोनों में से किसी ने भी धर्म नहीं बदला था। फ़ातिमा का दर्जा ब्याहता का नहीं, रखैल का ही था। प्रभदयाल और नूर मुहम्मद के बीच शुरुआती दिनों में कई हिंसक झड़पें हुई थीं, बाद में धीरे-धीरे सब लोगों के साथ नूर मुहम्मद ने भी इस स्थिति को स्वीकार कर लिया था, पर बदला लेने की तड़प कभी-कभी उसे परेशान करती थी।

और अब बदला लेने का मौक़ा आ गया था। पूरे इलाक़े में हिंदुओं के ख़िलाफ़ हमलावर दस्ते सक्रिय थे। रोज़ कहीं न कहीं से आगज़नी, लूटपाट, औरतों की बेमुरव्वती और क़त्लों की ख़बरें आती थीं। प्रभदयाल क्योंकि बड़ा ज़मींदार था, उसके घर की जाने वाली संभावित लूट या क़त्ल को जायज़ ठहराने का एक बड़ा कारण फ़ातिमा तो थी ही। मुस्लिम अस्मिता पर हिंदू ज़ुल्म के रूप में पूरे प्रकरण को देखना बहुत आसान था। प्रभदयाल यूँ तो सावधान था। माहौल को देखते हुए कुछ बंदूकधारी आजकल उसके घर में हर वक़्त मौजूद रहते थे पर उसकी माँ ज्ञानदेवी हर वक़्त उसकी और परिवार की सुरक्षा को लेकर आशंकित रहती थी। वह जानती थी कि अब तक महफ़ूज़ रहे इस गाँव में जब भी बदअमनी हुई, पहला शिकार उसी का परिवार होगा। वह जान चुकी थी कि आजकल नूर मुहम्मद के साथ हर रोज़ 10-20 बंदूकों वाले बाहरी लोग रहते हैं। पूरे गाँव में दहशत थी कि कभी भी बलवा हो सकता है।

कभी सरवर सखी में पीर की दरगाह पर ज्ञानदेवी ने अपना दुपट्टा नूर मुहम्मद की माँ अमीना से बदला था यानी दोनों बहनें हो गई थीं। प्रभदयाल के फ़ातिमा को घर में डालने से पहले दोनों का एक-दूसरे के घरों में ख़ूब आना-जाना था। लगभग दस सालों से वे एक-दूसरे के घर नहीं गई थीं पर कभी राह चलते मुलाक़ात हो जाती तो दोनों बड़ी मुहब्बत से मिलती थीं। ज्ञानदेवी जानती थी कि मरना तो निश्चित है पर उसे सबसे बड़ा डर इस बात का था कि किराए के बलवाई घर की औरतों की इज़्ज़त के साथ खिलवाड़ करेंगे। इसके अलावा वे घर के सदस्यों की लाशों के साथ क्या करेंगे, यह सोचकर वह काँप जाती थी। इलाक़े भर से बहुत बुरी-बुरी ख़बरें लगातार आती रहती थीं। आख़िरकार उसने फ़ैसला किया कि वह अमीना के पास संदेश भिजवाएगी।

सूनी गलियों से गुज़रती, अपने को छुपाती दाई अब अमीना के सामने बैठी थी। अमीना ने पूछा, ''घबराई हुई हो, क्या बात है ?'' दाई का चेहरा बयान कर रहा था कि वह ज्ञानदेवी का कोई संदेश लेकर आई है। अमीना ने कहा,'' क्या कहा ज्ञानदेवी ने ? जान का ख़तरा है ? उसे कहना, परिवार को यहाँ ले आए।''

''नहीं, यह बात नहीं, आपको शायद पता नहीं, नूर मुहम्मद बाहर से बंदूक वालों को ले आया है। उसने सारे गाँव को कह रखा है कि अब वो परिवार नहीं बचेगा पर आपकी बहन ने जान की भीख नहीं माँगी है। उन्होंने कहा है कि नूर मुहम्मद को कह देना कि मारना है तो ख़ुद मारे, किराए के कुत्तों से न मरवाए। बस उन्होंने यही संदेश भेजा है।'' दाई झन्नाटे से उठी और बाहर निकल गई।

अमीना आज सुबह से ही किसी ख़ौफ़नाक हलचल की आहट महसूस कर रही थी। उसने सिर पर दुपट्टा रखा और उसके क़दम खेत में स्थित नोहरे की ओर तेज़ी से बढ़ने लगे। खेत पहुँची तो सारा मामला समझ में आते देर नहीं लगी। 20-30 बंदूकों वाले नोहरे में बैठे थे, दो हुक़्क़े उनके बीच घूम रहे थे। सभी लोग लंबा कश खींचते और देर तक मुँह तथा नाक से धुआँ निकालते रहते। अमीना को लगा, यह धुआँ हुक़्क़े का नहीं, प्रभदयाल के परिवार को गोली मारने के बाद बंदूक से निकलने वाला धुआँ है।

''ओए नूरे, यह क्या हो रहा है ?'' माँ की बुलंद आवाज़ सुनकर नूर मुहम्मद चौंका, फिर जवाब दिया, ''अम्मी, आज दुश्मनों से बदला लेने का वक़्त आ गया है। वो भड़ुवा कल का सूरज नहीं देखेगा।''

''फिट्टेमुँह'', अमीना का दायाँ हाथ धिक्कार की मुद्रा में तना था, ''आज मर्द बन गया है मेरा बेटा ! दस साल तक कहाँ थी यह मर्दानगी ? मरे हुओं को मारने चला है मेरा शेर, फिट्टेमुँह !'' अमीना जितनी तेज़ी से आई थी, उससे दूनी तेज़ी से लौट पड़ी। माँ की आँखों के आँसुओं की नमी और अंगारों की आँच उसने एक साथ महसूस की

थोड़ी देर बाद उन बंदूकधारियों का झुण्ड प्रभदयाल की हवेली के सामने खड़ा था। सबको लगा कि हमला आ गया, प्रभदयाल का परिवार अब बस चंद पलों का मेहमान है। हिंदुओं का मुहल्ला था। सबको लगता था, प्रभदयाल के बाद उनकी बारी है। दहशत से काँपते लोगों ने दरवाज़े बंद कर लिए, लाठियाँ, गंडासे, कुल्हाड़ी, पत्थर जो भी मिला, लाकर आँगन में धर लिया। जिस अनिष्ट की आशंका में वे इतने दिनों तक दहशत में जी रहे थे, आख़िर वो दिन आ पहुँचा था। प्रभदयाल के पास भी 8-10 बंदूकों वाले थे। 'संभल जाओ, दुश्मन आ गया'- प्रभदयाल के इतना कहते ही सब बंदूकों सहित संभल गए। प्रभदयाल को पता था कि आमने-सामने की गोलीबारी में वह जीत नहीं पाएगा। एक तो उसके पास कारतूस कम थे, दूसरे किराए के शूटरों में छः मुसलमान थे; पता नहीं कब मज़हबी जुनून उन पर तारी हो जाए। पुराना दुश्मन अगर आया है तो ज़रूर पूरी तैयारी के साथ आया होगा। वह अपने आदमियों और हथियारों का इस्तेमाल सोच-समझकर करना चाहता था, इसलिए नूर मुहम्मद की तरफ़ से ललकारे जाने का इंतज़ार कर रहा था। मुहल्ले के लोगों को अब तक कोई मज़हबी नारा या किसी के रोने-चीखने की आवाज़ सुनाई नहीं पड़ी थी। संभावित के घट जाने में देरी उनकी दहशत को बढ़ा रही थी। थोड़ी देर बाद प्रभदयाल के

दरवाज़े पर एक आवाज़ सुनाई पड़ी–मैं दाया फतेहदीन, ख़ान साहब का संदेश लाया हूँ, दरवाज़ा खोलो मेहता साब ! प्रभदयाल ने एक नौकर को इशारा किया। दरवाज़ा मामूली सा खुला और दाये को अंदर ले लिया गया। 'बोलो क्या संदेश लाए हो ?' प्रभदयाल ने पूछा।

'ख़ान साहब आप से मिलना चाहते हैं। उन्होंने पुछवाया है कि अगर आपको यक़ीन हो तो वे हथियारों समेत अंदर आ जाएँ, न हो तो उनके हथियार बाहर बैठक में रखवा कर उन्हें अंदर आने दिया जाए।'

एक बार तो प्रभदयाल का मन किया कि उन्हें और उनके आदमियों को हथियारों समेत अंदर आने दिया जाए पर वो दिन यक़ीन के दिन नहीं थे, हर रोज़ यक़ीन ही क़त्ल हो रहा था, संदेह के साँप और बिच्छू क़दम–क़दम पर रेंगते थे। उसने कोई जोख़िम लेना ठीक नहीं समझा। नूर मुहम्मद ख़ान और उसके सभी साथियों के हथियार बैठक में रखवा कर बैठक में ताला लगा दिया गया।

हवेली के एक कमरे में प्रभदयाल और नूर मुहम्मद ख़ान आमने–सामने खाटों पर बैठे थे। बात प्रभदयाल ने शुरू की, '' आज अपने दुश्मन का मेरे घर में इस तरह आना, वो भी इस क़ातिलाना दौर में, मुझे हैरान कर रहा है ख़ान साहब, कहीं सुकून सा भी महसूस हो रहा है।'' इसी बीच ज्ञानदेवी छाछ लेकर अंदर आई। उसने दोनों गिलास मेज़ पर रखे ही थे कि नूर मुहम्मद ने उसके हाथ पकड़कर अपनी आँखों पर लगा लिए और फिर कंधों पर हाथ रख अपनी खाट पर सिरहाने बैठा लिया। ज्ञानदेवी थोड़ी देर के लिए अमीना हो गई, अनायास आँखें बह चलीं। उंगली के पोरों से उसके आँसू पोंछते हुए नूर मुहम्मद ने कहा,'' बुरा वक़्त आ पड़ा है मौसी, कौन चाहता है अपने बसे–बसाये घरों को छोड़ना पर सियासत जो न करा दे। हिंदुस्तान बँट गया है, अब एक हिस्से में हिंदू रहेंगे, दूसरे में मुसलमान। इस बलवाई माहौल में आप लोगों को कुछ दिन कहीं और रहना पड़ेगा। थानेदार बता रहा था अमन होते ही सब लोग अपनी पुरानी जगह लौट आएँगे, उम्मीद है, मुसीबत जल्दी टल जाएगी। अल्लाह सब ठीक करेगा।

'अब कुछ ठीक नहीं होगा, ये सब उम्मीदें हैं जो कभी पूरी नहीं होंगी। ये हवेली, ये खेत, ये गलियाँ सब कुछ छूट जाएगा ख़ान साहब।' अब तक ख़ामोश बैठा प्रभदयाल बोल पड़ा।

'धीरज रखो मेहता साहब, अल्लाह की जो मर्ज़ी, पर एक अहद देता हूँ, अपनी जान देकर भी आप लोगों की हिफ़ाज़त करूंगा। मेरे सारे आदमी आपके घर के बाहर पहरा देंगे। कहें तो मैं भी यहीं रुक जाता हूं कोई और काम हो तो बताएं।'

'ख़ान साहब, इस वक़्त आपकी सबसे बड़ी मदद यह होगी कि आप अपनी साली को हिफ़ाज़त के साथ यहाँ से ले जाएं।'

नूर मुहम्मद बुरी तरह चौंक उठा। एक बार तो उसे लगा, उसके कानों ने ग़लत सुना है। उसका कण्ठ इस क़दर सूख गया कि जैसे वह कभी बोल ही नहीं पाएगा। कुछ लम्हों तक चुप रहने के बाद उसने गला खंखार कर बोलना शुरू किया,'' वो आपकी मुहब्बत है न मेहता साहब ! उसके लिए हमारे बीच कितनी बार मरने–कटने की नौबत आई, तब भी आपने उसको नहीं छोड़ा और आज.....?'

'हां, वो मेरी मुहब्बत है और रहेगी, प्रभदयाल की आँखें भीग गईं, '' पर अब अपनी जान का ही कोई भरोसा नहीं। रोज़ तो सुन रहे हैं, उधर से लाशों से लदी गाड़ियां आ रही हैं, इधर से लाशों से भरी गाड़ियां जा रही हैं। अव्वल तो हमारा बचना मुमकिन नहीं लगता, बच भी गए तो उजड़े लोग कैसे और कहां रहेंगे – इसका कोई ठिकाना नहीं। मुझमें इतनी ताब नहीं कि अपनी ही मुहब्बत को मैं ऐसी मुसीबत में डालूं...' अभी वह कुछ और कहता कि भीतरी दरवाज़े की ओट में खड़ी होकर सब बातें सुन रही फ़ातिमा की दर्दनाक चीख़ से माहौल में ऐसा क्रंदन भर गया जैसे सैंकड़ों पंछी एक साथ तीरों से बिंधकर ज़मीन पर आ गिरे हों। सबने मिलकर उसे संभाला और एक चौकी पर बैठा दिया। वह सिसक रही थी, प्रभदयाल कह रहा था,' मुझे कोई हक नहीं पहुंचता कि मैं एक मासूम की जिंदगी को दांव पर लगा दूं। मैं अगर मारा गया तो इसका क्या होगा, सब तरफ़ शिकारी कुत्ते घूमते फिरते हैं, आप जानते हैं न ख़ान साहब !'

'पर ये आपकी मुहब्बत...'

'मेहरबानी करके इधर इस धरती पर एक इन्सान तो ऐसा बचा रहने दीजिए, जिसकी आंख कभी हमें याद करके नम हो। बचे भी रहे तो एक प्यारा रिश्ता हमेशा ज़िंदा रहेगा, हम तो याद में ही ज़िंदगी बिता देंगे, मेहरबानी करके....'' प्रभदयाल आगे बोल नहीं पाया। उसकी आँखें बह रही थीं और जुड़े हाथ दोनों के सामने बारी–बारी से घूम रहे थे।

नूर मुहम्मद ख़ान और फ़ातिमा प्रभदयाल के घर की दहलीज़ लांघ रहे थे। नूर मुहम्मद कह रहा था,'यह आपकी अमानत मैं ले जा रहा हूँ मेहता साहब, अल्लाह करेगा , सब अमनो अमान हो जाएगा, आपकी मुहब्बत आपके पास लौट आएगी...।' प्रभदयाल कुछ नहीं सुन रहा था, वह फातिमा का चेहरा देख रहा था। उस चेहरे पर रुसवाई थी, ढेरों उलाहने थे, मातम था, गुस्सा था, सब कुछ गँवा देने का रंज था या कुछ और–वह समझ नहीं पाया। प्रभदयाल के गले से एक घुटी चीख़ निकली और वह खाट पर लुढ़क गया। ज्ञानदेवी हौले–हौले उसके सिर पर हाथ फेर रही थी।

(हरभगवान चावला के लेखनाधीन उपन्यास का अंश)

सम्पर्क–93545–45440

हरभगवान चावला

बेर

भिवानी के पास शरणार्थी कैम्प लगा था। कैम्प के नज़दीक एक खेत में गोलिया बेरों का एक पेड़ बेरों से लदा हुआ था। पंद्रह साल का एक भूखा किशोर बेरों के लालच में खेत में चला गया। पेड़ के नीचे की ज़मीन लाल बेरों से अटी पड़ी थी। किशोर बेर चुनकर खाने लगा कि अचानक पीठ पर एक लात पड़ी और साथ ही गंदी–गंदी गालियाँ भी सुनाई पड़ीं। किशोर कुछ समझ पाता, उससे पहले ही दो युवकों ने गालियों के साथ उसकी ठुकाई आरम्भ कर दी। किशोर समझ रहा था कि उसने अपराध किया है, सज़ा तो उसे मिलेगी ही। जब पीटने से उनका जी भर गया तो उन्होंने कुछ बेर उसकी ओर बढ़ाये। किशोर ने हाथ बढ़ाया तो उन्होंने उसका हाथ ज़ोर से झटक दिया और बेरों को अपने पैरों से कुचल दिया, फिर तब तक धरती पर पड़े बेरों को कुचलते रहे जब तक एक भी बेर खाने लायक़ बचा रहा। किशोर समझ नहीं पा रहा था कि अगर उनको बेर खाने ही नहीं थे तो फिर उसे क्यों नहीं खाने दिए ? इत्ती सी उम्र का किशोर नहीं जानता था कि परपीड़क आनंद नाम की भी एक चीज़ होती है। उसके होठों से ख़ून बह रहा था और वह कुचले बेरों को देख रहा था। तभी उसे दहाड़ सुनाई पड़ी– चल भाग पाकिस्तानी। तब तक उसे इस शब्द का अर्थ भी मालूम नहीं था। वह किशोर मेरा पिता था।

डा. आम्बेडकर और विभाजन

सुभाष चंद्र

डा. आम्बेडकर ने 'पाकिस्तान और पार्टीशन आफ इंडिया' पुस्तक लिखी, जिसमें भारत-पाक विभाजन संबंधी तत्कालीन राजनीतिक बहस पर प्रकाश डालते हुए इस संबंध में अपने विचारों को स्पष्ट किया है। साम्प्रदायिक-जातिवादी शक्तियां विकृत पाठ करके डा. आम्बेडकर को मुसलमानों के घोर आलोचक, मुसलमानों के घोर विरोधी, विभाजन-समर्थक साबित करने की कोशिश करते हुए और यहां तक भी कह देते हैं कि वे इस बात के समर्थक थे कि मुसलमानों को पाकिस्तान चले जाना चाहिए। जबकि डा. आम्बेडकर न तो मुस्लिम-विरोधी थे और न ही धर्म के आधार पर देश-विभाजन के विचार के समर्थक। - सं.

साम्प्रदायिक शक्तियों द्वारा जोर-शोर से प्रचारित-प्रसारित किया जाता रहा है कि डा. आंबेडकर ने देश-विभाजन को स्वीकार किया, वे जनसंख्या की अदला-बदली के समर्थक थे। लेकिन चिंता की बात है कि दलित बुद्धिजीवी व आंबेडकर साहित्य के विद्वान भी इस तरह के विचार व्यक्त करते हैं। मसलन वसंत मून ने डा.बाबासाहब आंबेडकर में लिखा कि 'उन्होंने सुझाया कि पाकिस्तान बनाने से पहले पाकिस्तानी हिस्से के हिंदू तथा हिंदूस्तान के मुसलमानों की अदला बदली हो जानी चाहिए।' (वसंत मून, डा. बाबा साहब आंबेडकर (हिन्दी अनु.), नेशनल बुक ट्रस्ट, दिल्ली, 2009, पृ.-136)

पाकिस्तान के बारे में डा. आम्बेडकर के विचारों को समझने के लिए उनकी 'पाकिस्तान अथवा भारत विभाजन' पुस्तक को पूरा पढ़ना तथा समग्रता में समझना जरूरी है। डा. आम्बेडकर ने इस पुस्तक को कई भागों में विभाजित किया है जिनके शीर्षक हैं' पाकिस्तान के पक्ष में मुसलमानों के तर्क', 'पाकिस्तान के विरोध में हिन्दुओं के तर्क', 'यदि पाकिस्तान नहीं बना तो क्या होगा?', 'पाकिस्तान और देश की समस्या', 'क्या पाकिस्तान बनना चाहिए?', 'पाकिस्तान की समस्या' और 'निर्णय कौन करे?' है। इसके शीर्षकों से सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि पुस्तक के कुछ भागों से उद्धरण देकर कोई व्यक्ति मनोवांछित निष्कर्ष निकाल सकता है।

डा. आंबेडकर ने इस पुस्तक को 1940 में लिखा तथा इसके दूसरे संस्करण, 1945 में एक नया अध्याय जोड़ा। यह अध्याय कितना महत्वपूर्ण है इसका अनुमान दूसरे संस्करण की प्रस्तावना में उनकी इस टिप्पणी से लगाया जा सकता है। उन्होंने लिखा कि 'पहले संस्करण में केवल तीन भाग थे। पांचवां भाग अब अतिरिक्त जोड़ा गया है। इसमें पाकिस्तान की समस्या को लेकर विभिन्न मुद्दों पर मेरा अपना दृष्टिकोण शामिल है। यह इसलिए जोड़ा गया है क्योंकि प्रथम संस्करण को लेकर आलोचना की गई थी कि जहां मैंने पाकिस्तान की समस्या के बारे में लिखा है, वहां यह नहीं बताया कि इस विषय पर मेरा दृष्टिकोण क्या है।' (खंड-15, पृ.- ix)

डा. आंबेडकर पाकिस्तान क्षेत्र की हिंदू तथा भारत की मुस्लिम आबादी की अनिवार्य तौर पर अदला-बदली के पक्ष में नहीं थे। वे इसे व्यक्तियों की इच्छा पर ही छोड़ने के पक्ष में थे। इस बारे में अपने विचार स्पष्ट करते हुए लिखा कि 'अनिवार्य स्थानांतरण पहली दृष्टि में गलत प्रतीत होता है। अपने मूल निवास स्थान को बदलने के लिए किसी व्यक्ति को बाध्य करना अच्छा नहीं, जब तक कि वह स्वयं यह न चाहे अथवा जब तक राज्य की शांति को उसके वहीं पर रहने से कोई खतरा पैदा नहीं होता, अथवा जब तक कि स्थानांतरण उसके पक्ष में आवश्यक न हो। जो बात जरूरी है वह यह कि वे जो स्थानांतरण के पक्ष में हैं, इसका संपादन बिना किसी अड़चन अथवा हानि के कर सकने योग्य हों। अत: मेरा यह मत है कि उक्त स्थानान्तरण बाध्यकारी न होकर उन लोगों के लिए ऐच्छिक होना चाहिए, जो स्वत: स्थानांतरण करने की घोषणा करते हैं।' (खंड-15, पृ.-389)

पाकिस्तान अथवा भारत-विभाजन पुस्तक के द्वितीय संस्करण के 'क्या पाकिस्तान बनना चाहिए' अध्याय में अपने विचार प्रकट किए हैं। उन्होंने पाकिस्तान बनाने के पक्ष में दिए जा रहे तर्कों का खंडन किया। 'क्या पाकिस्तान का बनना इसलिए आवश्यक है, क्योंकि मुस्लिम जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा कुछ निश्चित क्षेत्रों में केन्द्रित है, जिन्हें सरलता से अलग किया जा सकता है ... भारत एक भौगोलिक इकाई है। इसकी एकता उतनी ही प्राचीन है, जितनी कि प्रकृति। भौगोलिक एकता के अंतर्गत अत्यंत प्राचीन काल में भी यहां सांस्कृतिक एकता रही है। इसी सांस्कृतिक एकता ने राजनीतिक और जातीय विभाजन की अवहेलना की है, और पिछले 150 वर्षों से सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक, वैधानिक और प्रशासनिक संस्थाएं किसी भी मूल्य पर एक ही और एकसमान उद्गम स्थल से काम कर रही हैं। पाकिस्तान के किसी भी विवाद के संदर्भ में यह तथ्य आंखों से ओझल नहीं किया जा सकता कि मूलत: भारत की एकता आधारभूत है।' (खंड-15, पृ.-354)

'क्या पाकिस्तान इसलिए बनना चाहिए क्योंकि हिंदू और मुसलमानों के बीच सांप्रदायिक तनातनी है? इस प्रश्न से कोई इनकार नहीं कर सकता कि उनके बीच तनातनी है। प्रश्न केवल यह है कि क्या यह तनातनी इतनी प्रबल है कि वे एकदेश में एक संविधान के अंतर्गत नहीं रह सकते। गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट 1935 के निर्माण के समय हिंदू-मुसलमानों ने एक संविधान के अंतर्गत रहना पसंद किया था और उक्त एक्ट के पारित होने के पूर्व उस पर हुई चर्चा में भाग लिया था। 1920 से 1935 तक का भारतीय इतिहास सांप्रदायिक संघर्ष की एक लंबी कहानी है, जिसमें जन-धन की हानि शर्मनाक सीमा तक पहुंच गई थी। सांप्रदायिक स्थिति इतनी भयंकर कभी नहीं थी जितनी 15 वर्ष पूर्व भारत सरकार अधिनियम 1935 के पारित होने से पहले थी। फिर भी इस पारस्परिक तनाव के फलस्वरूप हिंदू और मुसलमानों में एकदेश में एक संविधान के अंतर्गत रहने की इच्छा में कोई व्यवधान पैदा नहीं हुआ। ...

भारत ही एक ऐसा देश नहीं है जहां सांप्रदायिक संघर्ष होते हैं। कनाडा और दक्षिण अफ्रीका में भी यह स्थिति विद्यमान है। यदि कनाडा में सांप्रदायिक तनातनी के होते हुए फ्रेंच और अंग्रेज राजनीतिक इकाई के रूप में रह सकते हैं, दक्षिण अफ्रीका में यह

सांप्रदायिक तनातनी अंग्रेजों और डचों को राजनीतिक इकाई में बांधे रहने में कोई बाधा नहीं पहुंचाती, और यदि इस सांप्रदायिक तनातनी के बावजूद स्विटजरलैंड में फ्रेंच और इटालियंस जर्मनों के साथ राजनीतिक इकाई के रूप में रह सकते हैं, तो भारत में हिंदू और मुस्लिम एक संविधान के अंतर्गत क्यों नहीं रह सकते?' (खंड-15, पृ.-354 से 358 तक) डा. आंबेडकर भारत के अल्पसंख्यकों की समस्या का हल चाहते थे, और इसके देश-विभाजन को अनिवार्य नहीं मानते थे। बिना देश का विभाजन किए विभिन्न देशों ने इस समस्या का समाधान निकालने के अनेक उदाहरण उन्होंने प्रस्तुत किए।

'क्या पाकिस्तान इसलिए बनना चाहिए क्योंकि कांग्रेसी बहुमत में अब मुसलमानों का विश्वास नहीं रहा?' 'क्या पाकिस्तान इसलिए बनना चाहिए क्योंकि मुसलमान एकराष्ट्र हैं?' इस सवाल पर विचार करते हुए डा. आंबेडकर ने लिखा कि मुसलमानों में बहुत सी बातें हैं, जो उन्हें अलग राष्ट्र के रूप में संगठित करती हैं, लेकिन 'अनेक ढंग, तौर-तरीके, धार्मिक रीति-रिवाज समान हैं'। सवाल इस बात पर हैं कि 'उनमें से किस पर अधिक जोर दिया जाए। यदि उन बातों पर ध्यान दिया जाता है जो दोनों में समान रूप से पाई जाती हैं, तो भारत में दो राष्ट्रों की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती। पर यदि उन बातों पर ध्यान दिया जाता है जो सामान्य रूप से भिन्न हैं, तो ऐसी स्थिति निसंदेह दो राष्ट्रों का सवाल सही है।'' (खंड-15, पृ.-360)

इस सवाल पर विचार करते हुए आंबेडकर ने सवाल उठाया यदि दो राष्ट्र हैं भी तो एक संविधान के अंतर्गत क्यों नहीं रह सकते। यदि मुस्लिम नेतृत्व को अपनी अलग पहचान व संस्कृति, राष्ट्रीयता खो जाने का भय है, तो भी अलग देश के विचार का औचित्य समाप्त हो जाता है। (खंड-15, 362)

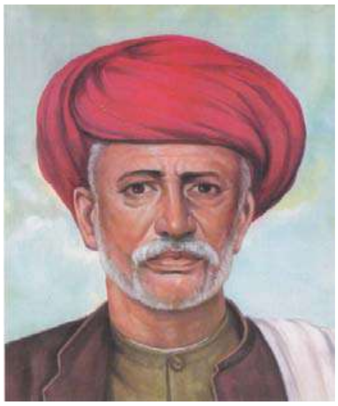
'क्या पाकिस्तान इसलिए बनना चाहिए कि इसके अभाव में स्वराज एक हिंदू राज होगा?' 'अगर वास्तव में हिंदू राज बन जाता है तो निस्संदेह इस देश के लिए, एक भारी खतरा उत्पन्न हो जाएगा। हिंदू कुछ भी कहें, पर हिंदुत्व स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे के लिए एक खतरा है। इस आधार पर प्रजातंत्र के लिए यह अनुपयुक्त है। हिंदू राज को हर कीमत पर रोका जाना चाहिए।' (खंड-15, पृ.-365)

डा. आंबेडकर ने धर्म आधारित राज्य का विरोध करने के लिए सेकुलर राजनीतिक पार्टियों की आवश्यकता पर बल दिया था। उनका कहना था कि सांप्रदायिकता बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक समुदाय की सांप्रदायिकता 'क्रिया की प्रतिक्रिया है, जो एक दूसरे को जन्म देती है'। डा. आंबेडकर कहना था कि हिंदू और मुसलमान 'मिलजुल कर राजनीतिक पार्टियों का निर्माण कर लें, जिनका आधार आर्थिक जीर्णोद्धार तथा स्वीकृत सामाजिक कार्यक्रम हो, तथा जिसके फलस्वरूप हिंदू राज अथवा मुस्लिम राज का खतरा टल सके' उनका मानना था कि 'भारत में हिंदू-मुसलमानों की संयुक्त पार्टी की रचना कठिन नहीं है। हिंदू समाज में ऐसी बहुत सी उपजातियां हैं जिनकी आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक आवश्यकताएं वही हैं जो बहुसंख्यक मुस्लिम जातियों की है। अत: वे उन उच्च जाति के हिंदुओं की अपेक्षा, जिन्होंने शताब्दियों से आम मानव अधिकारों से उन्हें वंचित कर दिया है, अपने व अपने समाज के हितों की उपलब्धियों के लिए मुसलमानों से मिलने के लिए शीघ्र तैयार हो जाएंगी।' (खंड-15, पृ.-366)

डा. आम्बेडकर ने हर पक्ष व दृष्टि से इस समस्या पर विचार किया। उनकी पुस्तक से यही निष्कर्ष निकलता है कि वे देश के विभाजन के पक्ष में नहीं थे। लेकिन वे अल्पसंख्यकों की समस्या का समाधान चाहते थे और चाहते थे कि अंग्रेजों के भारत छोड़ने से पहले इस समस्या को सुलझा लिया जाए। अपनी पुस्तक की भूमिका में वे कहते हैं, 'अंग्रेज इस बात के लिए कतई राजी नहीं हो सकते कि वे देश के हिन्दू बहुमत के हाथ में सत्ता सौंप दें और इन आक्रामक हिन्दू नेताओं को यह स्वतंत्रता दे दें कि वे अल्पसंख्यकों के साथ जैसा चाहे व्यवहार करें। क्योंकि ऐसा करने से औपनिवेशवाद का अंत नहीं होगा, बल्कि इससे एक नया उपनिवेश बनेगा। इसलिए हिन्दुओं को पाकिस्तान को स्वीकार करना ही होगा।' इसलिए डा. आंबेडकर महात्मा गांधी के इस विचार के भी समर्थक नहीं थे कि अंग्रेजों के भारत छोड़ देने के बाद भारतीय आपसी सहमति से साम्प्रदायिक समस्याओं को सुलझा लेंगे। वे सभी तरह के अल्पसंख्यकों के हितों की सुरक्षा निश्चित करना चाहते थे और उन्हें बहुसंख्यकों की दया पर छोड़ना नहीं चाहते थे।

किसी को भी किसी के धर्म से नफरत नहीं करनी चाहिए

जोतिबा फुले



इस धरती पर महासत्पुरुषों ने जितनी धर्म किताबें लिखी हैं उन सभी में उस काल के अनुरूप उनकी समझ के अनुसार कुछ न कुछ सत्य है, इसलिए किसी परिवार की एक नारी बौद्ध धर्म की किताब पढ़कर अपनी इच्छानुसार यदि वह उस धर्म को स्वीकार करना चाहती है तो कर सकती है और उसी परिवार का उसका पति बाइबिल का नया या पुराना करार पढ़कर अपनी इच्छा के अनुसार चाहे तो ईसाई धर्म को स्वीकार कर सकता है और उसी परिवार में उसकी लड़की को कुरान पढ़कर उसकी मर्जी इस्लाम धर्म की तरफ हो गई तो उसको इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लेना चाहिए। उसी परिवार के उसके लड़के को सार्वजनिक सत्य धर्म किताब पढ़कर उसकी इच्छा यदि सार्वजनिक सत्यधर्म में हो गई तो उसको सार्वजनिक सत्यधर्मी होना चाहिए और उन सभी माता-पिताओं तथा बाल-बच्चों को अपना पारिवारिक जीवन व्यतीत करते समय किसी को भी किसी के धर्म से नफरत या घृणा नहीं करनी चाहिए। वे सभी हम सभी के निर्माता द्वारा निर्मित संतान हैं और हम सभी उसी के परिवार के लोग हैं, ऐसा समझकर हम सभी को एक-दूसरे के साथ प्यार और मोहब्बत से एक-दूसरे के साथ व्यवहार करना चाहिए। मतलब, वे हम सभी के निर्माणकर्ता के राज में धन्य होंगे।

साभार-जोतिबा फुले रचनावली-2 पृ. 176

देश विभाजन में हरियाणा

❑राजेन्द्र सिंह सोमेश

विभाजन के बाद और आबादी के अदला बदली के समय हरियाणा में मानवता शर्मसार हुई। देश के अन्य भागों में मारकाट और दंगों पर जोर था तो यहां भी निहत्थे बालक, बूढ़े, असहाय महिलाओं का कत्लेआम किया गया था। हरियाणा में कत्ल दूसरी जगहों के मुकाबले कम हुए थे। भाईचारा भी बरकरार रहा। जब मुसलमान यहां से जा रहे थे तो यहां वाले ज्यादातर उन्हें यहीं रहने का आग्रह कर रहे थे। एक बड़ी मुस्लिम आबादी जो गरीब थी तथा कारीगरी और छोटे-छोटे हुनरों से अपना गुजारा करती थी, उसे यहां के लोगों ने जाने से रोक लिया था।

आज हरियाणा की देहात में जो लुहार खाती, तेली, धोबी और दूसरी पिछड़े वर्ग की कमजोर जातियां मुसलमानों की हैं, ये सभी जातियां उस समय के भाईचारे की प्रतीक जातियां हैं। आमतौर पर देहाती मुसलमान गरीब थे। शहरों में रहने वाले मुसलमान कुछ खाते-पीते थोड़ी अच्छी अवस्था में थे। हरियाणा में बहुत कम संख्या में मुसलमान ऐसे थे जो बाहरी देशों से आए थे। ज्यादातर तो यहीं के थे, जो धर्म परिवर्तन करके मुसलमान बने थे। गरीब मुसलमानों के साथ ज्यादा भेदभाव तो वैसे भी नहीं था। सवर्ण वर्ग की मुसलमान जातियों में अपने बड़प्पन की बू कुछ ज्यादा ही थी। लड़ाई-झगड़े की नौबत उन्हीं के साथ ज्यादा रहती थी। ऐसे लोगों में ज्यादा आबादी राजपूत मुसलमानों की थी, जो रांघड़ कहलाते थे। लगभग सभी राजपूत बड़े-बड़े जमींदार थे। रोहतक के पास कलानौर में एक बड़ी जमींदारी या छोटी सी नवाबी थी। ये लोग सन् बारह सौ के आसपास मुसलमान बने थे। बताया जाता है कि तरावड़ी की दूसरी लड़ाई में पृथ्वीराज चौहान की हार के बाद गौरी ने हांसी, रोहतक आदि शहर और मोखरा आदि गांव तथा महम जैसे कस्बों को लूट कर तबाह कर दिया, परन्तु कलानौर के राजपूत धर्म परिवर्तन करके लूटपाट से बच गए। यहां आसपास के अन्य बारह गांव भी मुसलमान बन गए, जो कलानौर का बाराहा कहलाता था। यहां के सभी मुसलमान पाकिस्तान चले गए। खून खराबा न होने के कई कारणों में एक यहां के लोगों का परस्पर भाईचारा था और आर्थिक हित भी सांझे थे। प्रसिद्ध इतिहासकार डा. के.सी. यादव ने अपनी पुस्तक 'हरियाणा प्रदेश का इतिहास' में पृष्ठ 248 पर लिखते हैं कि हिन्दु मुसलमानों में एक-दूसरे के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध थे। उस समय बाहर से आने वालों को तो यह पता ही नहीं चल सकता था कि हिन्दू कौन है और मुसलमान कौन है? वास्तव में वे एक-दूसरे के इतने निकट थे कि कोई भेदभाव दिखाई ही नहीं देता था। जैसे मुस्लिम राजपूतों ने हिन्दुओं के सामाजिक तथा सांस्कृतिक रीति-रिवाज अपना रखे थे। वे सगोत्र विवाह नहीं करते थे और सलोनी (रक्षाबंधन) पर पंडितों पुरोहितों से रक्षा का धागा बंधवाते थे, खुशी-खुशी हिन्दुओं के उत्सवों में भाग लेते थे। इस प्रकार मेव भी करते थे। इनके साथ-साथ इनकी औरतें भी हिन्दू औरतों जैसे पहनावे तथा आभूषण धारण करती थी। विवाह, जन्म, मृत्यु और दूसरे मौकों पर हिन्दू और मुसलमान मिलकर रहते थे और एक-दूसरे के सुख-दुख में सम्मिलित होते थे।

आर्थिक आवश्यकताएं इन संबंधों को और भी सुदृढ़ बना देती थी। भला गांव के मुसलमान तेली को दुत्कार कर हिंदू लोग तेल कहां से लेते? यदि कोई मुसलमान जुलाहे का निरादर करता तो कपड़ा कहां से पाता? इसी तरह दूसरी तरफ हिन्दू कृषक को मुसलमान बुरी नजर से देखते तो अन्न कहां से खाते? अत: समाज विभिन्न जातियों, धर्मों, सम्प्रदायों में बंटा होते हुए भी आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारणों से एकता के सूत्र में बंध हुआ था।'

विभाजन के समय हरियाण में सब से काला अध्याय खरखौरदा जिला सोनीपत में लिखा गया। यहां आसपास हिन्दू आबादी थी। यहां पर मुसलमानों के साथ लूट-खसोट, खून खराबा बहुत अधिक हुआ। मारकाट खून खराबे का कारण धार्मिक द्वेष कम और पूर्व के शक्ति और प्रशासन के घमंड में हिन्दुओं के साथ किया गया दुर्व्यवहार ज्यादा था। खरखौदा कस्बा मामूली सी जमींदारी या रियासत थी। यह स्थान ऐसा था कि दिल्ली, बहादुरगढ़, सांपला, झज्जर, रोहतक और सोनीपत के मार्ग यहीं से गुजरते थे। अत: इधर-उधर जाने वाले लोग यहीं से गुजरते थे। आसपास के व्यक्ति भी सामान आदि खरीदने के लिए यहीं आते थे। खरखौदा मुस्लिम बाहुल्य कस्बा और ज्यादातर दुकानदार भी मुस्लिम ही थे, उनका व्यवहार ज्यादा बढ़िया नहीं था। इससे स्थानीय लोगों को बहुत चिढ़ थी, गुस्सा था। उन खतरनाक दिनों में मारकाट का अवसर उपलब्ध करवा दिया। अनेक जगहों पर कत्लेआम हुआ, परन्तु ज्यादातर कातिल लुटेरे थे। जिस गांव के मुसलमान चले गए थे, उनके घरों को खंगाला गया था। यहां तक भी रहा कि मकानों की छतें उखाड़ कर लकड़ी की कड़ियां उतार ली गई थी। इसी से ऐसा प्रतीत होता है कि धार्मिक द्वेष कम और लूटने की नीयत ज्यादा थी।

इस समय सबका मन डांवाडोल था। परिचितों ने अपने पहचान या आसपड़ौस वालों को कुछ नहीं कहा, परन्तु दूसरे स्थानों से आए उद्दंड प्रवृति के लोगों ने ज्यादा मारकाट मचाई। इस विषाक्त एवं द्वेषपूर्ण वातावरण में महिलाओं के प्रति दुर्व्यवहार की घटनाएं यहां बहुत ही कम हुई। कम घटनाएं इस आशय से कि पाकिस्तान में अनेक हिन्दु महिलाओं को जबरन उठाया गया और वहीं रखा गया। लेकिन यहां किसी ने ऐसा नहीं किया।

इस विभाजन की त्रासदी से केवल हम ही दुखी नहीं हैं। पाकिस्तान का संवेदनशील कवियों का दिल भी इस भयंकर स्थिति पर रो रहा है। पाकिस्तान के कवि मुमताज बलोच ने एक कविता में कहा है,

'असी अणखी पुत पंजाब दे,
अते कूफियां दे संग जंग'
असां गैर तों नहीं सां हार दे, गए अपणे हत्थीं मर,
लुट गईयां इज्जतां सांझियां, जां वंडिया अपणा घर,
इत्थे ऐ ननकाणा रोवंदा, ओथे रोवे अमृतसर,
मोहरी तारे ने मारिया, चन्न मुखड़े ते डंग
असी अणखी पुत पंजाब दे,
अते कूफियां दे संग जंग।

आज जब चारों ओर साम्प्रदायिक ताकतें सिर उठा रही हैं, उस समय हरियाणा निवासियों का यह कर्त्तव्य बनता है कि वे एक बार फिर लोगों को प्यार, प्रेम और सौहार्द का संदेश दे।

सम्पर्क-9729051188

हम सब शरणार्थी...

धर्मेंद्र कंवारी

मैं 33 का हो चला हूं। 11 साल से पत्रकारिता कर रहा हूं। जब कभी फुर्सत में आंख बंद करके बैठता हूं तो बहुत सारी बातें दिमाग में घूम आती हैं। गांव की स्मृतियां हैं कि भुलाए नहीं भुलती। सुबह एक मोपेड की आवाज... इसके बाद एक उर्दू और एक हिंदी, दो अखबार हमारी बैठक के दरवाजे पर होते। उन्हें देकर जाने वाला एक बुजुर्ग सा दिखने वाला कोई 30-35 किलो के डील डौल वाला व्यक्ति था। काफी साल पुरानी बातें हैं सो नाम याद नहीं पर वो नाम जरूर याद है जो गांव के लोग उसे अक्सर कहते...सुनारथी। बाद में मुझे पता चला कि ये सुनारथी नहीं शरणार्थी है। पाकिस्तान से हिंदुस्तान आए लोगों को यही कहकर आज भी पुकारा जाता है।

वो अखबार वाला बहुत जल्दी में होता और दो-चार मिनट मेरे दादा के पास बैठकर दुख सुख की बातें भी कर ही जाता। कुछ बातें मुझे आज भी याद हैं, जैसे वो कहता कि मैं आंख बंद करता हूं तो झंग याद आता है। मां तो वहीं छोड़ आया। ऐसे कहते हुए उसकी आंखें डबडबा जाती और मेरे दादा कंधे पर हाथ रखकर कह देते - कोई बात नहीं, वक्त सब ठीक कर देता है। वक्त बड़ा बलवान है। दादा उस जमाने में पुलिस में रहे थे और क्षेत्र में भी उनकी काफी साख थी। अक्सर उनकी सुनारथी कहे जाने वाले लोगों से खूब बनती थी। हमारे गांव के चौक में बणियों के चौक के पास ही एक दुकान थी, रमलू की दुकान, परचून की। हम यही कहते थे, बोर्ड तो कोई लगा नहीं था उसपर। अधिकतर गांव वाले उसी के यहां से सामान लाते, दादा के एक हुक्म पर हम भी वहां भागे जाते पर पता नहीं क्यों दादा खुद वहां शाम को जाकर सामान लाते। स्मृतियों से ही मुझे याद है कि रमलू और महेंद्र के पिता ने यह दुकान पाकिस्तान से उमरा गांव में बसने के बाद की थी। पिता के बाद बेटों ने अब पोते दुकान चला रहे हैं उनकी हालत भी करीबन गांव के अन्य लोगों जैसी ही आज भी है, शहरीकरण में ये लोग नहीं ढल पाए।

एक दिन मैंने दादा से बातों ही बातों में पूछा - दादा ये सुनारथी कूण हौवे सैं... दादा ने गंभीरता से जवाब दिया-बेटा वैसे तो हम सब सुनारथी हैं। ये शब्द सुनारथी नहीं शरणार्थी है। यानी शरण लेना। एक तरह से इंसान इस दुनिया में कहीं पैदा होता है तो ये धरती उसे शरण देती है और फिर इंसान एक दिन मर भी जाता है। यानी शरण छोड़ देता है। दूसरी बात ये है कि ये हिंदुस्तान और पाकिस्तान कभी एक ही मुल्क होते थे। अंग्रेजी राज से मुक्त कराने के लिए भगतसिंह सरीखे नौजवान हंसते-हंसते फांसी चढ़े और तब हमें आजादी मिली। कुछ लोगों ने साजिश कर मुल्क के दो हिस्से कर दिए और पाकिस्तान बना। पाकिस्तान से हजारों लोग हिंदुस्तान में आए थे। बस ऐसे लोगों को सुरनाथी कहा जाता है। ये अपना सबकुछ छोड़कर यहां आए थे।

मैं तब दूसरी कक्षा में रहा होगा लेकिन दादा की समझाइश मेरे मन में छप चुकी थी। पहली ये कि हम सब शरणार्थी हैं और दूसरी ये कि जिन्हें सारा देश शरणार्थी कहता है वे दरअसल कौन लोग हैं। मैं बड़ा हुआ शहर पहुंचा तो समझ गया था कि शरणार्थी शब्द से उन लोगों को चिढ़ है। मेरे दोस्तों की सोहबत में रहकर मैंने जाना कि इस शब्द से उन्हें चिढ़ इसलिए है क्योंकि ये मुल्क को पराया नहीं मानते और दूसरा ये है कि उनके बंटवारे के जख्म हरे हो जाते हैं।

खैर मेरा परिचय अब उनसे हुआ जिन्हें पंजाबी कहा जाता है। पंजाबी इनकी नई पहचान है लेकिन दर्द यूं का यूं था। मैं शहर में जिन पंजाबी मित्रों के साथ रहा, उनके घर मेरे घर से अच्छे, रहन-सहन बढ़िया था और पढ़ाई और समझ में भी वे मुझसे आगे थे। पर मेरे दोस्तों की मां मुझे मां जैसा ही प्यार करती। जब कभी मेरी जात की बात आती तो उनके मुंह से अक्सर निकलता कि तूं तो फलां जाति का है, तेरी तो सिफारिश से नौकरी लग जाएगी, हमें तो काम धंधे ही करने हैं। खैर उनकी ये धारणा गलत साबित हुई क्योंकि मैंने पत्रकारिता को पेशा चुना लेकिन असल में वे सच भी कह रही होती थी।

मैं अपने हिसाब से अब कह सकता हूं कि इन लोगों की सत्ता में हिस्सेदारी नहीं थी, पर बिजनेस में इन लोगों ने खुद को स्थापित कर लिया था। कोई कलह नहीं और कोई द्वेष नहीं।ं कुछ स्वार्थी लोगों ने समाज में नफरत की दीवार खड़ी की । रोहतक का तांडव तो देख ही चुके हैं हम सब। सबसे पीड़ादायक बात मुझे जो लगी वो ये है कि - बजुर्गों ने भी कहा कि हमें बंटवारे के दिन याद आ गए।

मेरे पास इन शरणार्थी लोगों के संग रहने के लिए सैकड़ों अनुभव हैं या यूं भी कहा जा सकता है कि मेरे मन में असीम प्रेम है। मुझे पत्रकारिता सीखाने वाले भी एक पंजाबी समाज से ही संबंध रखने वाले पत्रकार ही थे। पत्रकारिता में ही मेरे भाई सरीखे कई दोस्त हैं जो कथित सुनारथी या अब पंजाबी हैं। मेरी मैथ की टीचर इसी समाज से थी लेकिन आज भी मिलता हूं कि उनके दिए आशीष मेरी मां जैसे ही लगते हैं।

मेरे दादा कुंदनलाल के संस्कार हैं कि मैं खुद को भी शरणार्थी ही मानता हूं और सबको भी। हम सबको इस धरती ने शरण दी है इसलिए एक वर्ग विशेष के प्रति दुराभाव करना इंसानियत नहीं है। इंसान की जात होना ही बड़ी बात है। अच्छा हो हम सब प्रेम से जीवन व्यतीत करें। वक्त कई बार घाव देता है और उन्हें भरता भी वक्त ही है। बुरे अनुभवों का साथ पकड़े रहने में भला क्या समझदारी है। जाति-धर्म या क्षेत्र के आधार पर हम द्वेष की सीमाओं में बंधते ही क्यों हैं। प्रेम ही सबसे बड़ा है।

सम्पर्क-9996548479

कुछ सुनी हुई, कुछ देखी हुई

❑विपिन सुनेजा

हमारी पीढ़ी आजादी के बाद की पैदाइश है। विभाजन के दौरान हुई हिंसा और दहशत के जिस वातावरण से हमारे बुजुर्ग गुजरे थे, हमने वह देखा नहीं, सुना भर है। लेकिन उन्होंने लुट-पिट कर आने के बाद यहां किस प्रकार अपने-आप को स्थापित किया और नए वातावरण के अनुरूप ढाला, हम उसके साक्षी अवश्य हैं।

मैं अपने परिवार की ही बात करूं तो विभाजन से पहले मेरे दादाजी और नानाजी दोनों जिला लायलपुर के समुन्दरी शहर में रहा करते थे। वहां से उजड़े तो बचते-बचाते दोनों परिवार रेलगाड़ी में सवार हो गए। रेवाड़ी आकर गाड़ी रुकी तो रेलवे स्टेशन की भव्यता से प्रभावित होकर यहीं उतर गए। परिवारजनों को प्लेटफार्म पर बिठाकर मेरे नानाजी टहलते-टहलते स्टेशन से बाहर आए तो कुछ ही दूरी पर एक सिनेमाघर नज़र आया। उन्हें लगा कि अच्छा शहर है। बस वापिस जाकर परिवार के सभी सदस्यों को कह दिया कि यहीं रहेंगे। दोनों परिवारों ने एक-एक मकान ढूंढ लिया और व्यवसाय की संभावनाएं तलाशने लगे। लेकिन कुछ ही दिनों में पता चल गया कि रेवाड़ी एक बिल्कुल अविकसित शहर था। बल्कि शहर ही नहीं, कस्बा था। यहां तो मूलभूत सुविधाएं भी उपलब्ध नहीं थी। सबसे बड़ी समस्या थी पानी की। शहर की सीमा के पार कुछ कुएं थे, जहां से पीने या नहाने के लिए पानी भर कर लाना पड़ता था। या फिर शहर से कुछ दूर बड़ा तालाब था, जहां महिलाएं सप्ताह भर के इकट्ठे किए हुए कपड़े धोने जाती थीं। शहर के अंदर की धरती के नीचे का पानी खारा ही नहीं कड़वा था, जो किसी भी काम में नहीं लिया जा सकता था। नलकूप कामयाब नहीं थे। कैसा विचित्र था यह सब। कहां वह पंजाब जो नदियों के पानी से खुशहाल था और कहां यह रेतीला इलाका जहां पीने के लिए पानी मुश्किल से मिलता था।

रेवाड़ी का यह क्षेत्र सांस्कृतिक दृष्टि से भी शुष्क हुआ करता था। मेरे नाना श्री भगवानदास भुटानी रंगमंच के सुलझे हुए कलाकार थे। वहां समुंदरी में वे रामलीला और नाटकों में बढ़चढ़ कर भाग लिया करते थे। पृथ्वीराज कपूर फिल्मों में जाने से पहले उसी रामलीला में उनके साथ अभिनय किया करते थे। समुंदरी का रंगमंच तो पूरे पंजाब में प्रसिद्ध हुआ करता था। पर नानाजी ने रेवाड़ी में आकर देखा कि यहां के लोगों को तो यह भी पता नहीं था कि रंगमंच होता कैसे है। रामलीला होती थी पर मैदान में। चारों ओर रस्सी बांध दी जाती थी। बीच में कलाकार घूम-घूम कर अभिनय करते थे और आसपास दर्शक बैठ कर देखते थे। एक मेले जैसा माहौल होता था। इसे देखकर नानाजी काफी निराश थे। मेरे मौसा श्री भोलाराम चुघ को भी संगीत का शौक था। वे तबला बहुत अच्छा बजाते थे। सन् 1949 में नानाजी और मौसा जी ने मिलकर रेवाड़ी में 'युनाइटिड ड्रामेटिक क्लब' की स्थापना की, हर वर्ष रामलीला और सामाजिक नाटक होने लगे। ऐसा भव्य मंच तो पूरे इलाके में किसी ने नहीं देखा था। संगीत के कार्यक्रम तो साल भर चलते थे। धीरे-धीरे यह क्लब दूर-दूर तक प्रसिद्ध हो गया। इसकी देखा-देखी कुछ और रंगमंच भी स्थापित हुए पर वे ऐसी भव्यता को नहीं छू पाए। यूनाइटिड क्लब से निकले हुए कितने ही कलाकारों ने बाद में अपनी राष्ट्रीय पहचान बनायी।

साहित्यिक क्षेत्र में भी रेवाड़ी नगर बिल्कुल निष्क्रिय हुआ करता था। मेरे उस्ताद श्री नंदलाल नैरंग सरहदी उर्दू के बड़े ऊंचे दर्जे के शायर थे। वे पंजाब के डेरा इस्माइल खां में रहा करते थे, जहां के मुशायरों में बढ़चढ़ कर हिस्सा लेते थे। यहां रेवाड़ी आकर कुछ समय तो अवसाद से घिरे रहे। उनकी सबसे बड़ी पीड़ा यह थी कि उर्दू जुबान ही खत्म होती जा रही थी। इसके लिए वे अपने लोगों को ही जिम्मेवार मानते थे। उन्होंने लिखा-

किया हमपे क्या-कया गुमां दोस्तो ने।
मिटाया हमारा निशा दोस्तों ने।
असासा हमारा तो दोनों ने लूटा,
मकां दुश्मनों ने, जुबां दोस्तो ने।

लेकिन धीरे-धीरे उन्होंने अपने-आपको अवसाद से छुड़ाया। शायरी में शौक रखने वालों को इक्ट्ठा किया और 1954 में 'बज्मे-अदब' नामक संस्था का गठन कर लिया। रेवाड़ी में भी मुशायरों की महफिलें गर्म होने लगी। डा. विद्यासागर 'कमर', रामसहाय 'शैदां', मनोहर लाल 'कमसिन' जैसे उर्दू के शायर और नंदकुमार मुद्गल तथा शेखर जैन जैसे हिन्दी कवि इस संस्था के सदस्य बन गए। भारत के मशहूर शायर कुंवर महेन्द्र सिंह बेदी गुड़गांव के उपायुक्त होते थे। उन्होंने भी कई बार इन मुशायरों की अध्यक्षता की। इस प्रकार रेवाड़ी साहित्यिक गतिविधियों का केंद्र बन गया।

विभाजन के कारण पश्चिमी पंजाब से आए हम लोगों को स्थानीय लोग 'पाकिस्तानी' कहा करते थे। फिर रिफ्यूजी (शरणार्थी) कहने लगे। बहुत से लोगों को ये सम्बोधन बुरे लगते थे। पर हमारे बुजुर्ग कहा करते थे कि वहां हम मुसलमानों के साथ भी तो मैत्रीपूर्ण ढंग से रहते थे, तो फिर यहां अहीरों, जाटों और बनियों के साथ क्यों नहीं रह सकते। हमें सिर्फ इतना करना है कि किसी के आगे हाथ नहीं फैलाना। अपने-आप को इस योग्य बनाना है कि हम दूसरों की सहायता कर सकें। फिर अपने-आप सब ठीक हो जाएगा। और हुआ भी ऐसा ही। धीरे-धीरे स्थानीय लोगों के साथ हम घुल-मिल गए। मेरे पिताजी के अधिकतर मित्र अहीर जाति के थे।

मेरे मित्रों में सभी सम्प्रदायों के लोग हैं। स्थानीय लोगों के साथ हमारे संबंध इतने मधुर हैं कि ऐसा लगता ही नहीं कि हमारे पूर्वज बाहर से आए थे। कहने का अभिप्राय यह है कि यदि हमारी सोच सकारात्मक होगी तो नकारात्मक शक्तियां अपने-आप घुटने टेक देंगी।

और हां, एक बात और। रेवाड़ी का भूमिजल भी धीरे-धीरे मीठा हो गया है। कभी इधर आना हो तो चख कर देखिएगा।

सम्पर्क-09991110222

मानवीय मूल्यों के रक्षक भी थे कुछ लोग

उदयभानु हंस

मेरा जन्म 2 अगस्त 1926 को पश्चिमोत्तर पंजाब की मुलतान-मियांवाली रेलवे लाईन पर 60-70 मील दूर जिला मुजफ्फरगढ़ के एक कस्बे में हुआ। देश-विभाजन के समय जब साम्प्रदायिक हिंसा की आग सर्वत्र भड़क रही थी, हमारा जिले का अधिकांश क्षेत्र मुस्लिम-बहुल होते हुए भी यथापूर्व अपेक्षाकृत शांत बना रहा।

मेरे जन्मस्थान 'दायरादीन पनाह' में जून 1947 में अचानक कुछ उपद्रवी तत्व पंजाब के सीमा प्रांत (वर्तमान वज़ीरिस्तान के कबाइली क्षेत्र जहां अब तालिबान का ही प्राय: अधिकार है।) से आए। हट्टे-कट्टे लंबे पठानों को मैंने देखा जो हिन्दू दुकानदारों के साथ अकारण झगड़ा कर मारपीट कर रहे थे। मेरे लिए यह सर्वथ अप्रत्याशित दृश्य था, पहले भी ये पठान और मजबूत कद-काठी की पठानियां अपनी पीठकर अपने नन्हें बच्चों को कपड़े की थैली में रखे, सूखे मेवे और चमन के प्रसिद्ध अंगूर बेचने आया करती थीं। यह घटना निकट भविष्य में विस्थापन की शायद सुनियोजित भूमिका थी।

किंतु सुखद आश्चर्य हुआ, जब आसपास हिंसक दंगों की सूचनाएं मिलने लगीं तो हमारे गांव के पठान थानेदार ने अल्पसंख्यक हिंदुओं को भयभीत न होने का आश्वासन देकर केवल 15-20 सिपाहियों के साथ सुरक्षा का कड़ा प्रबंध कर दिया। दशहरा का पर्व इस बार न मनाने का निश्चय करने पर हिंदुओं को यथापूर्व नि:संकोच त्यौहार मनाने और गांव के खेतों में रावण का पुतला यथापूर्व धूमधाम से जलाने के लिए राजी कर लिया। रात को कभी-कभी गांव के कुछ कट्टरपंथी उपद्रवी 'अल्लाह-हू-अकबर' के जिहादी नारे लगाने का जब सामूहिक प्रयास करते तो घोड़े पर चढ़कर वो बंदूक लेकर सिपाहियों के साथ पहरा देता रहता। युसुफ खान पठान जैसे एक आदर्श थानेदार की ऐसी कर्त्तव्यपराण्यता सचमुच अविस्मरणीय है।

नवम्बर, 2010 में दूसरी बार पाकिस्तान-यात्रा में जब मैं अपने शायद मित्र डा. एम.पी. चांद के साथ गया और उनके जन्म स्थान 'करोड़ लालहर्षण' में उनके खस्ताहाल मकान को देखा तो वहां उनके स्वागत में एकत्र उनके मित्रों को उन्होंने एक घटना सुनाई कि भारत में भी एक सिख ने अपने मुसलमान दोस्त की कैसे जान बचाई। उनका परिवार भी विस्थापित होकर जिला फिरोजपुर के निकट 'ज़ीरा' कस्बे में आ गया था, जहां उनके पिता जी सरकारी हाई स्कूल के हैडमास्टर थे। वहां स्कूल पुस्तकालय में एक उर्दू पत्रिका में 'साकिब जीरवी' नाम से समाचार छपा था कि जीरा के दंगाइयों को जब पता चला कि वह शायर अपने दोस्त सरकार गुरमुख सिंह दर्ज के घर छुआ हुआ है तो उन्होंने उसकी हत्या करने के लिए वहां हल्ला बोल दिया। गुरमुख सिंह ने तुरंत अपने मुसलमान मित्र की जान बचाने के लिए अपनी बीमार पत्नी के साथ उसे लिटा दिया और पत्नी का कम्बल भी उस पर डाल दिया। पत्नी का मुख कम्बल से बाहर दिखाई दे रहा था।

बलवाइयों ने कहा कि आप घर में आकर देख लें। वह यहां केवल मेरी बीमार बीवी पड़ी है। बलवाइयों ने सारा घर देखा और लौट गए। वे कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि अपने मुस्लिम दोस्त को बचाने के लिए गुरमुख इतनी बड़ी कुर्बानी भी दे सकता है।

माननीय सद्भावना एवं सहयोग के कुछ और उदाहरण भी हैं जो पाकिस्तान और भारत से पड़ोसी देशों में पड़ी दरार को पाटने में सहायक हो सकते हैं।

माननीय सद्भावना एवं सहयोग के कुछ और उदाहरण भी हैं जो पाकिस्तान और भारत से पड़ोसी देशों में पड़ी दरार को पाटने में सहायक हो सकते हैं।

मेरी 2006 और 2010 की दोनों यात्राओं में वहां के साहित्यसेवियों, बुद्धिजीवियों ने जैसा हमारा हार्दिक अभिनंदन और सम्मान किया, उससे तो यही लगता है कि वहां का जनसाधारण भारत का विरोधी नहीं है। लाहौर के प्रसिद्ध अनारकली बाज़ार जाते हुए मार्ग में जब मेरे साथी ने विधानसभा भवन का फोटो लेने के लिए आटोरिक्शा को रोकने को कहा तो लंबी दाढ़ी वाले आतंकी जैसे दिखने वाले ड्राइवर ने चिल्लाकर कहा 'असैंबली का फोटों क्यों खींचना चाहते हो?' यहां तो हमारा खून चूसने वाले राजनेता रहते हैं, आपका भारत और हमारा पाकिस्तान एक ही समय 1947 में आजाद हुआ। वहां कभी फौजी हकूमत रही? यहां 35 वर्ष से फौजी डिक्टेटर हुकूमत करते रहे। अगर फोटो खींचना है तो मैं आपको 'मीनार-ए-पाकिस्तान' ले चलता हूं। 'मुहम्मद हकवाल' का मकबरा दिखाता हूं।

ये सच है पाकिस्तान और भारत के लोग तथा बुद्धिजीवी दोस्ती चाहते हैं। परन्तु कुछ स्वार्थी राजनेता और कट्टरपंथी धर्मगुरु एवं आतंकी संगठन परस्पर दुश्मनी और हिंसा, युद्ध की बातें कर विरोधी भावनाओं की आग भड़काकर अपनी रोटियां सेंकते हैं।

साभार-वे 48 घंटे-डा. चंद्र त्रिखा

शकुंतला

फकीर बाबा

एक गांव में सभी लोग बहुत मेहनत करते थे। लेकिन वे सब बहुत दुखी थे। कारण ये था कि उनकी कमाई को कोई चुरा लेता था लेकिन किसी को भी यह नहीं पता था कि चोर कौन है। फिर एक दिन वहां एक फकीर बाबा आये। फकीर ने लोगों से दुख का कारण पूछा तो लोगों ने फकीर बाबा को अपनी बात बताई । फकीर ने कहा कि आप के दुख का समाधान हो सकता है। लोगों ने पूछा कैसे होगा। बाबा ने कहा कि अगर आप सब लोग अपने सारे पैसे मेरे पास जमा कर दें तो चोर का भी पता लग जायेगा और आपका दुख भी दूर हो जायगा । सभी ने अपने सारे पैसे फकीर बाबा के पास जमा कर दिये । और फकीर बाबा से कहा कि अब हमारे दुख का अंत करो बाबा। फकीर ने कहा कि आपको अभी पाँच महीने इंतजार करना पडेगा और अपना लोगों के पैसों से भरा थैला उठा लिया। फिर कहा कि हम तो फकीर हैं ,झोला उठा कर चले जायेगें । और फकीर बाबा चलता बना। गांव के लोग खुद को ठगा हुआ महसूस कर रहे थे और अपना माथा पीट रहे थे।

सम्पर्क -991099952

भूल गई रंग चाव, ए भूल गई जकड़ी

❑राजेन्द्र सिंह

आज के इस युग में जब स्वयं हाशिए पर चले गए हिन्दी साहित्य में भी प्रकाशन का अर्थ सिर्फ कहानियों, कविताओं या कुछ हद तक उपन्यास के प्रकाशन तक सिमट कर रहा गया है, तथा शोध के नाम पर ठेके पर तैयार करवाए गए ऐसे शोध प्रबन्धों के जुगाडी प्रकाशनों की भरमार है जिसको शायद शोधकर्ता ने स्वयं भी पूरा पढा नहीं होता, ऐसे में किसी ऐसी पुस्तक का प्रकाशन होना जिसके हर पृष्ठ से मेहनत, ईमानदारी, निश्चय, एवं वास्तविक शोध की खुशबू आए तो यह बात सिर्फ सन्तोष ही नहीं देती बल्कि एक नई आशा एवं उर्जा का संचरण भी करती है। एक हरियाणवी पाठक का उत्साह और भी बढ जाता है जब यह रचना साहित्य एवं समीक्षा की मुख्यधारा में उपेक्षित एवं लुप्तप्राय: हरियाणवी लोकगीत 'जकड़ी' को समर्पित हो।

1970 के दशक के अन्तिम वर्षों का समय वह दौर था जब हरियाणा में यहां की संस्कृति, साहित्य, मिट्टी, वेशभूषा, काम-धन्धों एवं स्वप्नों ने अपना रंग पलटना शुरु कर दिया था। 'भूल गई रंग चाह ए भूल गई जकड़ी, तीन चीज याद रैहगी ए नूण तेल लकड़ी', इस समय की ये वो हरियाणवी कहावत थी जो उस दौर में जीवन की करवट लेती रंगत की परिचायक थी। यह कहावत हमें बताती है कि हरियाणवी महिलाओं के दिन-रात के साथी लोकगीत जकड़ी भी बाजार की चपेट में आ चुके थे एवं हरियाणवी जन मानस के मस्तिष्क में लोकगीतों एवं लोककथाओं की रचनात्मकता तथा विनोदशीलता की जगह अब चुल्हे-चौके के संचालन एवं बाजार से संबंधित रोजमर्रा की जरूरतों से जुडी चिन्ताओं ने ले ली थी। देवेन्द्र कुमार द्वारा लिखी पुस्तक 'जकड़ी: हरियाणवी महिलाओं के सर्व सुलभ लोकगीत' पाठक को चार दशक पुराने ग्रामीण हरियाणा में ले जाती है जिसके अब सिर्फ अवशेष बाकी हैं। यह पुस्तक उन अवशेषों को बटोरने एवं सहेजने का एक ईमानदार एवं दुर्लभ प्रयास है।

पुस्तक के पहले भाग में लेखक ने 'जकड़ी: एक परिचय' शीर्षक के तहत जकड़ी जैसी स्वच्छन्द लोक विधा को परिभाषित करने की कोशिश की है। जकड़ी



के इतिहास एवं अन्य संस्कृतियों से इसके गूढ संबंधों सहित विभिन्न आयामों को छुआ है। उनका यह प्रयास हरियाणवी बोली को हिन्दी की सम्मानित और परिष्कृत लोक भाषाओं के समकक्ष बिठा देता है। भोजपुरी, ब्रज, गुजराती, राजस्थानी आदि भाषाओं एवं संस्कृतियों में तो जकड़ी शब्द का प्रयोग गाहे बगाहे हुआ ही है, यह जानकर वास्तव में आश्चर्य होता है कि महाकवि विद्यापति ने भी अपनी पुस्तक में जकड़ी का उल्लेख किया है। देवेन्द्र कुमार का यह प्रयास जकड़ी के लोकरूप का उत्सव तो मनाता है ही साथ में उनका प्रमाणित विधि-विधान से किया गया शोध इस लोकविधा को शास्त्रीयता भी प्रदान करता है।

जकड़ी गीत एक युवा हरियाणवी महिला के यथार्थ की अभिव्यक्ति हैं तथा अधिकतर लोकगीतों का कथ्य इस ग्रामीण हरियाणवी महिला के दैनिक जीवन के कष्टदायी अनुभवों से गहरे रूप में जुडा हुआ है। इन लोकगीतों में युवा महिलाएं अपने मायके एवं ससुराल के सभी संबंधियों तथा उनके व्यवहार के संबंध में अपने हृदय एवं आत्मा की अंतरंग भावनाओं को उडेल कर रख देती हैं। ये लोकगीत हरियाणवी स्त्री के जीवन के सबसे महत्वपूर्ण पड़ाव की सटीक अभिव्यक्ति हैं जब वह रजस्वला होने से लेकर पुत्रवती होने तक विस्थापन एवं पुन:स्थापन के मानसिक एवं सामाजिक द्वन्द्व से गुजरती है। यही कारण है कि वह हमें स्वयं उसके द्वारा बनाए एवं गाए गए जकड़ी गीतों में बहन, बेटी, बहू, पत्नी, ननद, देवरानी, जेठानी, भाभी, प्रेमिका, नवविवाहिता एवं सास आदि के विभिन्न रूपों में नजर आती हैं।

पुस्तक में जकड़ी गीतों का छह श्रेणियों में वर्गीकरण किया गया है। इसी वर्गीकरण के आधार पर इसको विभिन्न भागों एवं पाठों में बांटा गया है। हरियाणवी महिला के विभिन्न रुपों एवं भूमिकाओं से जुडे जकड़ी लोकगीतों को अलग अलग भागों में रखा गया है। हर जकड़ी के बाद हिन्दी में उसकी व्याख्या, समीक्षा एवं समालोचना का रोचक एवं गम्भीर प्रयास किया गया है। कुल 268 जकड़ियों का यह संग्रह पाठक को रोमांच से भर देता है।

इस पुस्तक की असली नायिकाएं वो 75 महिलाएं है। जिनकी सांस्कृतिक जड़ें हरियाणा के आठ जिलों हिसार, जीन्द, रोहतक, भिवानी, झज्जर, पानीपत, सोनीपत, फतेहाबाद एवं कैथल के 63 गावों से जुड़ी हुई हैं। इस सार्थक रचना के माध्यम से लेखक ने हरियाणवी साहित्य एवं शोध में कुछ नया करने एवं रचने की प्रेरणा दी है।

पुस्तक : जकड़ी: हरियाणवी महिलाओं के सर्व-सुलभ लोकगीत
लेखक: देवेन्द्र कुमार
प्रकाशक: किशोर विद्या निकेतन, वाराणसी
मूल्य: 350 रुपये

सम्पर्क- 9729751250

पुस्तक-समीक्षा

उत्तराखंड त्रासदी की दास्तान

❐ओम सिंह अशफाक

उत्तराखंड में 'मानवकृत विकृत विकास' द्वारा पैदा की गई त्रासदी पर मेरी नजर में अभी तक दो उपन्यास गुजरे हैं-एक ब्रह्म दत्त शर्मा का 'ठहरे हुए पलों में' और दूसरा त्रेपन सिंह चौहान का 'हे ब्वारी!' दोनों कृतियों का सारत: मुद्दा एक ही है। बेशक 'हे ब्वारी' की त्रासदी उत्तराखंड राज्य के जन्म से लेकर अब तक विकास के नाम पर हुए विनाश की लम्बी दास्तान है, जबकि 'ठहरे हुए पलों में' तीन साल पहले घटित केदारनाथ-त्रासदी के उन पंद्रह दिनों के मौलिक अनुभवों को समेटा गया है, जब लेखक बदरीनाथ में सपरिवार वहाँ फंसकर रह गया था। कथ्य की समानता, सामाजिक सरोकारों की प्रतिबद्धता, यथार्थवादी-तर्कसंगत चित्रण और प्रवाहमय भाषा की ताजगी दोनों उपन्यासों को समानता के धरातल पर ला खड़ा करती है और एकदम से सरस एवं पठनीय बना देती है।

'ठहरे हुए पलों में' कुरुक्षेत्र निवासी संजीव और अमित नामक दो मित्र छुट्टियों में किसी पहाड़ी क्षेत्र की सैर पर निकलना चाहते हैं। वे सपरिवार केदारनाथ-बदरीनाथ धाम की यात्रा पर रवाना हो जाते हैं। वहीं उन्हें केदारनाथ के खराब मौसम की सूचना मिलती है। वे एक रात बदरीनाथ में रुककर अगले दिन केदारनाथ जाने की योजना बनाते हैं, परन्तु उसी रात ऊपर पहाड़ों में बादल फटने से केदारनाथ में भयानक तबाही बरपा हो जाती है, जिसमें असंख्य जान-माल की हानि होती है। नतीजन ये दोनों परिवार और इनके साथ रुके अन्य तीर्थयात्री केदारनाथ की तबाही से तो बच जाते हैं, परन्तु उस सैलाब द्वारा बदरीनाथ और निचले तमाम इलाकों में तबाह की गई सड़कों, पुलों और दीगर रास्तों की बाधा के कारण दो सप्ताह तक बदरीनाथ में ही फंसकर रह जाते हैं। वापस घर लौटने के तमाम रास्ते नेस्तानाबूद हो जाते हैं। यातायात और संचार व्यवस्था भी नकारा हो जाती है। वहां फंसे लोगों का शेष दुनिया के लोगों से भी संपर्क टूट जाता है।

विषम परिस्थितियों में घिरे परिवार और अन्य यात्री वहाँ किन भौतिक और मानसिक यातनाओं का सामना करते हैं? कैसे उठते-बैठते, सोते-जागते हैं और क्या-क्या खाते-पीते, बोलते-बतियाते और सोचते-बूझते हैं? इन्हीं मन:स्थितियों और विचार सरणियों को लेकर 'ठहरे हुए पलों में' उपन्यास का सृजन हुआ है। अपनी आस्थाओं और विश्वासों की जाँच-पड़ताल के साथ-साथ शासन-प्रशासन, पुलिस, सैनिक-अर्धसैनिक बलों, वायुसेना, स्थानीय निवासियों, दुकानदारों,होटलों, धर्मशालाओं, धर्माचार्यों, सेठों और गरीब लोगों के जीवन में झाँकने की कोशिश करते हुए सामाजिक, आर्थिक, भौतिक और पर्यावरणीय 'विकास' का विश्लेषण और मूल्यांकन का जायजा लिया गया है।

हमारे सामाजिक, आध्यात्मिक विश्वासों और आस्थाओं को भी कसौटी पर रखा है। हमारी आदिभौतिक और आदिदैविक मान्यताएं यूं ही हमारे जीवन एवं संस्कृति का हिस्सा बन गई हैं अथवा उनमें कोई सार भी है? ग्वालियर से पधारे प्रोफेसर अतुल त्रिवेदी जी के साथ हुए संवादों में ये अच्छी तरह से उभरकर सामने आता है:

''संजीव जी, इस स्थान के चप्पे-चप्पे से कोई न कोई मनगढ़ंत किस्सा जुड़ा है।.......... विष्णु जी ने इस स्थान को तपस्या के लिए चुना था। इसलिए यह स्थान पूरी पृथ्वी पर सर्वश्रेष्ठ और बैकुंठलोक के बराबर है। यहाँ यात्रा करना किसी अन्य स्थान पर हजारों वर्ष तप करने के बराबर है। तप्त कुंड में स्नान करने 'मात्र' से न सिर्फसात जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं, बल्कि मोक्ष भी मिल जाता है। देखो, सब कुछ कितना आसान बना दिया गया है!

एक बड़ी शिला द्वारा स्वाभाविक रूप से पुल-जैसा कुछ बना देखा और इससे एक किस्सा जोड़कर कह दिया, इसे भीम ने बनाया है। कोई बर्फ के पहाड़ पर मुश्किल रास्ता देखा, उसे पांडवों की स्वर्ग की सीढ़ी बतला दिया। दो गुफाएं पास-पास बनी देखी, उन्हें गणेश और वेदव्यास से जोड़कर कोई कहानी गढ़ ली। ऐसे अनगिनत किस्सों की यहाँ भरमार है, जिन्हें सच मानने का कोई भी वैज्ञानिक आधार या प्रमाण नहीं है। वास्तव में इन अफवाहों को चालाक लोगों द्वारा इसलिए गढ़ा जाता है, ताकि लोग इन्हें सच मानकर बार-बार यहाँ आते रहें।''

''किन लोगों द्वारा.....?''इस बार अजय ने हल्की-सी नाराजगी से पूछा था।

''प्राचीन समय में जिन्हें इन यात्राओं से फायदा मिलता था, उनके द्वारा! वर्तमान में होटल-कारोबारियों, पण्डित-पुराहितों और मंदिर-समिति आदि द्वारा ऐसे किस्सों का जमकर प्रचार किया जाता है। सिर्फ यहाँ ही क्यों, लगभग हर धार्मिक जगह की यही कहानी है। हमारे देश में कोई भी ऐसी जगह नहीं जहां राम, कृष्ण, शिवजी और हनुमान जैसे देवता न पहुँचे हों। प्राचीन काल में इतनी यात्रा कैसे मुमकिन हो सकती थी?

वास्तव में सभी कारोबारी ताकतों द्वारा आस्था को भी एक जुनून में बदल दिया जाता है, ताकि सब उसका अंधानुकरण करने लगें। यह शुद्ध व्यावसायिक सोच और धोखा है! क्योंकि वे जानते हैं आम आदमी आस्था के मामले में कुछ ज्यादा ही मूढ़ है। उसे जो चाहो बतला दो, वह फटाफट मान लेगा। कितनी भी अतार्किक बात हो, मगर वह अपनी मूढ़ता और उससे भी ज्यादा डर के मारे कोई प्रश्न ही नहीं उठाएगा। ....

आम आदमी के इसी डर और कमजोरी का फायदा उठाकर लगभग सभी धार्मिक जगहों पर आस्था, पुण्य और परलोक के नाम पर एक जाल बुना जाता है। यहाँ भी हर साल वह इसी जाल में फंसकर भेड़ों की भांति मुंह उठाये चला आता था। जैसे भेड़ें घूम-फिरकर हमेशा सुरक्षित वापस चली जाती थी, सोचा था इस बार भी वैसे ही चली जाएंगी। मगर अब की बार यहां जल-प्रलय में फंस गई। बहुत-सी मारी भी गई!''

उपन्यास में हम देख सकते हैं कि संकट में फंसकर या अभ्यस्त होते ही हमारी पवित्रतामूलक धार्मिक मान्यताओं की केंचुली भी कितनी आसानी से उतर पड़ती है। समय बीतते ही यात्री पवित्र तप्त कुण्ड में नहाते समय साबुन का प्रयोग भी करने लगते हैं और पहले दिन प्रदर्शित मान्यता के विपरीत अपने अधोवस्त्र भी अब वहाँ नहीं छोड़ते हैं।

धनबल का रुतबा भी बदरीनाथ में कई बार दिखाई पड़ता है। पैसे और पहुँच के बल पर आप न केवल अपनी बारी के बिना बदरी विशाल के दर्शन कर सकते हैं, बल्कि प्राईवेट हेलीकॉप्टर के जरिये सबसे पहले सुरक्षित स्थान के लिए निकल भी सकते हैं।

केदारनाथ-बदरीनाथ की त्रासदी के बहाने उपन्यासकार ने उत्तराखंड में हुए विनाश की तह में जाने का प्रयास किया है। उपन्यास पढ़कर पाठक इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि ऐसी त्रासदियों में कुदरती योगदान कम होता है और आदमी के स्वार्थ वश की गई करतूतों का ज्यादा! इसमें सरकार, अफसर, ठेकेदार, धन्नासेठ, कॉरपोरेट सभी की भूमिका असंदिग्ध है, जिनकी मिलीभगत के बिना पर्यावरण को इस कदर खतरे में डालने और विनाश की प्रक्रिया कभी संभव नहीं हो सकती थी।

लेकिन यह भी सत्य है कि संकट की घड़ी में ही इंसान के भीतर छिपी अकूत जीवनी-शक्ति का प्रकटन होता है। तेरह दिनों तक असंख्य कष्टों और मुसीबतों को झेलकर भी जब दोनों परिवारों को हेलीकॉप्टर में बारी आनी संभव नहीं दिखाई पड़ती तो ये परिवार नौ घंटे का विषम और दुर्गम पहाड़ी सफर पैदल चलकर पार कर जाते हैं।

उपन्यासकार ने हमारे समय के मीडिया की भूमिका का भी विश्वसनीय चित्रण किया है। मीडिया की जरूरत असंदिग्ध है, परंतु यही मीडिया टी. आर. पी. के चक्कर में कई बार खबरों को न केवल सनसनीखेज बना डालता है बल्कि आधारहीन और अपुष्ट खबरों का प्रसारण करने से भी गुरेज नहीं करता है। तीन मिनट में पंद्रह खबरें और उनके विजुअल किस तरह से टी. वी. चैनल परोसकर रख देते हैं, उपन्यासकार ने इसका बहुत ही रोचक, विश्वसनीय एवं यथार्थ चित्रण किया है। यह पूरा विवरण बड़ा ही कॉमिक और ट्रैजिक एक साथ है।

उपन्यास में संजीव-आरती, अमित-सविता, रोहन-शिवांगी, साहिल-श्वेता, अजय-गुरप्रीत, गुजराती अंकल-आंटी, प्रो. अतुल त्रिवेदी, गोपाल नेगी, रामू आदि सभी किादार विश्वसनीय बन पड़े हैं। कथानक, संवाद एवं पात्रों पर लेखक की सही पकड़ है। भाषा में ताजगी व प्रवाह के साथ-साथ चमत्कृत करने एवं चुहलबाजी की शक्ति मौजूद है। उपन्यास का कोई भी प्रसंग ऊबाऊ नहीं है। यह उपन्यास हमें छोटे फलक पर बड़ी चीजों को देखने-जानने-समझने का अवसर देता है।

सम्पर्क-94167-63840

हरीकेश पटवारी की रागनियां

1

सन् 47 मैं हिन्द देश का बच्चा बच्चा तंग होग्या
राज्यों का जंग बन्द होग्या तो परजा का जंग होग्या

जिस दिन मिल्या स्वराज उसी दिन पड़गी फूट हिन्द म्हं
जितने थे बदमास पड़े बिजळी ज्यों टूट हिन्द म्हं
छुरे बम्ब पस्तौल चले कई होगे शूट हिन्द म्हं
पिटे कुटे और लूटे बड़ी माची लूटे हिन्द म्हं
एक एक नंग साहूकार हुआ एक एक सेठ नंग होग्या

कलकत्ता बम्बई कराची पूना सूरत सितारा
गढ़ गुड़गांवा रोहतक दिल्ली बन्नू टांक हजारा
हांसी जीन्द हिसार आगरा कोटा बलख बुखारा
लुधियाणा मुलतान सिन्ध बंगाल गया सारा
भारत भूमि तेरा रक्त में गूढ़ सुरख रंग होग्या

कुछ कुछ जबर जुल्म नै सहगे कुछ कमजोर से डरगे
कुछ भय में पागल होगे कुछ खुदे खुदकशी करगे
कुछ भागे कुछ मजहब पलटगे कुछ कटगे कुछ मरगे
खाली पड़े देखल्यो जाकै लाहौर अमृतसर बरगे
जणों दान्यां नै शहर तोड़ दिए साफ इसा ढंग होग्या

ऊपर बच्चे छाळ छाळ कै नीचे करी कटारी
पूत का मांस खिला दिया मां नै इसे जुल्म हुए भारी
जलूस काढे नंगी करकै कई कई सौ नारी
एक एक पतिव्रता की इज्जत सौ सौ दफा उतारी
जुल्म सितम की खबरें पढ़ पढ़ हरिकेश दंग होग्या

2

जब से दुनियां बसी आज तक ना ऐसा हाल हुआ
हिन्द के लिए बुरा साबित दो हजार चार का साल हुआ

अंग्रेजां नै म्हारे देश का बिल्कुल चकनाचूर किया
लूट लिया धन माल हिन्द का अपणा घर भरपूर किया
ऐसी डाली फूट सगा भाई भाई से दूर किया
बंधी बुहारी खोल बिखेरी कितना बड़ा कसूर किया
रंगा गादड़ बैठ तख्त पर जिन्हां शेर की खाल होया
इस वजह से सत्पुरुषों का बुरी तरह से काळ होया

ऐसा आया इंकलाब कोई उजड़ग्या कोई बसण लाग्या
कोई मरग्या कोई कटग्या कोई भाग्या कोई फसण लाग्या
कोई हारग्या कोई जीतग्या कोई रोवै कोई हंसण लाग्या
किसे का दीवा गुल होग्या किसी कै लैम्प चसण लाग्या
कोई मिटग्या, पिटग्या,कुटग्या कोई लुटग्या कंगाल होया
कोई-कोई जो जबरदस्त था लूट कै मालामाल होया

किसे की लाकड़ी किसे नै ठाई किसे का धन घर धरै कोई
कोई कमजोरा कोई जोरावर कोई डरावै डरै कोई
कहते सुणे लिख्या भी देख्या भरे वही जो करै कोई
अपणी आंखां देख लिया अब करै कोई और भरै कोई
करोड़ों लाश बही दरिया मैं नहरों का जल लाल होया
सरसा की जा ढाब देखिये जमा खून का ताल होया

सतयुग मैं तो मिथुन-मिथुन नै विकट रूप धर मार दिया
त्रेता मैं तुल नै तुल का कर हनन धरण मैं डार दिया
द्वापर मैं भी मिथुन मिथुन नै पकड़ कै केश सिंहार दिया
कळयुग में बिन जंग कुम्भ नै कुम्भ तख्त से तार दिया
अब मकर के मकर हनेगा निश्चय हरिकेश को ख्याल होया
हिन्द हमारा बिना वजह जेर बे अलीफ और दाल होया



हरियाणा के पचास साल:भविष्य के सवाल

❑डा. विजय विद्यार्थी

एक नवम्बर 2016 को हरियाणा ने 50 साल का सफर पूरा किया। इस अवसर को सरकारी और गैर सरकारी संस्थाओं ने पूरे प्रदेश में बड़े हर्षोल्लास के साथ मनाया प्रदेश की साहित्यिक-सांस्कृतिक अभिव्यक्ति की प्रत्रिका 'देस हरियाणा' का 8वां-9वां संयुक्तांक 'हरियाणा के 50 साल क्या खोया क्या पाया' विशेषांक के तौर पर हरियाणा को समर्पित रहा। जिसके केंद्र में खेतीबाड़ी, साहित्य-संस्कृति, समाज, शिक्षा-सेहत, शहर-देहात, लोक गीत-संगीत, खेलकूद और सामाजिक न्याय आदि प्रमुख बिंदू रहे। 'देस हरियाणा' ने 18 नवम्बर 2016 को कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कुरुक्षेत्र में 'हरियाणा के पचास साल : भविष्य के सवाल' विषय पर परिचर्चा का आयोजन किया। प्रो. टी.आर. कुंडू ने इसकी अध्यक्षता की।

परिचर्चा की शुरुआत में 'देस हरियाणा' के संपादक प्रो. सुभाष चंद्र ने कहा कि हरियाणा के पचास साल हमारे सामने बहुत सारे सवाल उठाते हैं। नम्बर वन हरियाणा की छवि जो मीडिया में दिखाई जाती है, क्या वास्तव में धरातल पर है?

परिचर्चा की प्रथम वक्ता प्रो. नीरा वर्मा ने परिचर्चा के केंद्र बिंदू को मद्देनजर रखते हुए कहा कि प्रदेश की सबसे बड़ी चुनौती असमानता है। असमानता की समस्या सबसे बड़ी चुनौती के तौर पर सामने खड़ी है। आज लगभग 15 प्रतिशत लोग इस नंबर वन हरियाणा में बीपीएल में आते हैं। यहां के कई प्रमुख काण्ड गैर बराबरी की दशा और दिशा को दर्शाते हैं। वंचित तबकों के आर्थिक और सामाजिक विकास की गति धीमी है। आर्थिक विकास और सामाजिक विकास विपरीत दिशा की ओर जा रहा है। 'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ' जैसे मिशन का आगाज़ सिर्फ हरियाणा से ही क्यों होता है? यह अपने-आप में एक सोचनीय मुद्दा है।

कृषि वैज्ञानिक प्रो. कुलदीप ढींढसा ने अपने विचार रखते हुए कहा कि हरियाणा की पहचान जवान, किसान और विज्ञान से है। आर्य समाज की मुहिम ने हरियाणा के समाज को जागरूक किया, लेकिन कुछ कुरीतियां समाज में आई हैं। कामचोरी बढ़ी है। खेती से हरियाणा दूर हो रहा है। आज साहित्य और संस्कृति को संजोने की जरूरत है। आदर्श समाज ज्ञान, विज्ञान और साहित्य से बन सकता है।

सामाजिक कार्यकर्त्ता सुरेन्द्रपाल सिंह ने परिचर्चा को आगे बढ़ाते हुए कहा कि हरियाणा के प्रमुख काण्ड संकुचित मानसिकता के प्रमाण हैं, जिन पर सवाल उठने चाहिए। व्यक्ति विशेष की वजह से पूरे समाज को सजा देना कहीं की मानसिकता नहीं है।

प्रो. कृष्ण कुमार ने कहा कि अगर चंद आदमी तरक्की कर जाएं तो उससे समाज तरक्की नहीं कर सकता। तरक्की तो सबके साथ होगी। जब तक समाज को बदलने का नक्शा हमारे पास नहीं है, तब तक समाज का विकास संभव नहीं, इसलिए वैज्ञानिक सोच बननी चाहिए। अंधविश्वासों से समाज आगे नहीं बढ़ता। शिक्षा और स्वास्थ्य के बजट में कटौती देश के लिए ठीक नहीं है। स्वर्ण जयंती के अवसर पर आत्म-मंथन करना जरूरी है।

पत्रकार दीपकमल सहारन ने कहा कि आर्थिक जगत में तो हरियाणा ने जरूर तरक्की कर ली है। आज इसका बजट भी पंजाब से ज्यादा है, लेकिन कुपोषण, गरीबी और दूसरी मामूली चीजों पर कौन सोचेगा। स्वर्ण जयंती के पड़ाव पर हरियाणा को ठहर कर अपने बारे में सोचना चाहिए।

डा. अशोक चौहान ने परिचर्चा में हिस्सा लेते हुए कहा कि आपसी

मेलजोल से ही सौहार्द्र की स्थापना की जा सकती है। सरकारी तंत्र से ही बेहतरी हो सकती है। आज जैविक खेती की तरफ बढ़ने की आवश्यकता है। प्राकृतिक स्रोतों का सदुपयोग करना चाहिए।

श्री आर.आर. फुलिया ने परिचर्चा को आगे बढ़ाते हुए कहा कि जल, जंगल और जमीन के साथ-साथ पशुधन तथा प्रकृति की चिंता हम सबको करनी पड़ेगी।

वी.एन.राय ने कहा कि हरियाणा की छवि विकास की तेज गति से बनी है, लेकिन विकास की तेज गति में असमानता का सवाल सबसे बड़ा सवाल उभरकर हमारे सामने आता है। वैश्वीकरण और विकास के दौर में असमानता और प्रकृति को बचाने का हल नहीं मिल रहा। लोकतंत्र को मजबूत करना जरूरी है।

प्रो. टी.आर. कुंडू ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि अभाव की संस्कृति हरियाणा की संस्कृति रही है। सबसे पहले तो हमें खोया पाया ही निर्धारित करना पड़ेगा। जब विकास होता है, तो विनाश भी होता है। जाति और लिंग इत्यादि की भेदभावमूलक श्रेणियों को छोड़कर मानवीय मूल्यों और सोच को विकसित करना बहुत जरूरी है। सामाजिक रिश्तों में कमी आने से आदमी पशु बन जाता है। इसलिए आज संवेदनशील समाज बनाने की जरूरत है।

इस परिचर्चा का मंच संचालन प्रो. सुभाष चंद्र ने किया। इसमें विभिन्न विभागों के विभागाध्यक्षों, शोधार्थियों, विद्यार्थियों के अतिरिक्त समाज के जिम्मेवार व्यक्तियों और बुद्धिजीवियों ने भाग लिया।

सम्पर्क-98175-54004

रामकिशन व्यास की रागनी

कम्मों- पाकिस्तान नहीं चालूं क्यूं सहम करो धिंगताणा
दरोगा- अमृतसर म्हं रहै नहीं सकती तन्नै पड़े लाजमी जाणा

कम्मों- अमृतसर तैं चलणे का मेरा कती विचार नहीं सै
दरोगा- हिन्द देश म्हं रहणे की कम्मों हकदार नहीं सै
कम्मों- कोण काढ़ दे हिन्द देश तैं के मेरा घरबार नहीं सै
दरोगा- पाकिस्तान बिना तेरी अड़ै बिल्कुल ठहार नहीं सै
कम्मों- कितका पाकिस्तान बण्या मेरा छुटग्या न्हाणा खाणा
दरोगा- क्यूं पछतावै कम्मों गया बख्त हाथ नहीं आणा

कम्मों- कोण सख्श था भारत का जो पाकिस्तान बणाग्या
दरोगा- लन्दन का था चालबाज चर्चिल बेईमान बणाग्या
कम्मों- हिन्दू मुस्लिम लड़ मरग्ये काफी नुकसान बणाग्या
दरोगा- हिन्दू मुस्लिम के वा रद्दों बदल मकान बणाग्या
कम्मों- चर्चिल जैसा चाहिए था गोली गेल्यां मरवाणा
दरोगा- थे नर नार गुलाम हिन्द म्हं था जब राज पुराणा

कम्मों- आपस के म्हं फूट पड़ी प्यारयां के प्यार टूट गये
दरोगा- फूट खिण्डा लन्दन आळे भारत म्हं बहार लुटग्ये
कम्मों- पाकिस्तान हिन्द म्हं इब कोण से हकदार छूटग्ये
दरोगा- पाकिस्तान म्हं जिन्ना हिन्द म्हं वीर जवाहर उठग्ये
कम्मों- पाकिस्तान आळां नै चाहिए हिन्द तैं मेल मिलाणा
दरोगा- जुग पाटण तै श्यार मरै सब जाणै याणा स्याणा

कम्मों- दरोगा जी मैं बुझूं कैसा पाकिस्तान वहां सै
दरोगा- मिस्टर जिन्ना नवाब ब्यास कह मुसलमान वहां सै
कम्मों- के रामकिशन नारनौंदिए कैसा खान-पान वहां सै
दरोगा- गेहूं चावल का खाणा नूण सिन्धां की खान वहां सै
कम्मों- कोण जगह पर छोड़ोगे मन्नै चाहिए पता बताणा
दरोगा- छः नम्बर तम्बु लाहौर म्हं होणा तेरा ठिकाणा

'कम्मो-कैलाश' सांग से

कला को अपने औजार उठा लेने चाहिएं, शायद बारूद भी जरूरी है, जिससे कि चट्टानें तोड़ी जा सकें और युग के उन स्पन्दनशील सप्राण भाव-निर्झरों को मुक्त किया जा सके कि जो उन चट्टानों के नीचे दबे हैं। मनुष्य की मनुष्य के साथ बातचीत शुरू करनी होगी, मनुष्य का समाज के साथ वार्तालाप आरंभ करना होगा। अब समय आ गया है कि हम अतीत के रहस्यात्मक जादुई धुंधले सूत्र-मंत्रों को त्याग दें। यदि विशुद्ध काव्य हमें जीवन ही से पूर्णतः पृथक करता है तो उस काव्य को विशुद्ध रखने की आश्यकता क्या है? हम गोल चारदीवारी को तोड़कर निकल जाएं ओर कूद कर खाइयां लांघ लें। हम स्वगत-भाषण और एकालाप से हटकर वार्तालाप की ओर जायें। निस्संगता से हटकर संघर्ष में योग दें। अलग-अलग टुकड़ों में काम न करके अखण्ड, पूर्ण रचना करें। लोगों की आंखों के सामने हम उन्हीं की गरीबी और दारिद्रय की स्थिति स्पष्ट करें और यदि हो सके तो हम उनकी मुक्ति के और सान्त्वना के शब्द खोज निकालें।

-दोमेनिको कादारेसी

बदलती देह भाषा और पितृसत्तात्मकता

❑टेक चंद

सपना चौधरी इन दिनों चर्चा में है। हरियाणा की यह लोकगायिका अपने गायन से ज्यादा नृत्य को लेकर प्रसिद्ध हो गई है। इतनी कि स्टार का दर्जा हासिल कर चुकी है। सपना चौधरी ने हरियाणा की निर्देशित, तयशुदा देहभाषा को बदल कर रख दिया है।

हरियाणा में मनोरंजन के मुख्य साधन सांग और रागनी रहे हैं। रागनी के प्रति दीवानगी इस हद तक रही है कि सर्दी के मौसम में भी लोग रात-रात भर कंबल, चद्दर ओढ़े रागनी सुनते हुए दिन कर देते थे। यहां तक कि रागनी कंपीटीशन को लोग सौ डेढ़ सौ, दो सौ किलोमीटर दूर तक जाकर भी देखते-सुनते थे। खेती-किसानी से थके लोगों को इन रागनियों में मनोरंजन के साथ-साथ ऐतिहासिक, पौराणिक नैतिक किस्से-कहानियां भी सुनने को मिलते थे। इन रागनी गायकों का हरियाणा क्षेत्र में वैसा ही सांस्कृतिक महत्व रहा है जैसा जापान में सूमो पहलवानों का।

इन गायकों की टोलियो में पुरुष ही होते थे। इस स्थिति में थोड़ा परिवर्तन तब आया जब लगभग 1990 के दशक में इनकी टोली में मीनू चौधरी, सरिता चौधरी नामक स्त्रियों का प्रवेश हुआ। सूट सलवार पहनकर और सिर पर पल्ला लेकर गाती इन स्त्रियों ने जल्द ही अपना आधार निर्मित कर लिया।

1990 के बाद मनोरंजन के साधन बढ़े तो रागनी गायकों, सांग कलाकारों से जनता की अपेक्षाएं भी बढ़ गई। प्रारंभ में घूंघट-पल्ले में स्टेज पर आई मीनू चौधरी और सरिता चौधरी ने घूंघट हटा दिए और सिर पर पल्ला ले, चेहरा नुमाया कर गाने लगीं। (इस सूची में अन्य नाम भी शामिल किए जा सकते हैं) चेहरे पर भाव-भंगिमा दिखाई देने लगी। इतने पर ही बस ना हुई। सैंकड़ों-हजारों दर्शकों-श्रोताओं की मांग, ताली, प्रशंसा और होये! होये के चलते द्विअर्थी संवादों, चुटकलों का प्रवेश इन राग-रागनियों में हो गया। मेरे विचार से हरियाणा की रागनी भारत भर में ऐसी विद्या है, जिसमें खूब ताकत, स्टेमिना, हाजिर जवाबी और साहस की जरूरत होती है। सैंकड़ों, हजारों की भीड़ जिसमें पुरुष ही होते हैं। उनको बांध कर रखना बहुत बड़ी चुनौती होती है। अपने मनपसंद गायकों, कलाकारों को भी भीड़ कब 'हूट' कर दे पता नहीं। यहां भीड़-तंत्र काम करता है। वाह! वाह! और होये! होये! कब हाय! हाय और हुई-हुई में बदली जाए कहना कठिन है।

ऐसे में इन स्त्रियों ने बातों और आवाज को रसीला तथा शरीर को लचीला बनाकर नाचना शुरू कर दिया। जनता खुश हुई। फैन बनने और बढ़ने लगे। इन टोलियों, मंडलियों की मांग बढ़ने लगी, जिनमें स्त्रियां होतीं। दर्शकों की वाह! वाह! और कलाकार स्त्रियों के नाच-लोच तथा अदाओं में सापेक्ष सम्बन्ध स्थापित हो गया। स्टेज पर पुरुष और स्त्री के संवादों में द्विअर्थी शब्दों, मुहावरों, चुटकलों की प्रधानता होने लगी। नतीजा यह हुआ कि पुरुष दर्शक व श्रोता तो बढ़ गए, लेकिन स्त्री-दर्शकों व श्रोताओं की तादाद कम होते होते लगभग नगण्य और फिर खत्म हो गई। अब पुरुष खुलने लगे और वे गायक कलाकार स्त्री से भी ऐसी मांग करने लगे। माहौल बदल गया।

इस बदले परिदृश्य में दो एक साल पहले प्रकट हुई सपना चौधरी। इस गायिका ने हरियाणवी रागनी गायन के मानदण्ड बदल कर रख दिए। ऐसा वह कर पाई देहभाषा Body Language बदल कर। वह नाचती है सूट सलवार पहन कर, सिर पर पल्ला लेकर, नशीली मादक भाव-भंगिमाओं और चपल-चंचल देहयष्टि से। ऐसा कि देखने वाले नोटों की बारिश कर देते हैं। इंटरनेट, यू-ट्यूब पर उसकी ढेरों वीडियो हैं। उसकी मांग दिनों दिन बढ़ती जा रही है।

अब सब जगह सपना चौधरी नाच-गा रही है। मंदिर से चौपाल तक। आंगन से मैदान तक, मोबाइल से दिलों दिमाग तक सपना यथार्थ बनी हुई है। इसका बड़ा कारण उसकी बिंदास और मस्त नृत्य शैली है। हरियाणा के खाप पंचायत वाले माहौल में शक के आधार पर ही किसी को जिंदा जलाया और मारा जाता रहा है। जहां घूंघट छोटा होने पर औरतों को जानवरों की तरह धुन दिया जाता हो, लड़कियों को आंचल संभाल कर, नज़रें झुकाकर कंधे दबाकर, छोटे डग भरकर, मुंह बंद कर चलने-रहने की हिदायतें दी जाती रही हैं। लड़कियों और औरतों की भाषा से लेकर देहभाषा तक पितृसत्तात्मक समाज ने प्रतिबंधित कर नियंत्रण में कर रखी है। पिता, दादा से लेकर चाचा, ताऊ, चचेरे-ममेरे बड़े भाई यहां तक कि निखट्टू नालायक छोटे भाई भी पढ़ी-लिखी बहन को डांट-फटकार व मार-पीट सकता है, यदि लड़की की देहभाषा में परिवर्तन नोट कर लिया जाए। लड़की की देहभाषा में प्रेम, स्वच्छन्दता और स्वतंत्रता के निशानों की बू भी आए तो लुच्चे से लुच्चे, निठल्ले से निठल्ले, दिनभर ताश पीटते, बीड़ी शराब पीते पड़ोसी, रिश्तेदार भी लड़की की खुलती देहभाषा पर इल्जाम, प्रतिबंध और लांछन लगाने से नहीं चूकते।

इसके एकदम उलट दूसरी तरफ यही समाज सपना चौधरी का सपना दिलों में पाले हुए है, क्योंकि सपना चौधरी ने हरियाणा की निर्देशित, तयशुदा देहभाषा को बदल कर रख दिया है। वह नाचती है, खुलकर नाचती है। कंधे तानकर, हाथ उठाकर पांवों को खोलकर नाचती है। पीठ जनता की तरफ कर अंगड़ाई लेकर नाचती है, सीना तानकर, सीना कंपन कर, सीना थिरकाकर नाचती है। बदन लहराकर, बल खाकर, मचलकर नाचती है। उसका चेहरा हंसता, भाव देता, उल्लासमय चितवन लिए हुए है। वह शोख चंचल अदाओं से आंखें मटकाकर सम्मोहित सा कर हजारों की भीड़ पर बिजलियां गिराकर नाचती है। उसकी मादक भंगिमा भीड़ को उत्तेजित कर देती है। वह लोगों में उत्सवधर्मी चेतना का संचार करती है। कभी-कभी वह गाती भी है, ज्यादातर डीजे पर बज रहे गानों पर नाचती है। लिपसिंग करती है। कई बार तो पुरुष स्वर पर भी लिपसिंग करके नाचती है। पुरुष स्वर पर भी उसके वही नाज-नखरे वाले हाव-भाव रहते हैं। लोग उसी के लिए जुटते हैं। सब जगह उसकी जबरदस्त डिमांड है।

बढ़ती हुई माग का ही नतीजा है कि सपना की बाढ़ सी आ गई है। छोटी सपना सपना जैसी एक और सपना नई सपना की जमात सी खड़ी हो गई है। अब एक नहीं अनेक सपना हैं। घर परिवारों में शादी-ब्याह में बजने वाले डीजे पर छोटी बच्चियों से लेकर युवतियां, नव ब्याहता और अन्य स्त्रियां भी सरे-समाज सपना की नकल कर नाचती हैं और रिश्तेदार प्रशंसा करते हैं, नोट वारते-लुटाते

हैं। देहभाषा निरंतर बदलती, खुलती और उत्तेजक होती जा रही है। मगर मांग है कि बढ़ती जा रही है। ऐसे में पुरुष रागनी गायक हाशिये पर खिसक गए हैं। एक मायने में स्टेज से उतर गए हैं और जनता के दिलों से भी। आज लोग उन्हें याद भी नहीं करते हैं, क्योंकि यादों में है कमर लचकाकर नाचती सपना और उसकी नकल कर कूद-कूद नाचती, भर बंधा-यौवन वाली नयी-नयी नायिकाएं।

एक अदद सपना ने देह भाषा बदली तो सामंती पितृसत्तात्मक व्यवस्था हाशिये पर चली गई। इसके और क्या परिणाम होंगे यह तो भविष्य ही बताएगा। कयास लगाए जा सकते हैं कि क्या पुरुष रागनी गायक संग्रहालय की वस्तु हो जाएंगे? क्या सपना के जलवों पर नोट बरसाता, आहें भरता हरियाणा का बच्चा-बूढ़ा और जवान तबका स्त्रियों के प्रति लोकतांत्रिक हो पाएगा? क्या सपना को सराहते और अन्य बच्चियों, स्त्रियों को बरजते, डपटते उनके व्यवहार का दोहरापन समाप्त होगा?

सवाल और स्थितियां अनेक हैं, बहरहाल! जिस रागनी को लेकर सपना चौधरी पर एससी/एसटी कानून के तहत मुकद्दमा दर्ज किया गया, मेरे विचार से उस रागनी में किसी भी प्रकार का दलित उत्पीड़न नहीं है। उसमें दलितों के पढ़-लिखकर तरक्की कर जाने तथा अन्य जातियों के परम्परागत काम धंधे ठप्प हो जाने का भाव है। शिक्षा व्यवस्था ने दलितों को तरक्की दी है तो अपने काम धंधो से चिपके लोग बाज़ार की भेंट चढ़ गए। 'पढ़ लिख कै तरक्की करगी, बावली जात चमारां की' पंक्ति को व्यंजना में लें तो बात स्पष्ट हो जाती है कि सारा समाज जिस जाति को बावला समझता था, वह तो पढ़-लिख कर तरक्की कर गई और जो ज्यादा समझदारी दिखाते हुए पुश्तैनी धंधों के सहारे रहे, डर के मारे कदम ही ना बढ़ाया, वर्ण व्यवस्था में वर्णित गर्वित भाव बोध से मुगालते में रहे वो बदलते दौर में जो बाज़ार का है, में बरबाद हो गए। जिन्हें सब बावली जात कहते हैं, उनकी समझ देखो, शिक्षा का चुनाव किया और जो चतुर बनकर पुरोहितवादी व्यवस्था में उनकी गति देख लो। लगता है इतना स्पष्टीकरण काफी होगा। फिलहाल सपना चौधरी बेखटके नाच-गा रही है। उसकी हवा है और रागनी गायकों की टोलियां इस हवा में उड़ती जा रही हैं। साथ ही पुरुष वर्ग का चरित्र भी स्पष्ट से स्पष्टतर होता जा रहा है।

सम्पर्क-09650407519

मुंशी राम जांडली की रागनियां

1

दोनों दीन लड़न लागे, रंग-ढंगे की होगी त्यारी।   -टेक
गया बदल जमाना पहले था, के दोष-जोश होग्या भारी।।

शाहीवाल पिशावर में, रोळे-दंगे का जिकर होया
सरगोधा मुल्तान कराची, लाहौर में बिघ्न का बीज बोया।
बनु और कोहाट लायलपुर, खास जिनाह नै काम खोया
नाभा और संगरूर पटियाला में, ना मुसलमान मिल्या टोया।।
हिसार अम्बाला जींद अमृतसर, रोहतक में जंग होया भारी।
पंजाब फरंटीयर सिंध कराची में, जनता भड़क गई सारी।।1।।

देशी तोप आमीशन देशी, सब हथियार होये
मैग्निज पिस्तौल बम्ब, टोमीगन कई हजार होये।
सफा जंग तलवार कुल्हाड़ी, भाले बेशुमार होये
सेल टाकुबे बर्छी लेकै, कटण-मरण नै त्यार होये।।
एक धावा बोल दिया, बीरां तक लाठी ठारी।
उसनै भी माणस मार दिया, कदे मुस्सी तक भी ना मारी।।2।।

गामां उपर गाम चढ़े, कोई लिहाज मुलाजा रहा नहीं
मारो-मारो पुकारण लागे, करो समाई कह्या नहीं।
सबनै लुट्या माल बिगाना, छिदा माणस गया नहीं
याणे-स्याणे मर्द-लुगाई, गच्चो कटगे दया नहीं।।
ढूंढ छोडकै भाजण लागे, होगी भय की बिमारी।
घणे मरगे उत रकम के भूखे, हुक्म था सरकारी।।3।।

मुसलमान हिन्दू की पगड़ी, बदली की जाण रही कोन्या
रंग बदलग्या दुनिया का, पहले कै सी बाण रही कोन्या।
मारै भाला पार काढदे, खींचा ताण रही कोन्या
इस हमले में कायर मर्द की, कोई पिछाण रही कोन्या
गुरु हरिश्चंद्र अफ्सोस करै, क्युं बरबादी होगी थारी।
नगर जांडली छोटी में, कहै मुंशीराम वेदाचारी।।4।।

2

नए चौधरी धन के खबकू, बहुत मरे ढंग देख लिया -टेक
शर्म लिहाज का काम नहीं, करया ख्याल रंग देख लिया।।

दोनों कौम लड़न लागी, जब जत्थ्यां में दुनिया डटगी
बंदूक तोप बर्छी भाले तैं, काफी दुनिया मर कटगी।
तुब्यां ज्युं ल्हास पड़ी, घणे होगे ढेर शान घटगी
सौ-सौ मुर्दे सड़ैं खेत में, गजब होया घाणी पटगी।।
मुसलमान हिन्दू मरगे, दो दिनों का जंग देख लिया।
जंग-ए-आलम जबर जंग, और दंगे तै दंग देख लिया।।1।।

सेल टाकुबे बर्छी भाले, सफा जंग तलवार दिखे
याणे स्याणे बच्चे रोवैं, गळ पै चले कटार दिखे।
किलकी मारै पड़ै आग में, जळगे कई हजार दिखे
लाखां तक गिणती कोन्या, मरगे बेशुमार दिखे।।
मिटगे नाम गए दुनिया तैं, रंग में भंग देख लिया।
भुखे मरगे मरे कटकै, सब कुणबा तंग देख लिया।।2।।

होश करो सुत्ते जागो, आज कुल आजादी हो रही सै
सब देशां में खबर पटी, आज घर-घर शादी हो रही सै।
फेर भी खोटे काम करो, थारी क्यूं बर्बादी हो रही सै
सब भाईयों का राज पंचायती, हिन्द की गद्दी हो रही सै।।
गांधी महात्मा आजाद होवै, आज गिरफ्तार संग देख लिया।
ब्रिटिश विलायत भाज गए, इंग्लिश जाबक तंग देख लिया।।3।।

आजादी के प्रचार होवैंगे, जै आजादी का गाणा हो
सत् शिक्षा के भजनी होंगे, चाहे बोदा नया पुराणा हो।
रतिया फतेहाबाद टोहाना, नहले में को आणा हो
नगर जांडली चिट्ठी भेजो, जै मुंशीराम बुलवाणा हो।।
महजबी झगड़े छोड़ दियो, फेर रहा नहीं भंग देख लिया।
आईएनए आजाद फौज में, सबका एक अंग देख लिया।।4।।

विभाजन की यादें

गोपाल राम अरोड़ा से *अंशु मालवीय की बातचीत*

श्री गोपाल राम अरोड़ा, हिसार, हरियाणा में रहते है। सरकारी नौकरी से रिटायर हुए कई बरस बीत गए। पत्नी और बच्चों के साथ रहते हैं। हिसार में एक ख़ामोश-सी सुबह उनसे बात हुई। जब वक्त रुक गया था और पुरानी यादों के स्याह-सफेद साये रूबरू हुए थे। ये यादें थीं मुल्क की तक़्सीम की। सुनते-सुनते यह महसूस हुआ कि किस तरह विभाजन ने एक मिले-जुले समुदाय को टुकड़े-टुकड़े कर दिया। जब हम बांटने पर आते हैं तो बंटवारा कभी रूकता ही नहीं। वह नए-नए आधार तालाश लेता है। मुल्क का बंटवारा किसी न किसी रूप में आज भी हमारी ज़ेहनियत और समाज पर भारी है। भूलना मुमकिन नहीं और याद करना तकलीफ देता है लेकिन, याद करना जरूरी है ताकि बंटवारे से उबर कर सांझे को याद किया जा सके। वे बोलते रहे मैं नोट करता रहा। जब बातें खत्म हुई तो मैंने पूछा कभी झंग (पाकिस्तान) जाने का दिल करता है? नतीजा-पासपोर्ट की तैयारी चल रही है। पेश है उनकी यादें, उन्हीं की ज़बानी।

1947 में चौथी क्लास में पढ़ता था। जुलाई-अगस्त में दो महीने की छुट्टियां हुई थी। आज पीछे मुड़कर देखता हूं तो सोचता हूं कि हिंदुस्तान-पाकिस्तान कैसे बना? मेरे पिताजी तीन भाई थे। मेरे पिताजी की किरयाने की दुकान थी। ताऊजी हिन्दू बिरादरी में चौधरी माने जाते थे। उनकी मुसलमानों में भी अच्छी पैठ थी। दो महीने की छुट्टी हुई तो ये बताया गया कि हिन्दुस्तान-पाकिस्तान बन रहा है। पहले की तरह सब सोच रहे थे कि दंगा होगा और सब शांत हो जाएगा, सब अपने-अपने घरों में चले जाएंगे। हमारे घर के सामने एक किलेनूमा घर था। एक दिन सभी हिन्दू बिरादरी उस घर में इकट्ठे हुए। हमारे गांव-हवेली बहादुरशाह के मुसलमान मुखिया के ताऊजी से बहुत अच्छे संबंध थे। उन्होंने ताऊजी से बताया कि हो सकता है आज दंगाई आएं। हम जहां रह रहे थे, वहां कढ़ाहों में पानी गर्म किया, ईंटें इकट्ठी कर ली। छत की दीवार पर ईंटें जमा दी गई, परन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ। गांव के मुसलमानों ने दंगाई भीड़ को गांव के बाहर से ही भगा दिया।

एक दिन ऐसा आया कि हमने यहां से जाना है। घर में जिसके पास जो कुछ था, खाने-पीने का, इकट्ठा किया-हलवा बन रहा था हमारे घरों में वहीं पर रोटियां बनाई गईं-भौज जैसा। लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ कि हमें भी जाना है। दो-चार दिन बाद फिर उसी तरह हमला करने की कोशिश हुई। कुछ लोगों ने कहा कि अगर आप मुसलमान बन जाएं तो आप पर हमला नहीं होगा। गांव के मुसलमान भी आए। एक हिन्दू भाई ने मुसलमान होना स्वीकार कर लिया। वो अपनी बीवी को लेकर किले से नीचे उतरने लगा। उसके बड़े लड़के को इस बात की भनक पड़ी। वो उनके आगे आकर खड़ा हो गया। उसकी बाप के सामने तो कुछ नहीं चली, लेकिन कहा 'मां को नहीं जाने दूंगा।' लड़का 13-14 साल का था, नाम था अमरनाथ। उसका बाप मस्जिद में गया अकेला मुसलमान बनने।

आसपास के गांव की भी सूचनाएं आती रहती थीं, जहां-जहां भी हमले होते थे। उन सबकी सूचना मिलती रहती थी। जिस गांव में हमारी मौसी रहती थी उस गांव पर भी हमले होने का अंदेशा था तो हिन्दुओं ने अपनी पत्नियों, बच्चियों को मार दिया और सिर पर कफन बांध कर निकले। मौसी की सास ने अपने किसी पोती या बहू का सिर कलम करने से इन्कार कर दिया, लेकिन उन सबको ज़हर पिला दिया। सबको उल्टी आ गई और सारी बहुएं और बेटियां बच गई। इतने में पता चला कि हिन्दू मिलिट्री आ गई, इसके साथ-साथ हमारे गांव में भी मिलिट्री आ गई। हम सब अपने-आपको सुरक्षित महसूस करने लगे।

मिलिट्री ने आदेश दिया कि आप लोगों को यहां से चलना है। आप जो कुछ उठा सकते हो उठा लीजिए। हमारे ताऊजी चौधरी बिशन दास वहां पर गुरुद्वारे में गए। ग्रंथ साहिब की एक बीड़ छोड़कर बाकी सभी बीड़ों को पास ही एक नहर हवेली प्रोजेक्ट में प्रवाहित कर दिया।

वो दिन आ गया। हमारे लिए ट्रक तैयार हुए रामलीला ग्राऊंड में। सभी लोग जमा होने लगे। उनको ट्रकों में भरकर भुंग मिधयाना इंडस्ट्रियल एरिया भेजा जाने लगा। हमारे परिवार वाले भी ट्रकों पर चढ़ने लगे, लेकिन किसी भी ट्रक में हम सारे नहीं बैठ सके। जिस ट्रक में मैं था, अपने परिवार से अकेला था। ट्रक मिधयाना पहुंचे। मां-बाप ने बच्चों को संभाला। वहां कारखानों में जिसको जगह मिली, वहीं उसने डेरा डाल दिया। एक दिन घूमते हुए हमें एक बड़ी दरी मिली। हम उसको दिन में बिछाते थे और रात को तंबू बना लेते थे। वहां रोजाना दरबार साहब का प्रकाश होता था। मिलिट्री की तरफ से आटा-दाल मिल जाता था। हम तकरीबन एक महीना रहे। एक दिन पता चला कि आज गाड़ी बाहर जा रही है। जो सामान हमारे पास था, उसे लेकर कूच किया।

दुनिया मेले की तरह जा रही थी। मेरे पिता के सर पर सामान था। मुझे मेरी बहन जो केवल ढाई साल की थी सौंप कर मेरे मम्मी-पापा आगे बढ़ गए। मम्मी-पापा आंखों से ओझल हो गए। हम दोनों रोते-रोते आगे बढ़ रहे थे। इतने में पिताजी वापिस आए, उन्होंने मेरी बहन को उठाया, मुझे उंगली से लगाकर मां के पास वापिस आ गए। इतने में मेरे ताऊजी और चाचा का परिवार दादी समेत मिधियाना स्टेशन पर इकट्ठा हो गए। गाड़ी आई। मम्मी, पापा, चाचा, चाची सबने गाड़ी में सामान रखना शुरू कर दिया। गनीमत यह रही कि हमारे तीनों परिवार एक ही डिब्बे में चढ़ गए। कैंप से चलने से पहले काफी सारी रोटियां पकाकर जमा कर रखी थीं।

इतने में मुस्लिम मिलिट्री आई। उसने हमारी गाड़ी का चार्ज संभाला। साथ में चार गोरखे थे। गाड़ी चल पड़ी। स्टेशनों पर रूकती चलती, एक जगह जंगल बियाबान में खड़ी हो गई। सवेरे का टाइम था। दोपहर होने को आ गई, गाड़ी नहीं चली। लोगों के पास पीने को पानी नहीं था। पास में एक छोटा नाला बह रहा था। उसमें से पानी भरकर इकट्ठा कर रहे थे। दोपहर बाद उन चारों गोरखों ने गाड़ी चलाने के लिए स्कीम बनाई। एक गोरखा इंजन

में, दूसरा गार्ड के पास, बाकी दोनों गाड़ी की छत पर चढ़ गए। असल में गाड़ी को इसलिए रोका गया था, ताकि उस पर हमला हो सके। दूर से लोग आते हुए दिखे। गार्ड और इंजन वाले गोरखों ने...गार्ड और इंजन ड्राइवर को गाड़ी चलाने का आदेश दिया। पहले उन्होंने इंकार किया, लेकिन जब मिलिट्री ने बंदूकें तान ली तो गाड़ी सरपट दौड़ने लगी। यह सितम्बर-अक्तूबर का कोई समय रहा होगा।

रात में हम बच्चे सो गए। इधर सूरज निकला तो हमारी जाग खुली। अटारी से पहले कहीं गाड़ी रूकी थी। देखा कि चारों तरफ लाशें ही लाशें पड़ी हैं। इतने में हमने भारत की धरती पर प्रवेश किया। हिन्दुस्तान में रेलवे के किनारे-किनारे लाशों के ढेर पड़े थे। ऐसा मालूम होता था कि हमारे आने से पहले भारत और पाकिस्तान में कत्लेआम हुआ था। भारत में प्रवेश करते ही भारत माता की जय के नारे लगे। और हम यह सोच रहे थे कि अब हम बिल्कुल सुरक्षित हैं। गाड़ी अटारी स्टेशन पहुंची और इसके बाद अमृतसर स्टेशन पहुंची। हमारे तीनों परिवार अमृतसर स्टेशन पर उतरे। हमें पता चला कि हमारे गुरुजी भी यहीं हैं। अमृतसर में उनकी एक धर्मशाला थी। उसी धर्मशाला में हम भी चले गए। मेरे नानाजी (हमारे नाना पटवारी थे) भी वहीं पर आए, क्योंकि मेरी नानी और मेरे दो मामा भी हमारे साथ थे। जब हमारे नाना आए उससे पहले हमारी नानी को कोई घातक बीमारी थी। वहीं पर रहते हुए हमारी नानी की मौत हुई।

भारत के विभाजन से पहले सभी सरकारी नौकरी वालों से ऑप्शन मांगा गया था कि वो भारत में रहना चाहते हैं या पाकिस्तान में। नाना ने भारत सरकार का ऑप्शन दिया था और उन्हें भिवानी तहसील में पटवारी लगा दिया गया। अमृतसर से हमें वो भिवानी ले आए, जहां हमें मकान अलाट था। हमारे नाना जी मेरी मम्मी, पिताजी समेत हमें भिवानी ले आए। हमारे ताऊजी और चाचाजी कुरुक्षेत्र कैंप में चले गए। भिवानी आने पर मेरे छोटे मामा को माता निकली और उसकी मौत हो गई। एक दिन मास्टर जी हमारे घर आए वो सर्वे कर रहे थे कि किस बच्चे ने किस कक्षा तक पढ़ाई की है। बच्चों के नाम लिखकर उन्हें स्कूल में भेजा जाए। हमारी जमीन और मकान की टेम्परेरी अलाटमेंट भिवानी तहसील में ही चांग में हो गई। वहां हमारे चाचा-ताई को भी मकान अलाट हो गया। चाचा-ताऊ भी वहीं आ गए। हमने चौथी पास की और पांचवीं में हमारा दाखिला चांग में हो गया। ये अप्रैल 1948 की बात होगी। भारत आकर पिताजी काम तलाश कर रहे थे। उसी बीच एक जंगल की नीलामी निकली थी। पिताजी ने जंगलात में काम करना शुरू कर दिया। काम चल निकला।

आने के बाद झंग से कोई सम्पर्क नहीं रहा। 15-20 साल पहले कोई व्यक्ति आया था हमारे गुरु जी के पास तभी उसके पास रशीदपुर गुरुद्वारे के मेन गेट की फोटो देखी थी। एक बार जाने का तो मन करता है। हमारा गांव हवेली बहादुरशाह-बड़ा गांव था। वहां हाईस्कूल था, अस्पताल था। पचास-पचास फीसदी हिन्दू-मुसलमान की आबादी थी। वो वहां पर भाईचारे में रह रहे थे। वहां कोई ऐसी भेदभाव की बात नहीं थी। मुझे अब भी गांव याद है। वहां हमारी 13वीं पीढ़ी वाले पूर्वजों की समाधि है चौगिदा में। हमारे गांव में आनंद परिवार के अलावा कोई वहां की मिट्टी छू नहीं सकता था। सब याद है।

•

सम्पादक के नाम पत्र

(देस हरियाणा अंक 8-9 में 'शख्सियत' कालम में सेठ छाज्जूराम के बारे में लेख प्रकाशित किया था। जिसमें प्रस्तुत तथ्यों पर उदय चे ने आपत्ति जताते हुए पत्र लिखा। पत्र का अंश यहां दे रहे हैं।)

सम्पादक महोदय,

मै लम्बे समय से 'देस हरियाणा' पढ़ता आ रहा हूं। आपकी पत्रिका ने बहुत हद तक प्रगतिशीलता के पैमाने को बनाये रखा। साम्प्रदायिकता के खिलाफ, दलित, महिला, मजदूर, किसान उत्पीड़न के खिलाफ व मजदूर-किसान की समस्याओं को पत्रिका ने बखूबी उठाया है। लेकिन आपकी पत्रिका ने ऐसे लेखों को भी जगह दी है जो प्रगतिशीलता के एकदम विपरीत है।

पिछला अंक जो स्पेशल हरियाणा के 50 साल पूरे होने पर निकाला गया। उसमें हरियाणा के प्रत्येक क्षेत्र खेती से लेकर मजदूर-किसान-महिला के बारे में, आजादी के आंदोलन के बारे, खेल के बारे में लेख प्रकाशित किये गए। वहीं एक लेख 'हरियाणा की शख्सियत' के नाम से प्रकाशित किया गया। जो सेठ (चौधरी) छाज्जूराम के बारे में था।

लेख में बताया गया कि जब भगत सिंह सांडर्स को मारने के बाद दुर्गा भाभी के साथ लाहौर से कलकत्ता पहुँचे तो उनको चौधरी छाजूराम ने अपनी कोठी पर शरण दी। उन्होंने भगत सिंह को ढाई महीने अपनी कोठी पर रखा। लेकिन भगत सिंह जब सांडर्स को मारने के बाद लाहौर से कलकत्ता गये तो चौधरी छाजूराम की कोठी पर वो सिर्फ 4 से 5 दिन रुके। उन दिनों भगत सिंह के ग्रुप की साथी सुशीला दीदी छाजूराम के बच्चों को ट्यूशन पढ़ाती थी और रहने के लिए उनको कोठी में एक कमरा मिला हुआ था। सुशीला दीदी ने छाजूराम की पत्नी से कहा कि मेरे रिश्तेदार कलकत्ता घूमने आ रहे है क्या मैं उनको कुछ दिन मेरे पास ठहरा सकती हूँ। छाजूराम की पत्नी ने उनको इजाजत दे दी। भगत सिंह 4 से 5 दिन वहाँ ठहरे।

ये मनघंड़त कहानी मैं लोगों से लम्बे समय से सुनता आ रहा हूँ। भिवानी (हरियाणा) में एक चौक पर चौधरी छाजूराम की स्टेचू लगी हुई है वहाँ भी ये कहानी लिखी हुई है।

लेकिन आपकी प्रगतिशील पत्रिका ने जब इस झूठी कहानी को प्रकाशित किया। तो मैं अंदर से हिल गया।

उदय चे, सम्पर्क-85296-69491

घृणा के देश के नये-नये पथ-पगडंडियां मेरे सामने खुलती गईं

हीरानंद सच्चिदानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

विभाजन की त्रासदी से उपजे संकट का अनुमान आसानी से इसी बात से लगाया जा सकता है, कि अज्ञेय जैसे 'अपने से बाहर न निकलने वाले' कवि ने इस विषय पर सोलह कविताएं 'मिरगी पड़ी', 'ठांव नहीं', 'रूकेंगे तो मरेंगे', 'मानव की आंख', 'गाड़ी रूक गया', 'हमारा रक्त', 'श्रीमद्धर्मधुरंधर पंडा', 'कहती है पत्रिका', 'जीना है बन सीने का सांप', 'पक गयी खेती', 'समानांतर सांप' जिसके सात भागों में तथा पांच कहानियां 'शरणदाता', 'लेटर बक्स', 'मुस्लिम-मुस्लिम भाई-भाई', '-रमंते तत्र देवता', 'बदला' लिखी हैं। अज्ञेय ने स्पष्ट किया है कि इन कहानियां और कविताओं की विषयवस्तु सच्ची घटनाओं पर आधारित हैं, लेकिन अपने लेखकीय कौशल का प्रयोग करके उन्होंने विभाजन की त्रासदी को बहुत ही रचनात्मक ढंग से अज्ञेय ने प्रस्तुत किया। एक व्यक्ति की आंखों में अथाह घृणा को इन रचनाओं का प्रेरणा स्रोत बताते हुए उन्होंने लिखा कि

''अक्तूबर 1947 के आरम्भ में दिल्ली जाने के लिए स्टेशन गया, तो पुल पार कर प्लेटफारम पर उतरते हुए सीढ़ियों पर पश्चिमी पंजाब के एक परिवार से मुठभेड़ हो गई। सबसे आगे पुरुष सिर झुकाए चल रहा था, पीछे स्त्री और दो बच्चे। मेरे ठीक सामने वे चढ़ रहे थे, मैं उतर रहा था। मेरे सामने पहुंचकर उस आदमी ने जैसे जान कर चौंक कर मुंह उठाकर मेरी ओर देखा। हमारी आंखें मिलीं तो मैं चौंका, क्योंकि सहसा संचित हो मानेवाली उतनी घनी भय-मिश्रित घृणा मैंने कभी किसी और आंखों की जोड़ी में नहीं देखी। यह भी है 'मानव की आंख'! उसने शायद मुझे मुसलमान समझा था, क्योंकि मैं पाजामा पहने था और यहां का 'हिन्दू पहिरावा' धोती है।' वह स्वयं सलवार पहने था, यह और बात है!'' इसी संबंध-सूत्र से खिंचा हुआ मेरा मन पहुंचा उससे सप्ताह भर पहले की घटना की ओर- सितम्बर के अंत में मैं ढाका गया था। वहां शहर घूमने की इच्छा प्रकट करने पर लोगों ने मुझे हिंदू मुहल्लों में घूमने को मना किया क्योंकि मैं पाजामा पहनता हूं और मुसलमान समझा जाऊंगा और मुसलमानों के मुहल्लों में जाने से इसलिए मना किया कि मैं लंबा-चौड़ा-गोरा होने के कारण पंजाबी मुसलमान समझा जाऊंगा और पूर्वी पाकिस्तान के लिए पश्चिमी पाकिस्तानी असह्य हो रहे हैं। यह भी कहा गया कि हिंदू तो घृणा से मुह फेर कर ही रह जायेंगे, ढाका के मुसलमान छुरा भोंकने में दक्ष हैं और उन्हें बहुमत के कारण कोई भय भी नहीं। मैंने दोनों ही परामर्शों की उपेक्षा की और इसप्रकार दोनों की सच्चाई का अनुभव कर सका। छुरा तो कहीं न भोंका गया पर यह तो कई जगह हुआ कि मेरे गुजरने के बाद लोगों ने दबी किंतु घृणा से छमकती हुई आवाज में कहा, 'पांजाबी!'

मश: मन और पीछे को चलता गया - सन् 1946 का सीमा प्रांत - अबटाबाद-कोहाट-पेशावर, अखबारों की सुर्खियां, नारे, रेल की यात्राएं, सैनिक अधिकारियों की बातचीत, जनता की उक्तियां, साम्प्रदायिक संस्थाओं की बैठकें - और मन का अनुसरण करते हुए घृणा के देश के नये-नये पथ-पगडंडियां मेरे सामने खुलती गईं।''

कथा में तो हिन्दी के अन्य महान लेखकों ने भी इसे अपनी रचनाओं का विषय बनाया। अज्ञेय ने कविता के रूप में प्रतिक्रिया दी थी। साम्प्रदायिकता की समस्या ज्यों ज्यों यह समस्या विकराल और विकट होकर उलझती जा रही है, त्यों त्यों हिन्दी रचनाकार इस पर रचनाएं कर रहे हैं। -सम्पादक

मिरगी पड़ी

मिरगी का दौरा है।
चेतना स्तिमित है।
किंतु कहीं भी तो नहीं दीखती शिथिलता-
तनी नसें, कसीं मुट्ठी, भिंचे दांत, ऐंठी मांस-पेशियां-
वासना स्थगित होगी किंतु झाग झर रहा है मुंह से!

आज जाने किस हिंस्र डर ने
देश को बेखबरी में डस लिया!
संस्कृति की चेतना मुरझ गया!
मिरगी का दौरा पड़ा, इच्छा शक्ति बुझ गयी!
जीवन हुआ है रुद्ध, मूर्छना की कारा में -
गति है तो ऐंठन है, शोथ है,
मुक्ति-लब्ध राष्ट्र की जो देह होती है - लोथ है -
ओठ खिंचे, भिंचे दांतों में से पूय झाग लगे झरने!
सारा राष्ट्र मिरगी ने ग्रस लिया है!

कहती है पत्रिका

कहती है पत्रिका
चलेगा कैसे उनका देश?
मेहतर तो सब रहे हमारे
हुए हमारे फिर शरणागत-
देखें अब कैसे उनका मैला ढुलता है!
'मेहतर तो सब रहे हमारे
हुए हमारे फिर शरणागत।'

अगर वहीं के वे हो जाते
पंगु देश के सही, मगर होते आजाद नागरिक।

होते द्रोही!
यह क्या कम है यहां लौट कर
जनम-जनम तक जुगों-जुगों तक
मिले उन्हें अधिकार, एक स्वाधीन राष्ट्र का
मैला ढोवें?

मानव की आंख

कोटरों से गिलगिली घृणा यह झांकती है।
मान लेते यह किसी शीत रक्त, जड़-दृष्टि
जल-तलवासी तेंदुए के विष नेत्र हैं

और तमजात सब जंतुओं से
मानव का वैर है
क्योंकि वह सुत है प्रकाश का -
यदि इनमें न होता यह स्थिर तप्त स्पंदन तो?

मानव से मानव की मिलती है आंख, पर
कोटरों से गिलगिली घृणा झांक जाती है!

पक गई खेती

वैर की परनालियों से हंस-हंस के
हमने सींची जो राजनीति की रेती
उसमें आज बह रही खूं की नदियां हैं।

कल ही जिसमें 'खाक-मिट्टी' कह के हमने
थूका था
घृणा की आज उसमें पक गई खेती
फसल काटने को अगली सदियां हैं।

ठांव नहीं

शहरों में कहर पड़ा है और ठांव नहीं गांव में
अंतर में खतरे के शंख बजे, दुराशा के पंख
लगे पांव में
त्राहि! त्राहि! शरण! शरण!
रुकते नहीं युगल चरण
थमती नहीं भीतर कहीं गूंज रही एकसुर रटना
कैसे बचें कैसे बचें कैसे बचें कैसे बचें

आन! मान! वह तो उफान है गुरूर का -
पहली ज़रूरत है जान से चिपटना!

जीना है बन सीने का सांप

हमने भी सोचा था कि अच्छी चीज है स्वराज
हमने भी सोचा था कि हमारा सिर
ऊंचा होगा एक्य में। जानते हैं पर आज
अपने ही बल के
अपने ही छल के
अपने ही कौशल के
अपनी समस्त सभ्यता के सारे
संचित प्रपंच के सहारे

जीना है हमें तो, बन सीने का सांप उस
अपने समाज के
जो हमारा एक मात्र अक्षंतव्य शत्रु है
क्योंकि हम आज ही के मोहताज
उसके भिखारी शरणार्थी हैं।

रुकेंगे तो मरेंगे

सोचने से बचते रहे थे, अब आई
अनुशोचना।
रूढियों से सरे नहीं (अटल रहे तभी तो
होगी वह मरजाद)
अब अनुसरेंगे-
नाक में नुकेल डाल जो भी खींच ले चलेगा
उसीको! चलो, चलो, चाहे कहीं चलो,
बस बहने दो:

व्यवस्था के, शांति, आत्मगौरव के, धीरज के
ढूह सब ढहने दो -
बुद्धि जब जड़ हो तो
मांस-पेशियों की तड़पन को
जीवन की धड़कन मान लें -

भागो, भागो, चाहे जिस ओर भागो
अपना नहीं है कोई, गति ही सहारा यहां -
रुकेंगे तो मरेंगे!

समानान्तर सांप-7

केंचुलें हैं, केंचुलें हैं, झाड़ दो!
छल-मकर की तनी झिल्ली फाड़ दो!
सांप के विष-दांत उखाड़ दो!
आजकल का चलन है - सब जंतुओं की
खाल पहने हैं -
गले गीदड़-लोमड़ी की,
बाघ की है खाल कांधें पर
दिल ढ़का है भेड़ की गुलगुली चमड़ी से
हाथ में थैला मगर की खाल का
और पैरों में -
जगमगाती सांप की केंचुल
बनी है श्री चरणों का सैंडल

किंतु भीतर कहीं
भेड़-बकरी, बाघ-गीदड़, सांप के बहुरूप
के अंदर
कहीं पर रौंदा हुआ अब भी तड़पता है
सनातन मानव -
खरा इनसान -
क्षण भर रुको तो उसको जगा लें!
नहीं है यह धर्म, ये तो पैंतरे हैं उन दरिंदों के
रूढ़ि के नाखून पर मरजाद की मखमल
चढ़ा कर
जो बिचारों पर झपट्टा मारतें हैं -
बड़े स्वार्थों की कुटिल चालें!
साथ आओ -
गिलगिले ये सांप वैरी हैं हमारे
इन्हें आज पछाड़ दो
यह मकर की तनी झिल्ली फाड़ दो
केंचुलें हैं केंचुलें हैं झाड़ दो!

समानान्तर सांप-4

उस अमावस रात में - घुप कंदराओं में
जहां फौलादी अंधेरा
तना रहता है खड़ी दीवार-सा
आड़ करके
नीति की, आचार, निष्ठा की
तर्जनी की वर्जना से
और सत्ता के असुर के नेवते आयी
बल-लिप्सा
नंगी नाचती है:

उस समय
दीवार के इस पार जब छाया हुआ होगा
सुनसान सन्नाटा -
उस समय सहसा पलट कर
सांप
डस लेंगे
निगल जायेंगे-
तुम्हें वह, तुम जिसे अपना सांप कहते हो
हमें यह, जो हमारा ही सांप है!

हमारा रक्त

यह इधर बहा
मेरे भाई का रक्त
वह उधर रहा
उतना ही लाल
तुम्हारी बहन का
रक्त !
बह गया, मिलीं दोनों धरा
जाकर मिट्टी में हुई एक।

पर धरा न चेती
मिट्‌टी जागी नहीं
न अंकुर फूटा।

यह दूषित दान नहीं वह लेती -
क्योंकि घृणा के तीखे विष से आज हो गया
है अशक्त
निस्तेज और निर्वीर्य
हमारा रक्त!